आज़ादी का अमृत महोत्सव

PEER REVIEWED JOURNAL

JOURNAL OF HISTORICAL RESEARCH

Vols. 59-60 ISSN 0022-1562 2021-22

UNIVERSITY DEPARTMENT OF HISTORY
RANCHI UNIVERSITY, RANCHI
JHR

University Department of History
Ranchi University

November, 2022

JOURNAL OF HISTORICAL RESEARCH

University Department of History, Ranchi University

ISSN 0022-1562

PEER REVIEWED JOURNAL

Editor

Dr. Basudeo Singh

Dean, Faculty of Social Sciences

&

Head, University Department of History,

Ranchi University, Ranchi.

Joint Editor

Dr. Sujata Singh

Editorial Board

Dr. Rajkumar

Dr. Kanjiv Lochan

Dr. Mohit Kumar Lal

Office Staff

Sri Umesh Kalindi

Sri Ravindra Kumar Choudhary

Ms. Sushila Runda

Sri Subhash Mahli

Ms. Sanjo Orain

JOURNAL OF HISTORICAL RESEARCH

Vols. 59-60 ISSN 0022-1562 2021-22

University Department of History
Ranchi University

November, 2022

Chief Editor's Note

It is a matter of great pride that the University Department of History Ranchi University is going to present its next issue of the Journal of Historical Research (Vols. 59-60). Since its inception in 1958 the Journal has completed a long journey of excellence in the field of historical research. It has become a Refereed Journal now. Every effort has been put in to maintain the high level of academic pursuance. The present publication, however, has been delayed due to covid-19 situations. The urge for excellence, no matter, shall continue with the good wishes of our readers.

We are very grateful to our Vice-Chancellor Dr. Ajit Kumar Sinha who keeps encouraging a research friendly environment in the University. We are highly obliged to our learned faculty and the young researchers of the Department for their valuable contributions. We are extending our thanks to our office bearers in keeping this journey of academic pursuit alive despite countless difficulties.

Basudeo Singh.

Dr. Basudeo Singh
H o D Department of History,
Ranchi University, Ranchi.

The views and opinions expressed in this journal are author's own and the facts reported by them have been verified to the extent possible.

-Editor

Journal of Historical Research, Volume 59-60; 2021-2022

CONTENTS

1. महिला प्रश्न, राष्ट्रीय आन्दोलन तथा गाँधीय नारीवाद
   डॉ0 सुजाता सिंह ***1-12***

2. मातृभाषा एवं शिक्षा नीति
   डॉ0 मोहित कुमार लाल ***13-22***

3. पंडित जवाहर लाल नेहरू की इतिहास दृष्टि
   डॉ0 राजकुमार ***23-30***

4. Public Opinion on Women Property Rights In Hindu Code Bill Discourse: 1944-1946
   Anupriya ***31-41***

5. The Upper Damodar Valley
   Riya Kumari Gupta ***42-56***

6. Jahangir - The Prince of Artists
   Shafaque Ammar ***57-65***

7. झारखंड में यूरेनियम उद्योग का सामाजिक-आर्थिक प्रभाव
   आलोक कुमार ***66-74***

8. झारखंड आंदोलन में घर बंधु, आदिवासी, आदिवासी सकम की भूमिका
   अंजु कुमारी ***75-84***

9. झारखण्ड के लोकगीतों में नदियाँ
   अमित राज ***85-100***

10. भारत की 'एक्ट ईस्ट' नीति तथा आसियान
    गोपाल कुमार साहु ***101-110***

11. पर्यावरण एवं स्वच्छता सम्बंधी वैश्विक तथा गाँधीय दृष्टि
    हेमराज कुमार कुशवाहा ***111-124***

12. औपनिवेशिक भूमि बंदोबस्त एवं जनजातीय विस्थापन : छोटानागपुर के विशेष संदर्भ में, 1880 ई.-1908 ई.
    महेश ठाकुर ***125-132***

13. भारत छोड़ो आंदोलन में झारखण्ड की भूमिका
मसकलन तोपनो ***133-140***

14. छोटानागपुर में अंग्रेजी साम्राज्यवादी नीतियाँ एवं ईसाई मिशनरियों की भूमिका : एक सिंहावलोकन, 1845 - 1947 ई.
सनी संतोष टोप्पो ***141-147***

15. राजमहल की मूल आदिम जनजाति पहाड़िया : एक ऐतिहासिक अवलोकन 1765-1947 ई.
संदीप कुमार ***148-157***

महिला प्रश्न, राष्ट्रीय आन्दोलन तथा गाँधीय नारीवाद

डॉ0 सुजाता सिंह*

हाल के वर्षों में ऐतिहासिक दृष्टिकोण से नारी को अध्ययन के एक विषय वस्तु के रूप में क्रमशः इसकी मानव जीवन के विकास की विभिन्न प्रक्रियाओं में भूमिका, विश्लेषित करने की माँग बढ़ी है।[1] इस नए दृष्टिकोण के विकास के लिए जहाँ नए स्रोतों का अभाव नहीं है, जिनका प्रयोग परम्परागत इतिहास लेखन में कम हुआ है,[2] वही वर्तमान स्रोतों, सामग्री तथा प्रक्रिया में आमूल परिवर्तन अपेक्षित है। यही कारण है कि स्रोतों के पुर्नविश्लेषण, जेंडर–असमानता को सामाजिक संबंधों को देखने का आधार बनाकर तथा पितृसमात्मक अवधारण की समीक्षा द्वारा भूमिका तथा स्थान को तय करने की बात कही जा रही है।[3] भारतीय संदर्भ में यह कार्य जटिल तथा विवादित रहा है। उपनिवेशवादी शासकों के सांस्कृतिक आक्रमण के साथ–साथ सभ्यता मिशन की विषय वस्तु के रूप में जहाँ महिलाएँ 19वीं सदी से केन्द्र में थी वहीं भारतीय सुधारकों ने भी समाज के पुनरूत्थान एवं सुधार से स्त्री प्रश्न को जोड़कर विषय को प्रमुखता दी।[4] परन्तु उनके द्वारा आदर्श स्त्रीत्व के सांस्कृतिक प्रतिमान को अतीत में खोजने से इतिहास में स्त्रियों के विषय में लिखने की तत्काल आवश्यकता लुप्त हो गई।[5] 20वीं सदी से स्वयं महिलाओं में एक सोच उनकी हीन अवस्था एवं सक्रिय संगठित प्रयासों के रूप में उभरी पर यह पर्याप्त नहीं थी। इन्हीं परिस्थितियों में नारी मुक्ति प्रश्न को स्वतंत्रता संघर्षों से जोड़कर गाँधी जी ने इस पूरी प्रक्रिया को एक नया आयाम दिया। संवैधानिक समानता द्वारा भी महिलाओं की कई सामाजिक स्थिति को मान्यता मिली। स्वतंत्रता के पश्चात् मुद्दों पर महिला आन्दोलन के कार्यक्षेत्र और स्वरूप को लेकर जारी बहस ने सत्तर के दशक से पूरे प्रश्न को पुनः केन्द्र में ला दिया है।[6]

कुँजी शब्द – जेंडर असमानता, पितृसत्तात्मक अवधारणा, महिला प्रश्न, गाँधीवादी नारीवाद

प्रस्तुत शोध विषय की आवश्यकता 20वीं सदी में कई कारणों से बन रही थी। गाँधीवादी नारीवाद की भूमिका का विश्लेषण इन परिस्थितियों में प्रासंगिक हो गया। शिक्षित महिला समूहों की विशेष स्थिति के कारण उनकी साधनहीन वर्ग की वास्तविकता से दूरी, राष्ट्रीय दलों द्वारा स्त्री संबंधित कार्यक्रमों का सरलीकरण, वाम दलों द्वारा हाल तक स्त्री प्रश्नों को क्रांतिवाद अपनाने के लिए स्थगित रखना, संगठन से पुरूष वर्चस्व के प्रश्न पर उनकी दुविधा आदि की समस्याएं बनी हुई थी जिसने नारीवादियों को इस क्षेत्र में होने वाले प्रयासों के प्रति संशय में रखा है।[7] वहीं दूसरी ओर शिक्षित शहरी मध्यवर्गीय पृष्ठभूमि से महिला नेतृत्व का उभरना इन्हें ऐसे समूह के रूप में चिन्हित करता है जिनका आम महिला प्रश्नों से सरोकार नहीं हो सकता।[8] स्वतंत्रता

*एसोसिएट प्रोफेसर, विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची।

के बाद आर्थिक क्षेत्र में भारी औद्योगीकरण तथा कृषि के पूँजीकरण से जो समस्याएँ एवं अंतर्विरोध उभरे हैं उनसे स्त्रियाँ अछूती नहीं रही है।[9] स्त्री संबंधित आँकड़े बताते है कि संवैधानिक समानता का सच्चे अर्थों में पालन अभी भी बाकी है। परिणामस्वरूप जन संघर्षो का सिलसिला निरंतर जारी हैं।

इन परिस्थितियों में कई प्रश्न उभरते हैं। भारत की सांस्कृतिक विविधता, जाति समुदाय एवं वर्ग संबंधी जटिलताओं के बीच महिलाओं के मामले अपने को कहाँ पाते है। चूँकि गाँधीवादी आन्दोलन में विशाल एवं सक्रिय ऐतिहासिक भागीदारी को महिलाओं ने स्वतंत्रता के बाद भी निरंतर बनाए रखा है तथा अपनी कार्यशैली द्वारा विभिन्न आन्दोलनों को महिलाओं की प्रभावशाली उपस्थित से दबाव में भी रखा है, अतः विचारणीय बिन्दु हैं कि पितृसत्तात्मक तथा जाति समुदाय एवं वर्ग संबंधी अवधारणाओ की उपस्थिति में उनसे जुड़े मामलों का अखिल भारतीयकरण न हो पाना क्या आन्दोलन को कमजोर नहीं बनाता हैं? भारतीय संदर्भ में इन आन्दोलनों को परिभाषित कैसे किया जाय? महिला आन्दोलन के बीच तथा उनकी दूसरी विचारधाराओं एवं स्वयं समाज के रूढ़ीवादी तत्वों से किस प्रकार के विरोध एवं अर्न्तद्वन्द्व है? 19वीं सदी से महिला प्रश्नों, आन्दोलनों की कार्यशैली तथा महिला प्रश्नों के प्रति विभिन्न दृष्टिकोणों में क्या आज भी वर्तमान संदर्भों में भी एक निरंतरता एवं प्रासंगिकता बनी हुई है या ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इनमें विकास एवं भटकाव हुआ है? महिला संबंधित मुद्दों के बहुआयामी चरित्र से इन प्रश्नों की उत्पत्ति होती है। यह चरित्र किसी भी विचारधारा द्वारा पर्याप्त समाधान नहीं सुझा पाने की स्थिति में उनके पक्ष में अपना मत नहीं देता। गाँधीवादी नारीवाद का तत्कालीन सामाजिक–राजनीतिक आन्दोलनों में सफल प्रयोग किया गया यही कारण है कि इसे सही स्वरूप और परिप्रेक्ष्य में समझने की प्रासंगिकता तथा आवश्यकता को वर्तमान संदर्भ में भी सामने रखा है। लेकिन गाँधीवादी नारीवाद की नारीवादी लेखन में आलोचना की जाती रही है। इन आलोचनाओं को समग्र गाँधी चिन्तन एवं दर्शन के संदर्भ में पुनः देखने की जरूरत भी बनती है। राष्ट्रीय आन्दोलन में गाँधीवादी कार्यक्रमों एवं सिद्धान्तों पर चलकर महिलाओं ने संवैधानिक समानता के वे अधिकार पाए जो अन्य देशों में एक लम्बे संघर्ष के उपरान्त मिले थे।[10] अगर आज नारी संदर्भों में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक आन्दोलनों की प्रासंगिकता अभी बाकी है तो स्पष्ट है कि गाँधी दर्शन को भी इस संदर्भ में देखने एवं समझने की आवश्यकता है।

गाँधीवादी राष्ट्रीय आन्दोलन में स्त्रियों की सहभागिता की पृष्ठभूमि

नारीवादी तथा पश्चिमी समीक्षा में गाँधी पर मुख्य आरोप परम्परावादी होने का लगता रहता है।[11] सहनशीलता, त्याग की भावना और आत्मपीड़न की प्रवृति को स्त्रियोचित्त मानकर जहाँ गाँधी ने इन विशेषताओं को सामाजिक एवं राष्ट्रीय आन्दोलनों में महत्व दिया वहीं नारीवादी आलोचना में इनकी चर्चा कमजोरी एवं शोषण के कारणों के रूप में की गई जो इन्हें परम्परागत

रूप से कमजोर बनाए रखेंगे तथा पितृसत्तात्मकता को बल देंगे। यह भी कहा गया है कि स्त्री और पुरूष समानता की चर्चा भी वे स्त्री–पुरूष को एक दूसरे का पूरक मानते हुए करते है। उनके स्वतंत्र कार्य विभाग जन एवं सामाजिक भूमिकाओं में भी भेद करते है।[12] पिछले दो दशकों में महिलावादी सोच और नारी आन्दोलन में स्त्री पुरूष समानता के संदर्भ में प्रयुक्त परम्परागत शब्दावली एवं तरीकों को नकारा गया है।[13] नारीवादियों का कहना है कि गाँधी जी ने राष्ट्रीय आन्दोलन के व्यापक धरातल को तैयार करने में नारी सक्रियता की जमीन तो तैयार की परन्तु नारी मुक्ति कार्यक्रमों पर विशेष ध्यान नहीं दिया।[14] जबकि राष्ट्रीय आन्दोलन की एकजुटता बनाए रखने के लिए महिला नेताओं ने अपने मुद्दों एवं संघर्षों को कई बार स्थगित भी किया है।

इन आलोचनाओं के संदर्भ में विद्वानों द्वारा गाँधी दर्शन को समग्रता में देखने की कोशिश हुई है। परन्तु गाँधी के नारीवादी चिन्तन को उनकी दूसरी चिन्तन प्रक्रियाओं से अलग करके देखना उनकी मूलभूत दर्शन से अलग हटना होगा। गाँधी की चिन्तन प्रक्रिया का आरम्भ ही मानव जीवन के एकत्व में विश्वास से आरम्भ होता है।[15] इसे धार्मिक, नैतिक, राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, व्यक्तिगत या सामूहिक खण्डों में नहीं बांटा जा सकता। अतः अलग–अलग इनसे जुड़े प्रश्नों पर विचार भी तर्कसंगत नहीं होगा। क्रिया प्रतिक्रिया के रूप में ये एक दूसरे से गुंथे हुए हैं।[16] साथ ही इस तरह के खण्डों में अध्ययन एवं विश्लेषण पर आधारित ज्ञान पर व्यक्ति या समूह के लिए विकास कार्यक्रम एक विखण्डित व्यक्तित्व तथा सामाजिक समूहों में असंतुलन की अवस्था को जन्म देंगे। व्यक्ति के समग्रता में जीने को उन्होंने प्राथमिकता दी ताकि व्यक्तिगत व्यवहार में मूल्यों एवं सिद्धान्तों द्वारा प्राप्त सही दिशा एवं निर्देश समाज में भी एक सौहार्द एवं समरस व्यवस्था का निर्माण करेंगे।[17] ऐसी सोच के साथ निर्धारित लक्ष्यों एवं उद्देश्यों में एकता तो मिलती है, परन्तु उसे एक व्यवस्था या वाद के अन्तर्गत विश्लेशित करना गाँधी ने दूसरों पर छोड़ दिया।[18] उन्होंने समस्या विशेष के बहुआयामी एवं जटिल स्वरूप के आलोक में व्यावहारिक परन्तु, समग्रता में अपने मूल सिद्धान्तों की सहायता से समाधान निकाला।[19] इसी क्रम में उनकी लेखन सामग्री एक दिशा–निर्देश के रूप में ही अधिक मिलती हैं। इसके सभी निहितार्थ के साथ तार्किक रूप में विश्लेषित करते हुए गाँधीवादी नारीवाद के संदर्भ में भी कई प्रश्न उनके दृष्टिकोण को परम्परावादी कहते हुए उठाए जाते हैं। वे सामान्य चिन्तन प्रक्रिया में खाली जगहों या दृश्य अर्न्तविरोध के कारण अधिक प्रतीत होते हैं।[20] कुछ मामलों में गाँधीवादी नारीवाद को इन सभी जगहों के तर्कपूर्ण विश्लेषण द्वारा अच्छी तरह से समझा जा सकता है।

इस सन्दर्भ में नारीवादी लेखन का कहना है[21] कि महिला प्रश्नों के विकास की प्रक्रिया 19वीं सदी में पुरुष दृष्टि से प्रभावित रही। वहीं 20वीं सदी से स्थानीय एवं अखिल भारतीय स्तर पर महिला प्रश्नों के आधार पर महिलाएँ संगठित हुई और गाँधीवादी जन आन्दोलन के स्वरूप ने राष्ट्रीय संघर्ष में उनकी सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित कर उनकी क्षमताओं को समाज एवं स्वयं

उनके बीच प्रमाणित किया। राष्ट्रीय एवं सामाजिक दोनों प्रकार के संघर्षों में व्यापक भागीदारी ने महिला आन्दोलन का रूप तो लिया परन्तु स्त्री तथा राष्ट्रीय मुद्दों पर उनकी भागीदारी सुनिश्चित करने के तर्कों में कहीं एक विशेषता भी है जो 19वीं सदी में रूढ़ीवादी तत्वों के विरोध को देखते हुए तय की गई प्रतीत होती है। यह न केवल गाँधीवादी तथा कहीं कहीं नारीवादी तर्कों को भी परंपरावादी बनाता है।

महिला आन्दोलनों का इस सन्दर्भ में अध्ययन करते समय उनकी तत्कालीन सीमाओं का भी ध्यान रखना होगा। शिक्षा तथा स्वतंत्र सामाजिक आन्दोलन के महिलाओं पर पड़ते प्रभाव को लेकर शहरी सभ्य वर्ग में भी मतभेद चल रहे थे। इनका एक पक्ष महिलाओं की भूमिका को एक पोषिका के रूप में भोजन, पोषण, शिशु देखभाल, सफाई तथ सिलाई के पाठ्यक्रमों तक सीमित रखना चाहते थे जबकि मांग शिक्षिका के साथ डाक्टरों की भी बन रही थी।[22] वस्तुतः इस काल में तात्कालिक प्राथमिकता राजनीति से ज्यादा स्त्री मुद्दों को दी गई परन्तु व्यापक भूमिका एवं देश भक्ति के लिए भी उन्हें प्रेरित किया गया। भाषण, सभा, साहित्य, व्यक्तिगत व्यवहार तथा संगठन द्वारा उच्च एवं मध्यमवर्गीय महिलाओं तक पर्दा, शिक्षा आदि जैसे मुद्दों पर परंपरागत तरीकों से पहुँच बनाने की कोशिशें होती रहीं।[23] परन्तु जन आन्दोलन का रूप लेने में ये प्रयास असफल रहे।[24] इन्हीं परिस्थितियों में गाँधी जी की समय की आवश्यकता तथा स्त्री मुद्दों की स्वराज्य से संबंध की स्पष्ट समझ थी। उन्होंने महिलाओं के पूर्व के सामाजिक आन्दोलन को राष्ट्रीय आन्दोलन का हिस्सा बनाया। राष्ट्रीय आन्दोलन से ताकत पाकर यह संघर्ष और मजबूत बनकर अन्य सहायक आन्दोलनों की तरह "मुख्य संघर्ष के अन्तर्गत संघर्ष"[25] के रूप में प्रयास करता रहा। परन्तु कई मामलों में दूसरे सहायक आन्दोलन से परिपक्व भी होता गया। इस ऐतिहासिक विकास में नारी मुक्ति का प्रश्न कहीं से भी सामाजिक आन्दोलनों एवं राष्ट्रीय आन्दोलन के सन्दर्भ में समझे बिना कठिन है। गाँधी जी ने राष्ट्रीय आन्दोलन में उनकी भागीदारी सुनिश्चित कर महिलाओं के सामाजिक आन्दोलन को कई स्तर ऊपर उठा दिया। वहीं स्वयं महिलाओं को गाँधीवादी राष्ट्रीय कार्यक्रमों से जुड़कर आशातीत सफलता मिली।

स्त्रियोचित चारित्रिक विशेषताएँ तथा गाँधी दर्शन

व्यापक जन आन्दोलन में नेतृत्व की सफलता हर स्तर पर जनता की भागीदारी सुनिश्चित कराने पर निर्भर करती है। इसके लिए तत्कालीन आवश्यकता विरोधी तर्कों को निरस्त करने की थी। इसमें कोई संदेह नहीं कि गाँधीवादी जन आन्दोलन की रणनीति में महिलाओं तक पहुँच बनाने की भी आवश्यकता शामिल थी। परन्तु रूढ़िवादी एवं पितृसत्तात्मक सामाजिक मान्यताओं की उपस्थिति में सामाजिक विरोध की संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता था।[26] अतः पर्दे में रहने वाली हर समुदाय की असंख्य उच्च तथा मध्यमवर्गीय महिलाओं को सक्रिय तथा

रचनात्मक आन्दोलन में लाने के पीछे गाँधीवादी अहिंसात्मक सत्याग्रह पर आधारित का विशेष हाथ था। स्वयं गाँधी जी के महान व्यक्तित्व की प्रेरणा भी थी जिससे संतुष्ट होकर असंख्य महिलाओं को हर प्रकार के संघर्ष का हिस्सा बनने के लिए घर से अनुमति मिली।[27] अतः राष्ट्रीय आन्दोलन से स्त्रियों को जोड़ने की प्रक्रिया में जहाँ गाँधी जी का स्त्रियोचित गुणों के अहिंसात्मक राष्ट्रीय आन्दोलन के स्तर को बनाए रखकर सफल होने की क्षमता पर विश्वास था वही स्वयं स्त्रियों को गाँधी जी के पारंपारिक नेतृत्व एवं सोच से विशेष सहायता मिली। उन्हें पितृसत्तात्मक रूढ़िवादी तत्वों के विरोध को कम कर सामाजिक विकास करने की या पर्दा से बाहर आने की अत्यंत महत्वपूर्ण सीढ़ी चढ़ने में मदद मिली।[28] यह गाँधी जी के व्यक्तित्व का कमाल था कि वे हर वर्ग एवं समुदाय के घर के अंदरूनी हिस्से में जाकर महिलाओं से सीधे सम्पर्क कर अपनी बात कह सकते थे।[29] जबकि 19वीं सदी से चल रहे महिला केंद्रित पुरुष प्रधान आन्दोलन के नेताओं तथा स्वयं महिला नेताओं को रूढ़ीवादी ताकतों से जर्बदस्त जूझना पड़ रहा था। यह उनकी प्रगति को 1920 के पूर्व तक धीमा किए रहीं।

गाँधी जी ने राष्ट्रीय एवं सामाजिक दोनों आन्दोलनों में स्त्रियों की तात्कालिक तथा दूरगामी आवश्यकता को भांपा। उन्हें रचनात्मक एवं सांगठनिक हर स्तर पर सक्रिय रूप से आन्दोलन से जोड़ने की कोशिश की। इस संदर्भ में महिलाओं को शारीरिक, नैतिक एवं मानसिक रूप से कमजोर कहने का जर्बदस्त विरोध किया।[30] नोआखाली के भीषण दंगे वाले क्षेत्रों में भी उनके काम करने का समर्थन किया। उसी तरह उनका विश्वास था कि सक्रिय संघर्ष में जब पुरुष जेल भेजे जायेंगे तो स्त्रियाँ उनका स्थान लेगी और पुरुषों के समकक्ष जेल की याजनाओं को सह पाएंगी।[31] जहाँ तक धरना पिकेटिंग आदि के प्रभाव की बात थी तो विदेशी कपड़ों के व्यापारी, खरीददार तथा शराब व्यापारियों का महिलाओं से अनुरोध एवं बाद में उनके अवरोधक गतिविधियों के प्रभाव को 1921 के असहयोग आन्दोलन के दौरान स्वीकार किया।[32] इसके बाद के प्रत्येक आन्दोलन में भी बढ़ती सक्रिय भागीदारी तथा सत्याग्रह एवं अहिंसा के प्रति उनकी बचनबद्धता ने स्वयं उनके बीच अभूतपूर्व आत्मविश्वास का संचार किया। चुनौतीपूर्ण स्वतंत्र भूमिकाओं की मांग स्वयं महिलाओं के बीच से आने लगी। जिनके पूरा न हो पाने की स्थिति में विरोध भी हुए।

गांधीवादी राष्ट्रीय आन्दोलन तथा स्त्री संबंधी परम्परागत अवधारणाएँ

इसमें कोई संदेह नहीं कि 20वीं सदी के साम्राज्यवादी शासन के विरूद्ध स्त्रियों के विशेष अनुभव थे। महिला क्रान्तिकारी गतिविधियों तथा सामाजिक कार्यक्रमों द्वारा महिलाएँ अपनी उपस्थिति इस सन्दर्भ में दर्ज करा रही थी। परन्तु गाँधी जी के जन आन्दोलन में सक्रियता ने इस उपस्थिति को एक राष्ट्रीय चरित्र प्रदान किया। धरासान नामक डिपो पर नेतृत्व की आज्ञा देकर गाँधी जी ने इसका सम्मान किया[34] जबकि स्वयं कांग्रेसी नेतृत्व महिलाओं को नेतृत्व एवं

सांगठनिक कार्यों से जोड़ने का विरोध कर रहे थे। गाँधी जी ने भी दांडी मार्च से उन्हें आरंभ में अलग रखने का निर्णय लिया था। यह तय प्रमाणित करता है कि घर से बाहर महिलाओं की भूमिका की व्यापकता के संबंध में उनके विचारों में अपने प्रिय सिद्धांतों के अन्तर्गत ही बदलाव की संभावना रही है। 1921 में धरना, पिकेटिंग आदि कार्यक्रमों से 1939 में उन्हें सत्याग्रह आन्दोलन का नेतृत्व देने की बात कहना इसके संकेत हैं। परन्तु यहाँ वे महिलाओं के मानवता से पूर्ण मातृ रूप के विस्तार को ही सत्याग्रह पर आधारित अहिंसात्मक आन्दोलन में बढ़ती सक्रिय भागीदारी में देखते हैं।

सामाजिक क्षेत्र में महिलाओं की दयनीय स्थिति पर गाँधी जी के विचार इस विश्वास पर आधारित हैं कि वर्तमान हीनता की स्थिति ऐतिहासिक भेदभाव का परिणाम है न कि हीन क्षमताओं का।[35] उनकी मानसिक, शारीरिक एवं भावानात्मक विशेषताओं के अनुरूप समाज में विशेष भूमिका की गाँधी जी कल्पना करते हैं तथा स्वतंत्रता तथा अधिकारों में समकक्ष मानते हुए जेंडर समानता की बात करते हैं। गाँधी जी को परंपरावादी कहने के पीछे उनका भारतीय संस्थाओं एंव परंपराओं के प्रति लगाव है जो इनमें किसी क्रान्तिकारी परिवर्तन का विरोध तो करता है। परन्तु यहाँ वे परंपराओं के तार्किक विश्लेषण को महत्व देते हैं।[36] अतः जो अच्छी एवं काल के संदर्भ में सत्य परंपराएं हो वे ही अपनायी जानी चाहिए। सत्य है कि अगर वे पश्चिम के अंधानुकरण के खिलाफ थे जो भारतीय समाज के लिए ठीक नहीं है तो कहीं कहीं धर्म शास्त्रीय तथा रूढ़िवादी परंपराओं के विरुद्ध भी हैं। यही कारण है कि बाल विवाह, बाल विधवा विवाह, सह शिक्षा आदि पर उनके विचार क्रान्तिकारी प्रतीत होते हैं।

इस सन्दर्भ में गाँधी जी के स्त्री चिन्तन में जो बात भ्रमित करती है वह है उनके द्वारा प्रयुक्त परंपरागत प्रतिमान, दृष्टान्त, प्रतीक तथा शब्दावली का प्रयोग। वर्तमान पश्चिम तथा नारीवादी लेखन में जहाँ स्पष्ट रूप से इसके प्रयोग पर आपत्ति उठाई गई है वहीं रोचक तथ्य यह हैं कि महिलाओं के विशेष वर्ग तक पहुँच बनाने के लिए महिला आन्दोलन के प्रथम चरण के नेताओं द्वारा भी 20वीं सदी के आरंभ से ही इन तरीकों का प्रयोग किया जा रहा था। जैसे गार्गी, मैत्रेयी एवं प्राचीन युग की नारियों के उद्धरण तथा घर संसार जैसे आम मुहावरों का अर्थ घर के अन्दर तथा बाहर के संसार में उनकी दोहरी भूमिका के रूप में दी जा रही थीं।[37] सरोजनी नायडू ने भी नारियों के व्यापक एवं अखिल भारतीय सामाजिक, राजनीतिक आन्दोलनों में भूमिका एवं भागीदारी की बात कही पर अपने तर्क एवं तरीके परंपरागत उद्धरणों को आवश्यकतानुसार ढाल कर लिए। गाँधी जी के उदाहरण एवं प्रतिमान भी भारतीय संस्कृति से उभरते तो हैं पर इसके पीछे उनकी व्यापक सामाजिक राजनीतिक लक्ष्यों के लिए जन–जन से सम्पर्क स्थापित कर अपनी बात पहुँचाने की रणनीति को भी देखा जाना चाहिए जो तत्कालीन परिस्थितियों में नितान्त प्रासंगिक था। महिला लेखन में भी जिन स्त्रियोचित गुणों का पोषण करने का आरोप गाँधी जी

पर लगता रहा, वह गाँधी जी की दृष्टि में अनुकरणीय एवं मानवोचित थे तथा उनके राजनीतिक कार्यक्रम का आधार तथा सफलता की गारंटी थे।

स्त्रियों की स्थिति में सुधार, व्यापक समाज सुधार का अनिवार्य अंग

गाँधी जी के सशक्त पारंपरिक तर्कों के कारण उन पर 19वीं सदी के समाज सुधारकों की तुलना में पश्चिम के अंधानुकरण का आरोप नहीं लगाया जा सका तथा समाज सुधार को स्वराज प्राप्ति से जोड़ने की सफल तकनीक ने उन्हें अन्य समाज सुधारकों से अलग खड़ा कर दिया। अपने तर्कों में समुदाय विशेष के सन्दर्भ में उन्होंने परिवर्तन भी किए परन्तु संवाद स्थापना परंपरागत रूप से किया।[39]

दूसरी तरफ गाँधी के विवाह संबंधी विचार भी तत्कालीन सन्दर्भ में कहीं उन्हें परंपरावादी और कहीं प्रगतिशील बनाते हैं। इस सन्दर्भ में बाल विवाह को विवाह मानने से उन्होंने इन्कार किया[40] तथा बाल विधवाओं के पुर्नविवाह का जोरदार समर्थन किया था। इसके अलावा विधवा एवं विधुर विवाह पर दोहरे मानदंड न मानने के उनके विचार जेंडर समानता के प्रश्न पर क्रान्तिकारी भी थे। परन्तु यह भी सत्य है कि जहाँ बाल विवाह तथा बाल विधवा पर उनकी राय स्पष्ट थी वहीं 19वीं सदी के सुधारकों की तुलना में विधवा द्वारा विवाह की जगह उनसे संयमित जीवन बिताने की अपेक्षा[41] अवश्य परम्परावादी प्रतीत होते हैं। परन्तु यह भी महत्त्वपूर्ण बात है कि ऐसा करने पर किसी प्रकार के धार्मिक या सामाजिक बंधन लगाने के एवं उन्हें नीचा देखने के वे विरोधी थे।[42] अतः हर क्षेत्र में संयमित जीवन और कष्ट सहने की प्रवृत्ति को प्राथमिकता देने की गाँधी जी के सामान्य दर्शन के आलोक में ही उनके इस विषय पर विचारों को देखना चाहिए। दूसरी तरफ बालिका वध का तीव्र विरोध तो उन्होंने किया ही परन्तु इसके कारणों को समाप्त करने के लिए दहेज प्रथा को खत्म करने तथा इसके लिए जाति से बाहर विवाह करने पर भी बल दिया।[43] स्पष्ट है कि स्त्री हित के लिए जाति प्रथा जैसी संस्था पर भी उन्होंने चोट की। इसी प्रकार अशिक्षा तथा पर्दा प्रथा उनके लिए एक दूसरे से जुड़ी समस्याएँ थी जो उनमें आत्मविश्वास और चेतना जागृत करने, स्वतंत्रता प्राप्त करने तथा कार्य क्षेत्र को व्यापक करने में सबसे बड़ी बाधक थी। हालांकि राष्ट्रीय आन्दोलन में उनकी सहभागिता सुनिश्चित कर गाँधी जी ने अपने इन सामाजिक उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफलता पाई।[44]

कई स्त्री प्रश्नों पर गाँधीवादी दृष्टिकोण में तत्कालीन नारीवादी विचारों, विवादों, एवं संदर्भों की तुलना में एक लचीलापन तथा व्यावहारिकता दिखाई पड़ती हैं। 1934 के बंगाल नारी शिक्षा कान्फरेंस में स्वयं महिलाओं के एक वर्ग के द्वारा सह शिक्षा का विरोध करते हुए इसे भारतीय संस्कृति के विपरीत एवं पश्चिमी विचारधारा के अनुरूप कहा गया। बालक बालिकाओं के लिए मान्य अलग पाठ्यक्रम भी इसे अव्यावहारिक तथा नाजुक उम्र में स्नायविक तनाव पैदा करने वाला

कहा जा रहा था। वहीं इसके पक्षधर इसे जेंडर समानता की दिशा में उठाया गया कदम तथा लड़कियों में आत्मनिर्भरता तथा स्वाभिमान पैदा करने वाला प्रयास कह रहे थे। परन्तु आश्चर्यजनक रूप से गाँधी भी मातृ रूप की बेहतर भूमिका में ही नारी शिक्षा की सार्थकता समाज में देख रहे थे। यहाँ गाँधीवादी नारीवाद से उनके तर्कों की समानता देखी जा सकती है। इन विपरीत मतों की तुलना में गाँधी जी ने 16 वर्ष के बाद स्वयं लड़के लड़कियों पर यह निर्णय छोड़ने को कहा। गाँधीवादी नारीवाद का एक महत्वपूर्ण पहलू जेंडर समानता के साथ सामाजिक भूमिका में भिन्नता थी जो स्त्री को मातृ रूप में प्राथमिकता देता है तथा पुरुषों को उपार्जन कर्ता के रूप में। स्त्रियों की सीमित आर्थिक गतिविधियों में शामिल होने के विचार उनके समग्र समानता के सिद्धांत के साथ अंर्तद्वन्द्व पैदा नहीं करता।[45]

आर्थिक प्रश्न

आर्थिक क्षेत्र में महिलाओं की सीमित एवं विशेष भूमिका का समर्थन गाँधी जी के अलावा तत्कालीन महिला नेताओं ने भी किया परन्तु अलग तर्कों के साथ। व्यवसायिक शिक्षा की अत्यंत निम्न दर को देखते हुए जहाँ महिला नेताओं ने विशेष नारी सुलभ व्यवसायों तथा शिक्षा पर ध्यान केंद्रित करना उचित समझा। कहीं न कहीं उन्होंने इसके लिए स्त्री पुरुष के बीच असमान स्थिति के कारण संभावित अनुचित प्रतिद्वन्द्विता को कारण बताया जो पुरुषों को इस मामले में अधिक योग्य बनाते थे। यह तर्क समान बौद्धिक क्षमता परन्तु भिन्न सामाजिक एवं सीमित आर्थिक भूमिका की गाँधी चिन्तन के समान थी जो स्त्रियों को विशेषरूप से प्राथमिक शिक्षण कार्य से जोड़ने को कहते थे। महत्वपूर्ण है कि वामपंथी विचार स्त्रियों को सीमित आर्थिक भूमिका के विरोध में थे। लेकिन पश्चिमी विद्वानों की नजर में यह विभाजन भविष्य में स्त्री सुलभ व्यवसायों के हास[46] को जन्म देगा तथा असमान आय समाज में स्त्री पुरुषों की समानता स्वतंत्रता के सिद्धान्त को प्राप्त करने में कठिनाईयाँ पैदा करेगा।[47] वे आर्थिक रूप से निर्भर बनी रहेंगी। गाँधी दर्शन में महिलाओं की मुख्य भूमिका चूंकि मातृ रूप एवं परिवार के देखभाल करने वाले के रूप में ही की कई है अतः उपार्जनकर्ता के रूप में भी यह अल्पकालिक रखी गई है, पूर्णकालिक नहीं। सेवा के दृष्टीकोण से यह पूर्णकालिक हो सकता है आय प्राप्ति के लिए नहीं। उनसे लाखों महिला श्रमिकों के विषय में जब प्रश्न हुए, जो परिवार की रोजी का आधार थी, तो उन्होंने स्पष्ट कहा कि स्वेच्छा से अपने खेतों में श्रम करना तथा साथ ही साथ घर की देखभाल करना गलत नहीं है। पर बाध्य होकर काम करना गलत है।[48]

समान आर्थिक अधिकारों के सन्दर्भ में उनकी राय भिन्न थी। गाँधी जी के अनुसार संपत्ति को शक्ति तथा उच्चता का स्त्रोत मानने के पितृसतात्मक अवधारणा को सभी बच्चों में समान रूप से सम्पत्ति बांटकर ही खत्म किया जा सकता है जब सभी समान रूप से हिस्साधारक हो जाएं।[49]

हिन्दू विरासत कानूनों में मूलभूत परिवर्तन करने की मांग भी की। इस दृष्टिकोण से गाँधी जी ने ऐसी व्यवस्था के निमार्ण की बात कही जो समान आर्थिक अधिकार देकर स्त्री पुरुष को समान दर्जा दे तथा जहाँ तक आर्थिक अवसरों द्वारा आय उपार्जन की बात थी उन्होंने उनकी शेष सामाजिक भूमिका को ही प्राथमिकता दी जिसे वे पूर्ण रूप से नर्वहन कर सकें। उनका विश्वास था कि भारतीय महिलाएं अपने पति के पद व स्थान से ही संतुष्ट रहती हैं। अतः अपनी स्वतंत्र पहचान बनाने को वे विशेष उत्सुक या प्रेरित समान्यतः नहीं होंगी।

इस विचार में पितृसतात्मक अवधारणा की झलक तो आती है जैसा आलोचक कहते हैं परन्तु गाँधीवादी सोच का आरंभ ही स्त्री पुरुष को सांस्कृतिक परंपरा के अनुरूप समकक्ष और पूरक मानते हुए होता है एकरूप नहीं।[50] इस विचार में जेंडर समानता के साथ–साथ सहयोग तथा सामीप्य की भावना अन्तर्नीहित है प्रतिस्पर्धा की नहीं। जबकि स्वतंत्रता में भिन्नता तथा अलग पहचान का भाव मुखरित होता है।[51] तत्कालीन महिला नेताओं की भी दोनों ही मसलों पर गाँधीवादी दृष्टिकोण से एक सैद्धांतिक समानता देखी जा सकती है। जहाँ आय की परिभाषा उन्होंने अल्पकालिक तथा अतिरिक्त कह कर दी जिसने लाखों ग्रामीण गरीब महिलाओं को उनकी चिन्तन परिधि से बाहर कर दिया। 1931 में AIWC ने सम्पति अधिकारों को कानूनी सुरक्षा देने की बात कही।

वास्तव में गाँधी जी ने महिलाओं की सम्पति के मामले में हीन स्थिति को एक तरीके के रूप में देखा जो पैतृक व्यवस्था में शक्ति तथा सम्पत्ति स्वयं रखना चाहते है और महिलाएँ पति के माध्यम से इस शक्ति तक पहुँचने की इतनी आदी है कि विरोध नहीं करती।[52] बारबरा संदर्ड के शब्दों में गाँधी जी ने इस हीन स्थिति से स्त्रियों को निकालने के लिए परम्परागत पारिवारिक संरचना में बदलाव की जगह स्त्रियों के नैतिक शक्ति पर ज्यादा भरोसा किया।[53] जिसके लिए उन्हें सत्याग्रह करना था।

गाँधीवादी तकनीक की सफलता तथा स्वयं महिलाओं की गाँधीवादी तकनीकों एवं तर्कों के प्रति वचनबद्धता ने अभूतपूर्व सन्धि को जन्म दिया। इससे राज्य के नैतिक मुखौटे को महिलाओं के अहिंसात्मक प्रतिरोध तथा ब्रिटिश दमन से कांग्रेस को उतार फेंकने में विशेष सफलता मिली।[54] इससे कांग्रेस की प्रतिष्ठा बढ़ी। बदले में गाँधी के नेतृत्व में सामाजिक मुद्दे कांग्रेस कार्यक्रम का आवश्यक हिस्सा बने तथा 1931 में जेड़र समानता की दिशा में कांग्रेस की करॉंची अधिवेशन में महत्वपूर्ण पहल हुई।

जेराल्डिन फोर्ब्स के अनुसार आन्दोलन में महिलाओं की संख्या उनके कांग्रेस से संबंध और किस हद तक उन्होंने महिला हित को राष्ट्रीय एवं व्यापक मुद्दों को राष्ट्रीय एजेंडा में प्राथमिकता दी, पर निर्भर रहा। परन्तु फोर्ब्स के अनुसार ''यद्यपि स्वतंत्रता आन्दोलन का स्वरूप पितृ प्रधान नहीं कहा जा सकता पर पुरूष अभिभावकत्व का प्रभाव इस पर रहा। क्योंकि यह आशा की गई

कि राष्ट्रीय संकट के समय स्त्रियों की व्यापक भूमिका पुनः संकट के बाद घर तक सिमट जाएगी।[55] हालांकि स्वयं महिला नेताओं की नजर में स्वतंत्रता आन्दोलन से मिले नए आत्मविश्वास से उनमें पितृसत्तात्मक आधिपत्य से स्वयं को मुक्त करने की इच्छाशक्ति बढ़ी।[56] हालांकि नारीवादियों नें इसे प्रतीक रूप माना जिसका मार्ग निर्देशन पृश्ठभूमि से चलता रहा। इस विभाजन रेखा के टूटने की प्रक्रिया को नारी सशक्तिकरण की दृष्टि से महिलावादी लेखन ने अवश्य महत्वपूर्ण माना है क्योंकि धैर्य सहनशीलता जैसे गुणों का, जिसे व्यक्तिगत स्तर पर उनकी कमजोरी का कारण माना गया है, राष्ट्रीय स्तर पर सफल प्रयोग ने उन्हें व्यक्तिगत स्तर पर भी सत्य एवं न्याय के लिए सामाजिक बंधनों एवं पितृसत्तात्मक बंधनों को भी चुनौती देने को प्रेरित किया।[57] सबसे महत्वपूर्ण बात गाँधीवादी नारीवाद की रही कि भारतीय समाज में तत्कालीन सन्दर्भों में उन्होंने परंपराओं के महत्व को पहचान इसकी रचनात्मक एवं प्रासंगिक[58] व्याख्या द्वारा व्यापक लक्ष्यों को प्राप्त करने में मदद ली। परन्तु इस क्रम में भारतीय राजनीति का आधुनिकीकरण तो किया पर पाश्चात्यकरण नहीं। परंपरा और मौलिक परिवर्तन के बीच सामंजस्य को अभिव्यक्त किया।[59]

निष्कर्ष

गाँधीवादी नारीवाद की सफलता स्त्रियों के सरोकार के हर मुद्दे को स्वराज से जोड़ कर केन्द्र में ला खड़ा करना था। इसके अलावा उन्होंने स्त्री प्रश्नों पर पहले से चल रहे महिला आन्दोलन को राष्ट्रीय आन्दोलन से जोड़कर उन्हें भी जबरदस्त गति दी।गाँधीवादी नारीवाद के परम्परावादी होने की समस्त आलोचनाओं के उपरान्त भी यह सत्य है कि इसने राष्ट्रवादी गतिविधियों द्वारा स्त्रियों के बिंब को सफलतापूर्वक सबला के रूप में समाज में प्रतिष्ठित किया जो महिलावादी प्रयासों का आधार थी। सामाजिक मान्यता भी इस नये रूप में मिली जिसका महिला केंद्रित आन्दोलन के इतिहास में विशेष महत्व है। हालांकि परंपरागत कार्य विभाजन पर गाँधी जी के विचार स्त्रियों की विशेष सामाजिक भूमिका के सन्दर्भ में परंपरा के निकट जान पड़ते हैं परन्तु सत्याग्रही के रूप में राष्ट्र की मुख्यधारा से जोड़कर व्यवहार में उन्होंने उनके कार्यक्षेत्र की दृष्टि से क्रान्तिकारी बदलाव आरंभ किए। महिला को प्रदर्शन का नेतृत्व देने की परंपरा के मूल स्रोत गाँधी जी थे।

संदर्भ सूची

1. प्रतिभा जैन और संगीता शर्मा, *इतिहास लेखन में अदृश्य : स्वतंत्रता आन्दोलन में स्त्रियाँ*, जैन एवं शर्मा (संपा०), भारतीय स्त्री : सांस्कृतिक संदर्भ, राउत पब्लिकेश्न, जयपुर, 1998, पृष्ठ 7, 224
2. वही, पृष्ठ 10
3. वही, पृष्ठ 226
4. वही, पृष्ठ 224

5. उमा चक्रवर्ती और कुमकुम रॉय, *ब्रेकिंग आउट ऑफ इनविजीविलिटी,* एस0 जे0 बर्ग (संपा0) रिट्रीविंग विमेन्स हिस्ट्री : चेजिंग परसेप्शनूस ऑफ द रोल ऑफ विमेन इन पोलिटिक्स एण्ड सोसायटी, बर्ग/यूनेस्को, बर्ग पब्लिशिंग लिमिटेड, 1988, पृष्ठ 318
6. इलीना सेन (सम्पा0), *संघर्ष के बीच : संघर्ष के बीज जनांदोलनों में स्त्रियों की भागीदारी* सारांश प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2001, पृष्ठ 12
7. वही, पृष्ठ 10
8. वही, पृष्ठ 9
9. वही, पृष्ठ 12
10. प्रतिभा जैन, *भारतीय स्त्री : परम्परा एवं आधुनिक गाँधीय दृष्टिकोण,* जैन एवं ार्मा (सम्पा0) पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 249
11. जूडिथ ब्राउन, *गाँधी प्रिजनर ऑफ होप,* आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1990, पृष्ठ 210
12. प्रतिमा जैन, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 236
13. वही, पृष्ठ 240
14. वही, पृष्ठ 236
15. जे0बी0 कृपलानी, *गाँधी : हिज लाईफ एण्ड थॉट,* पब्लिकेशन डिविजन, नई दिल्ली, 1971, पृष्ठ 305
16. वही
17. वही
18. राघवन अ ु यर (संपा०), *मोरल एण्ड पॉलिटिकल राइटिंग्स ऑफ महात्मा गाँधी,* वोल्यूम– I कलेरेन्डन प्रेस आक्सफोर्ड, 1986, पृष्ठ 16
19. जे0बी0 कृपलानी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 306
20. वही, पृष्ठ 335
21. सरला देवी चौधरानी, ''अ वूमेन्स मूवमेंट'', *द मार्डन रिव्यू,* 1911, पृष्ठ 343
22. एम0एस0ए0 राव (सम्पा०), *सोशल मूवमेंन्ट्स इन इंडिया,* मनोहर, 2002, पृष्ठ 368
23. वहीं, पृष्ठ 370
24. वही, पृष्ठ 375
25. इलिना सेन (सम्पा०), *अ स्पेस विदिन द स्ट्रगल,* काली फॉर वीमेन, नई दिल्ली, 1990, पृष्ठ 10
26. जे0बी0 कृपलानी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 396
27. जेराल्डिन फोर्ब्स, *द न्यू कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, वूमेन इन मार्डन इंडिया,* कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2002, पृष्ठ 125
28. जे0बी0, कृपालानी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 396
29. वही, पृष्ठ 394
30. वही, पृष्ठ 395
31. *कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गाँधी,* जिल्द XXII, पृष्ठ 21
32. चमन लाल, *वैनिशिंग एम्पायर,* सागर पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1969, पृष्ठ 209, 210, 211, 212
33. कमला देवी चट्टोपाध्याय, *इनर रेसेसिस स्पेसिस : मेमोरिज,* नवरंग, नई दिल्ली, 1986, पृष्ठ 149–50

34. जेराल्डिन फोर्ब्स, द *पॉलिटिक्स ऑफ रिस्पेक्टेबिलिटी : इंडिया विमेंस एण्ड द इंडिया नेशनल कांग्रेस,* डी0ए0ली0 (सम्पा0) इंडियन नेशनल कांग्रेस : सन्टनरी हार्डन्साइट्स, ऑक्सफोर्ड युनिर्विसिटी नेशनल कांग्रेस, 1988, पृष्ठ 75
35. महात्मा गाँधी, ''व्हाट इज वूमेंस रोल'', *हरिजन,* फरवरी 24, 1940
36. प्रतिभा जैन, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 337
37. एम0एम0ए0 राव (सम्पा०), पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 370
38. जूडिथ ब्राउन, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 211
39. महात्मा गाँधी, *वूमेन एण्ड सोशल इन्जरिस्स,* नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1954, पृष्ठ 4–5
40. महात्मा गाँधी, *यंग इंडिया,* 21.07.1921 और 27.08.1925
41. वही, 19.08.1926
42. जे0बी कृपलानी, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 393
43. *यंग इंडिया,* 21.06.1928
44. वही, 03.02.1927
45. बारबरा संदर्ड, द *फेमिनिज्म ऑफ महात्मा गाँधी,* वी0टी0 पाटिल (सम्पा०), न्यू डायर्मेसन एण्ड पर्सपेक्टिक्स इन गाँधीज्म, इंटर इंडिया पब्लिकेशन, न्यू दिल्ली 1988, पृष्ठ 403
46. वही
47. वही, 406
48. राघवन अ ु यर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 62
49. बारबरा संदर्ड, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 405
50. वही, पृष्ठ 389
51. प्रतिभा जैन, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 241
52. बारबरा संदर्ड, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 406
53. वही, 407
54. जेराल्डिन फोर्ब्स, द *न्यू कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया,* कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली 2002, पृष्ठ 154
55. वही, पृष्ठ 156
56. प्रतिमा जैन, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 227
57. वही, पृष्ठ 249
58. लॉयड और सुजान रूडॉल्फ, द *मॉडर्निटी ऑफ ट्रेडिषन,* शिकागो प्रेस, 1967, भाग– 11, पृष्ठ 155
59. प्रतिभा जैन, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 250

मातृभाषा एवं शिक्षा नीति

डॉ0 मोहित कुमार लाल*

सारांश

प्रस्तुत आलेख में मातृभाषा के महत्त्व पर विचार किया गया है। मातृभाषा में शिक्षा ग्रहण करना स्वभाविक और आसान होता है क्योंकि भाषा सीखने में लगा समय एक अनावश्यक बोझ बन जाता है हम अपने मातृभाषा में ही अपने विचार प्रकट करते हैं। इस लेख में मैकाले द्वारा एक विदेशी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने के दुष्प्रभावों पर विचार किया गया है। इस आलेख में यह स्पष्ट किया गया है कि समय–समय पर विभिन्न शिक्षा समितियों ने मातृभाषा के महत्व को प्रतिपादित किया किन्तु अन्तोतगत्वा नई राष्ट्रीय शिक्षा निति ने मातृभाषा को ज्ञान के मध्यम के रूप में स्वीकार किया।

कुंजी शब्दः– नई शिक्षा नीति 2020 में भारत सरकार द्वारा प्रतिपदित शिक्षा नीति), मातृभाषा (बालक द्वारा घर में बोली जाने वाली भाषा) प्राच्यवादी (पूर्व के ज्ञान को महत्व देने वाले विचारक) पाश्चात्यवादी (वैसे विचारक जो पश्चिम के ज्ञान को एक मात्र ज्ञान मानते थे) पुनरूत्थान (प्राचीन ज्ञान के पुर्नस्थापना करने वाले विचार)

भूमिका

वर्तमान समय में भाषा का संबंध शिक्षा के साथ क्या है इस पर गंभीर विमर्श हो रहा है। वस्तुतः मातृभाषा, राष्ट्रीय भाषा, राजकीय भाषा, सरकारी काम काज की भाषा और इनके मध्य क्या संबंध होगा, यह एक विचारणीय विषय रहा है। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020–2022 में मातृभाषा पर विशेष बल दिया गया है। इस संदर्भ में मध्यप्रदेश राज्य ने यह घोषणा भी कर दी है कि चिकित्सा विज्ञान की पढ़ाई भी हिन्दी में की जाएगी। कुछ महाविद्यालयों ने भी यह घोषणा की है कि इंजनियरिंग की शिक्षा भी मातृभाषा में दी जाएगी। यह एक क्रांतिकारी कदम है क्योंकि पहले यह माना जाता था कि तकनीकी शिक्षा हिन्दी या भारतीय भाषाओं में देना संभव नहीं है क्योंकि तककनीकी भाषाओं में हिन्दी अथवा भारतीय भाषाओं में उपर्युक्त शब्दावली विकसित नहीं की गई थी। यह माना जाता है कि इन शब्दों का अनुवाद हिन्दी में हो ही नहीं सकता था वस्तुतः यह उस औपनिवेशिक सोच का ही परिणाम था जिसमें यह मान लिया गया था कि अंग्रेजी या यूरोपीय भाषा भारतीय भाषाओं से श्रेष्ठ है। जबकि जापान में विज्ञान और गणित जैसे विषय सरलता पूर्वक जापानी में पढ़ाए जाते है, भारत को यह सोच विकसित करने में 100 वर्ष लग गए। नई शिक्षा नीति 2020–22 अध्याय 22 भारतीय भाषाओं

*सहायक प्राध्यापक, विवि इतिहास विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची

कला और संस्कृति का संवर्धन में स्पष्टता से इस तथ्य का उल्लेख है।[1] "बच्चों में अपने सांस्कृतिक इतिहास, कला, भाषा एवं परंपरा की भावना और ज्ञान के विकास द्वारा ही एक सकारात्मक सुझाव इन पृष्ठ के पीछे है।

सांस्कृतिक पहचान और आत्मसम्मान का निर्माण किया जा सकता है। अतः व्यक्तिगत एवं सामाजिक कल्याण के लिए सांस्कृतिक जागकरूता और अभिव्यक्ति का योगदान महत्वपूर्ण है। यह वाक्य इस बात को स्वीकार करता है कि मातृभाषा के विकास से ही बच्चों में आत्मगौरव की भावना विकसित होगी। भाषा राष्ट्रीयता के विकास का एक महत्वपूर्ण वाहक है। इतिहास साक्षी है कि 1971 में बांग्लादेश के निर्माण के पीछे बांग्ला भाषा ही थी। 1956 में जब उर्दू, पाकिस्तान की राष्ट्रीय भाषा घोषित किया गया तभी से यह संघर्ष प्रारंभ हुआ था। भारत में राज्यों का निर्माण का एक आधार भाषा ही है। इसी तथ्य को राज्य पुनर्गठन आयोग ने स्वीकार किया था।

आधुनिक भारत में भाषायी आधार पर राज्यों का पुनर्गठन वस्तुतः भाषायी आधार पर राज्यों की मांग 1848–49 से ही प्रारंभ हो गई थी किन्तु सबसे तीव्र आंदोलन दक्षिण में हुआ।[2] सबसे आक्रामक आंदोलन आंध्र इलाके में तेलुगु भाषी लोगों ने किया। हिन्दी के बाद देश में तेलगु ही सबसे ज्यादा लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा थी। इसका एक समृद्ध साहित्यिक इतिहास था और यह विजय नगर साम्राज्य के अधीन ही था, उसी वक्त से आंध्र महासभा ने मद्रास के तेलुगु भाषा लोगों के बीच तेलुगु अस्मिता को जगाने के लिए कड़ी मेहनत की थी। वस्तुतः 1953 में आंध्र प्रदेश के निर्माण ने ही राज्य पुनर्गठन आयोग को देश के पुनर्गठन के लिए अनिवार्य बना दिया गया था। 1956 में इसी के प्रतिवेदन के आधार पर देश में भाषायी आधार पर 14 राज्य बनाए गए थे।

यह उल्लेख इसलिए किया गया है कि यह स्पष्ट हो जाए कि मातृभाषा राष्ट्रीयता की एक महत्वपूर्ण शक्ति है। इसी तथ्य को नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति के स्वीकार किया है।[3] भाषा निःसंदेह कला एवं संस्कृति से अटूट रूप से जुड़ी हुई है। विभिन्न भाषाएँ, दुनियाँ को भिन्न तरीके से देखती हैं। इसलिए मूल रूप से किसी भाषा को बोलने वाला व्यक्ति अपने अनुभवों को कैसे समझता है या उसे किस प्रकार ग्रहण करता है, यह उस भाषा की संरचना से तय होता है। विशेष रूप से किसी संस्कृति के लोगों का दूसरों के साथ बात करना जैसे परिवार के सदस्यों, प्राधिकार प्राप्त व्यक्तियों, समकक्षों, अपरिचित से बात करना आदि भाषा से प्रभावित होता है। यह सभी संस्कृति का प्रतिबिम्ब और दस्तावेज है। अतः संस्कृति हमारी भाषाओं से समाहित है। साहित्य, नाटक, संगीत, फिल्म आदि के रूप में कला की पूरी तरह सराहना करना, बिना भाषा के संभव नहीं है। संस्कृति के संरक्षण, संवर्धन और प्रसार के लिए हमें उस संस्कृति की भाषाओं का संरक्षण और संवर्धन करना होगा।"

औपनिवेशिक काल की भाषा नीति तथा भारतीय भाषाएँ

राष्ट्रीय शिक्षा नीति में केवल प्राथमिक ही नहीं वरन् उच्च और तकनीकी शिक्षा में मातृभाषा के प्रयोग को प्रोत्साहित करने का निर्णय लिया गया है। उच्चतर गुणवत्ता युक्त ऐसे उच्चतर शिक्षण संस्थानों का निर्माण और विकास करना जो स्थानीय और भारतीय भाषाओं में तथा द्विभाषी रूप से शिक्षण कराएँ। वस्तुतः राष्ट्रीय शिक्षा नीति में लॉर्ड मेकॉले के किए गए जान बुझकर भूलों का सुधार करने का प्रयास है यदि हम शिक्षा में भाषा नीति पर विचार करेंगे तो इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को देखना अनिवार्य है। भारत में प्राचीन काल से ही उच्च कोटि के शिक्षा संस्थान उपस्थित थे जहाँ मातृभाषा में शिक्षा दी जाती थी। मध्यकाल में भी भारत में अनेक विद्यालय, मदरसे और मकतब थे। भारत में अंग्रेजों के आने के पूर्व शिक्षा की अपनी राजकीय प्रणाली थी। जब 1813 में चार्टर अधिनियम पारित हुआ तब इसमें प्रावधान हुआ कि ईस्ट इंडिया कम्पनी अपने राजस्व में से 1 लाख रूपये शैक्षणिक कार्य हेतु खर्च करेगी। किन्तु यह निश्चित नहीं किया गया था कि यह राशि कैसे और किस मद में खर्च होगी। इस पर विचार करने हेतु एक जन सार्वजनिक शिक्षा समिति का विचार सामने आया वस्तुतः 1813 से लेकर 1833 तक यह विवाद चलता रहा। सार्वजनिक शिक्षा समिति में 10 सदस्य थे जो पाँच–पाँच प्राच्यवादी और पाश्चात्यवादी में विभाजित थे। दोनों समूहों के अपने–अपने तर्क थे। इसी कालक्रम में 1833 का चार्टर एक्ट आया जिसे 1 लाख की राशि को 10 लाख कर दिया गया। इसी एक्ट में गर्वनर जनरल की परिषद ने एक लॉ जनरल के पद का प्रावधान किया। इस पद पर लॉर्ड मैकॉले की नियुक्ति की गई। वस्तुतः तत्कालिक गर्वनर जनरल लार्ड विलियम बैंटिक ने मैकॉले को यह अधिकार दिया कि वे 1813 और 1833 के चार्टर एक्ट की व्याख्या करें।

मैकॉले की भारतीय भाषा–विरोधी नीति

इस संदर्भ में दो फरवरी 1835 को मैकॉले ने अपना मंतव्य दिया। ऐसा प्रतीत नहीं होता कि किसी भी व्याख्या कला से संसद के एक्ट का वह अर्थ लगाया जा सकता है कि इसमें किन्हीं निश्चित भाषाओं या विज्ञान के अध्ययन के बारे में कुछ नहीं कहा गया है। साहित्य के पुनरूथान और संवर्द्धन तथा विज्ञान में भारतीयों को प्रोत्साहन देने के लिए और ब्रिटिश प्रदेशों में रहने वालों के लिए, ज्ञान–विज्ञान के प्रसार व संवर्द्धन के लिए एक राशि अलग रखी गई है। यह कहा जाता है बल्कि मान लिया गया है कि साहित्य से संसद का मतलब केवल संस्कृत और अरबी साहित्य ही रहा होगा कि इसमें सम्मान सूचक शब्द 'विज्ञान' 'भारतीय' कभी ऐसे भारतियों के लिए प्रयोग में ना लाये गये होते जो मिल्टन की कविता, लॉक के आध्यात्मिक दर्शन और न्यूटन के भौतिक शास्त्र से परिचित होते, बल्कि इन शब्दों का संबंध ऐसे लोगों से रहा होगा जिन्होंने हिन्दुओं के धर्म ग्रंथों में कुछ खास के सभी उपयोगी और ईश्वर

में विलीन हो जाने के सभी रहस्यों को अध्ययन किया हो यह व्याख्या संतोषजनक नहीं प्रतीत होती है। इसके बाद मैकाले ने एक्ट की अपनी व्याख्या विशेषकर शिक्षा के लिए रखी गई एक लाख रूपए की राशि के उपयोग के संबंध में की। उन्होंने तर्क दिया कि यह रूपया लोगों का बौद्धिक स्तर सुधारने के लिए रखा गया है और फिर सवाल किया गया कि इसे उपयोग में लाने का सबसे लाभकारी तरीका कौन सा है? अपने प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होंने बौद्धिक स्तर को ऊँचा उठाने के लिए देशी भाषाओं को माध्यम मानने की बात अस्वीकार कर दी। इसके बाद अब या तो अंग्रेजी भाषा या भारत की प्राचीन भाषाएँ संस्कृत और अरबी ही रह गई और फिर मैकाले ने अंतिम सवाल पूछा, 'जानने योग्य सबसे अच्छी भाषा कौन सी है? इसका जवाब भी उन्होंने स्वयं दिया:, मुझे संस्कृत या अरबी का कोई ज्ञान नहीं है। लेकिन मुझसे जहाँ तक हो सकता था, मैंने इन भाषाओं का ठीक–ठीक अंदाजा लगाया है। इस वक्तव्य से यह स्पष्ट है कि मैकाले को भारतीय भाषा का कोई ज्ञान नहीं था किन्तु उन्होंने यह घोषणा कर दी की शिक्षा का एकमात्र माध्यम अंग्रेजी भाषा ही है। विचारणीय विषय यह है कि मैकॉले की सोच के पीछे कोई सद्दिच्छा थी, पूर्वाग्रह था अथवा औपनिवेशिक सोच को इस प्रकार प्रतिपादित किया।[4] "एक अच्छे यूरोपीय पुस्तकालय की एक अलमारी भारत तथा अरब के सम्पूर्ण साहित्य से कम महत्वपूर्ण नहीं है।" उसकी ओपनिवेशिक सोच और अंग्रेजी श्रेष्ठता का परिचयक यह कथन ही है।" यह भाषा पाश्चात्य भाषाओं में भी सर्वोपरि है। जो इस भाषा को जानता है, वह सुगमता से उस विशाल ज्ञान–भण्डार को प्राप्त कर सकता है जिसे विश्व की सबसे बुद्धिमान जातियों ने रचा है। वस्तुतः मैकाले भारत में शिक्षा का विकास करना चाहता था। वह जानता था कि 10 लाख की राशि से भारत में शिक्षा का विकास हो ही नहीं सकता वह चाहता था कि एक ऐसा वर्ग तैयार हो जो औपनिवेशिक सेवा में क्लर्क का काम कर सके वह भारत में शोध अथवा नवीन ज्ञान को प्रोत्साहित करना ही नहीं चाहता था उसने स्वयं लिखा है कि[5] "हम ऐसे वर्ग को तैयार करें जो हमारे और हमारी करोड़ो प्रजा के बीच दुभाषिए का काम कर सके एक ऐसा वर्ग जो शरीर और रंग से भारतीय हो। इसी वर्ग पर भाषाओं को परिष्कृत बनाने, पश्चिम की भाषाओं में से विज्ञान के शब्द उधार लेकर इन भाषाओं को समृद्ध बनाने और ज्ञान को साधारण जनता तक पहुँचाने के लिए धीरे–धीरे इन भाषाओं को उचित माध्यम बनाने का काम छोड़ सकते है।"

वस्तुतः औपनिवेशिक शासन ने इस तथ्य की उपेक्षा कर दी थी कि भारत के पास एक विस्तृत स्कूलों का जाल उपलब्ध था। प्रत्येक गांव में प्राथमिक और उच्च विद्यालय कार्यरत थे जिनसे भारतीय भाषाओं में बच्चों को शिक्षा दी जाती थी। इस तथ्य की पुष्टि अंग्रेज विद्वानों ने भी की है। उनमें सबसे प्रमुख नाम विलियम एडम का है जिसने अपने तीन प्रतिवेदनों के आधार पर यह सिद्ध किया था कि बंगाल में देशी शिक्षा प्रणाली का एक सशक्त केन्द्र था।

इस दिशा में कार्य करते हुए लॉर्ड ऑकलैंड ने स्वीकार किया कि भारत में विस्तृत शिक्षा कार्यक्रम चलाना संभव नहीं है किन्तु सरकार के पास आधारभूत संरचना का अभाव है लॉर्ड आकलैंड ने बंगाल प्रांत में प्रत्येक जिले में एक जिला स्कुल खोलने का निश्चय किया जहाँ अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा दी जाती। उसने निस्पादन निति को स्वीकार किया।

भारतीय भाषाओं के समर्थक ब्रिटिश अधिकारी

भारत में देशी शिक्षा को अंग्रेज अधिकारियों ने भी स्वीकार किया। इस संदर्भ में 1840 में पूना संस्कृत कॉलेज में प्राचार्य निरन्तर कैंडी ने अपना विचार इन शब्दों में प्रकट किया था। "मुझे ऐसा लगता है कि अंग्रेजों की शिक्षा को बहुत अधिक प्रोत्साहन नहीं दिया जा सकता और न ही इसे बहुत ज्यादा महत्व दिया जा सकता है। ऐसा कम से कम भारत के बौद्धिक और नैतिक विकास की योजना के संदर्भ में तो बिल्कुल ही नहीं किया जा सकता। मैं विनम्रतापूर्वक कहना चाहता हूँ कि आम जनता को जिस माध्यम से पढ़ाया लिखाया जा सकता है वह माध्यम लोगों की क्षेत्रीय भाषाएँ ही हो सकती है, अंग्रेजी या संस्कृत नहीं।[6]

इस संदर्भ में कैंडी के अतिरिक्त व्यवहारिक स्तर पर कार्य उत्तर पश्चिम प्रांत के ले0 गर्वनर जेम्स टोयासन ने किया उन्होंने 8 जिलों में देशी भाषा के माध्यम से शिक्षा देने के लिए विद्यालय खोले। शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिए विशेष विद्यालय खोले। ये विद्यालय इतने सफल रहे कि इसकी प्रशंसा भी अंग्रेज अधिकारियों ने की। बंगाल के शिक्षा परिषद के सचिव एफ॰जं॰ मुआत ने टॉयसन के स्कूलों के निरीक्षण के बाद 1853 ई0 में रिपोर्ट दी कि ये स्कूल बंगाल के किसी भी देशी स्कूल से अच्छे हैं।[7] इन स्कूल के छात्रों को नए विषयों का काफी अच्छा प्रारंभिक ज्ञान था।"

वस्तुतः यह स्वीकारोक्ति इस बात को स्पष्ट करती है कि यदि ब्रिटिश सरकार ने भारतीय भाषाओं के विद्यालयों को आर्थिक सहायता दी होती तो एक ज्ञान आधारित समाज की स्थापना हो गयी होती। हमारी शिक्षा प्रणाली ज्ञान के स्थान पर केवल डिग्री प्रदान करती है जिससे हम केवल सरकारी नौकरी प्राप्त करने के ही योग्य बन पाते हैं।

विश्वविद्यालयों की स्थापना तथा भारतीय भाषाएँ

शिक्षा के क्षेत्र में एक क्रांतिकारी कदम 1854 में उठाया गया जब वुड का आज्ञा पत्र सामने आया। इसी के आधार पर भारत में विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई। 1857 में कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में तीन विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। वुड के सम्मुख यह प्रस्ताव था कि भारत में विश्वविद्यालय ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के मॉडल पर स्थापित हों अथवा लंदन विश्वविद्यालय के मॉडल पर वुड की घोषणा पत्र ने लंदन विश्वविद्यालय के मॉडल फी अपनाया अर्थात् भारत के विश्वविद्यालय परीक्षा लेकर केवल डिग्री प्रदान करते थे। 1881 तक कोई और विश्वविद्यालय की

स्थापना हुई। विश्वविद्यालय स्तर पर प्राच्यविद्या और मातृभाषा को पहली बार महत्व प्रदान किया गया क्योंकि लाहौर विश्वविद्यालय शेष विश्वविद्यालयों से निम्न रूप से भिन्न था।

1. मातृभाषा के माध्यम द्वारा पाश्चात्य साहित्य एवं विज्ञान की शिक्षा देना।
2. प्राच्य साहित्य की परीक्षाओं में उर्दू के माध्यम से उत्तीर्ण होने वाले छात्रों के स्नातक आदि की उपलब्धियाँ देना।
3. अरब, फारसी और संस्कृत की परीक्षाओं में सफल होने वाले विद्यार्थियों को 'प्राच्य साहित्यिक' उपलब्धियाँ देना।
4. हिन्दू एवं मुस्लिम कानून तथा औषध शास्त्र के विद्यार्थियों को भारतीय उपलब्धियाँ देना।
5. देशी भाषाओं की परीक्षाओं की व्यवस्था करना।

मातृभाषा और देशी ज्ञान को आर्य समाज आंदोलन ने गति दी। इस दिशा में महात्मा हंसराज ने दयानंद एंग्लो स्कूल की स्थापना कर वैदिक ज्ञान को अंग्रेजी माध्यम से पढ़ाने का निश्चय किया जिसका उद्देश्य परंपरागत भारतीय दर्शन को सामने लाना था। 1902 में स्वामी श्रद्धानंद ने गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार में स्थापित किया। यह मातृभाषा में भारतीय ज्ञान को प्रोत्साहित करने का एक सराहनीय कार्य था। इन कदमों से भारत में मातृभाषा के प्रति आकर्षण उत्पन्न हुआ। इस समय तक राष्ट्रवादी लेखन प्रारंभ हो चुका था।

यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि वुड आज्ञापत्र 1854 के पश्चात् उदार गर्वनर जनरल लार्ड रिपन (1882–84) ने 1882 में प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा संबंधी प्रगति की जाँच हेतु विलियम हंटर की अध्यक्षता में एक कार्य समिति बनाया जिसने अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जिसमें उसने यह परामर्श दिया था कि[8] "प्राथमिक शिक्षा उपयोगी विषयों में तथा स्थानीय भाषा में दी जानी चाहिए। वस्तुतः यह विचारणीय विषय है कि मैकाले के पश्चात् निरंतर यह महसूस किया जा रहा था कि मातृभाषा में शिक्षा दी जाए। यह बच्चों के लिए अधिक उपयोगी होगा। इससे ज्ञान का क्षितिज विस्तृत होगा। फिर भी व्यवहारिक स्तर पर इस दिशा में प्रयास सीमित रहे। वस्तुतः इसका कारण क्या था? इस विषय पर प्रकाश डालने की आवश्यकता है।[9] इन कमजोरियों में से अधिकांश की जड़ में वित्तीय समस्या थी। सरकार शिक्षा पर कभी एक मामूली रकम से अधिक खर्च करने को तैयार नहीं थी। यहाँ तक कि 1886 में भी उसने अपनी लगभग 47 करोड़ रूपयों की आय में से एक करोड़ रूपए ही शिक्षा पर खर्च किए।" इस कथन से स्पष्ट है कि औपनिवेशिक सरकार की प्राथमिकता भारत में शिक्षा का विस्तार नहीं था। इसी कारण सरकार ने इस दिशा में कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं किया। 1947 में जब भारत आजाद हुआ तब साक्षरता का प्रतिशत अत्यंत कम था। 1951 की जनगणना में यह केवल 18 प्रतिशत था अर्थात् केवल 5 में से एक भारतीय ही अक्षर ज्ञान से परिचित था। माध्यमिक और उच्च शिक्षा का प्रतिशत तो इससे भी बहुत कम था।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी बनाम मातृभाषा सम्बंधी विवाद

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि औपनिवेशिक शासन में शिक्षा सरकार की प्राथमिकता नहीं थी चूँकि सरकारी कार्य की भाषा अंग्रेजी थी और सरकार के कार्य करने हेतु भारतीयों की आवश्यकता थी। अतः मातृभाषा की उपेक्षा स्वभाविक थी। किन्तु स्वतंत्रता के पश्चात् भाषा विवाद ने एक नया स्वरूप ले लिया। अंग्रेजी के विरोध के स्थान पर संघर्ष का मुद्दा हिन्दी और मातृभाषा बन गई। उत्तर भारत के अधिकांश जन नेता हिन्दी को राज्य भाषा बनाना चाहते थे लेकिन क्षेत्रीय भाषा के समर्थकों ने इसे स्वीकार नहीं किया। यह विरोध दक्षिण भारत में अधिक तीव्र था। यह सहमति बनी कि 15 वर्ष तक अंग्रेजी को राजभाषा के रूप में स्वीकार किया जाय। इस प्रकार औपनिवेशिक काल में अंग्रेजी को जो प्रधानता मिली हुई थी, वह यथावत् बनी रही। प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में अध्ययन प्रारंभ हुआ किन्तु उच्च और तकनीकी शिक्षा अब भी अंग्रेजी माध्यम से ही दी जाती रही। 1964 में जब शिक्षा के लिए कोठारी आयोग का गठन हुआ तब उसने अपने प्रतिवेदन में कहा था कि[10] स्कूलों एवं कॉलेजों के स्तरों पर मातृभाषा शिक्षा के माध्यम के रूप में महत्वपूर्ण सत्य है। सम्भवत् स्कूली तथा उच्च शिक्षा के लिए शिक्षा का माध्यम सामान्य रूप से यही होना चाहिए। इसलिए प्रादेशिक भाषाएँ उच्चतर स्तर पर शिक्षा के माध्यम के रूप में ग्रहण की जानी चाहिए।

वस्तुतः: 1986 की शिक्षा नीति में मातृभाषा को महत्व देने के लिए त्रिभाषा सिद्धांत को स्वीकार किया गया। इसका उद्देश्य मातृभाषा को समृद्ध करना था। इन नीतिगत फैसलों के बावजूद आज भी भारत में मातृभाषा की उपेक्षा की जा रही है। तर्क यह दिया जा रहा है कि तकनीकी ृाब्दावली का मातृभाषाओं में अभाव है। अतः अंग्रेजी के बिना उच्च एवं तकनीकी शिक्षा संभव ही नहीं है।

संविधान सभा का निर्णय

भारत में दिए जाने वाले इस तर्क का उत्तर एशिया में ही जापान में 19वीं सदी में और तुर्की ने 20वीं सदी में दे दिया है। दोनों राष्ट्रों का विकास क्रमशः जापानी और तुर्की भाषा में हुआ। भारत में भी यह संभव था किन्तु इच्छाशक्ति की कमी थी। हमारे देश में अनुवाद का कार्य धीमी गति से प्रारंभ हुआ। वस्तुतः बहुभाषीय राष्ट्र में संघर्ष का केन्द्र हिन्दी बनाम क्षेत्रीय भाषा हो गया। हमने विदेशी भाषा को संपर्क भाषा मान लिया जो केवल दो प्रतिशत भारतीय ही बोलते थे। संविधान सभा में ही यह प्रश्न संदिग्ध हो गया था कि राष्ट्र भाषा, संपर्क भाषा और सरकारी भाषा क्या हो? अंतोगत्वा निर्णय हुआ था कि"[11] संघ की आधिकारिक भाषा हिन्दी होगी जिसकी लिपि देवनागरी होगी। लेकिन संविधान लागू होने के 16 साल बाद तक ही संघ की भाषा के तौर पर अंग्रेजी का प्रयोग जारी रहेगा जैसा संविधान के लागू होने से पहले किया जा रहा था। किसी भी सूरत में साल 1965 तक ही अदालतों की कार्यवाहियाँ ओर उसके नोट, सरकारी सेवाएँ,

अखिल भरतीय नौकरशाही आदि का सारा काम अंग्रेजी में किया जाएगा। 1965 के बाद ये सारे कार्य हिंदी में किए जाएँगे। पर संविधान सभा के इस निश्चय को हमने 1965 में लागू नहीं किया। शिक्षा अंग्रेजी में ही दी जाती रही।

काँग्रेस तथा नेहरू की नीति

विचारणीय विषय यह है कि जब औपनिवेशिक काल में सभी प्रमुख नेता इस बात से सहमत थे कि अंग्रेजी केवल 2 प्रतिशत भारतीयों की भाषा है, तब हमने इस भाषा को क्यों कर जारी रखा? इस संदर्भ में समाजवादी नेतृत्व का तर्क था कि[12] जनता का एक तबका ऐसा उभरा है जो अंग्रेजी के ज्ञान के कारण विशेषाधिकार वाला वर्ग बन गया है और अब वह गैर–बराबरी और अज्ञान के इस हथियार को हमेशा बनाए रखना चाहता है ताकि उनके बेटे–बेटियाँ हमेशा उनकी तरह विशेषाधिकार को भोगें। नौकरशाही और उच्च मध्य वर्ग के लोग हमेशा ही अंग्रेजी भाषा के पक्ष में रहे है। पैसे वालों के लिए जरूरी है कि वे शासकों का समर्थन करें ताकि उनकी तिजोरियाँ सुरक्षित रहे भारत के बुद्धिजीवियों ने कुछ समय से इस बात की चिंता करना ही छोड़ दिया है कि उन पर कौन शासन करता है। स्वतंत्रता का नेतृत्व करने वाली कांग्रेस पार्टी और वे भी इन आदर्शों को अपना नहीं पाई। गाँधी जी के सपने खत्म कर दिए गए और उनके इच्छाएँ अपमानित हुई लोहिया का यह विचार प्रासंगिक है क्योंकि कांग्रेस प्रारंभ से स्वतंत्रता तक मातृभाषा के पक्ष में थी। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि 1937 में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपने लेख में मुख्य प्रांतीय भाषाओं की काफी प्रशंसा की थी। उनके विचार से प्रांतीय भाषाओं के क्षेत्र में तनिक भी हस्तक्षेप किए बगैर एक ऐसी भाषा जरूर होनी चाहिए जो अखिल भारतीय स्तर पर संचार के काम आ सके। अंग्रेजी आम जनता से बहुत ही कटी हुई थी, इसलिए उन्होंने उसके बदले हिन्दुस्तानी को अपनाने की बात की जिसे उन्होंने हिन्दी और उर्दू के बीच में एक 'सुनहरे माध्यम' के रूप में परिभाषित किया।[13] उस समय तक देश के बंटवारे की दूर–दूर तक कोई आशंका नहीं दिख रही थी। इसलिए नेहरू ने सोचा कि दोनों ही लिपियों का इस्तेमाल किया जा सकता है। हिन्दुस्तानी का एक आसान व्याकरण था और इसे आसानी से सीखा जा सकता था। नेहरू की राय में इसे और भी ज्यादा आसान बनाने के लिए भाषाविद अंग्रेजी की तर्ज पर एक सामान्य और शुरूआती किस्म की हिन्दुस्तानी भाषा का विकास कर सकते है जिसे दक्षिणी सूबों में राज्य द्वारा बढ़ावा दिया जा सके। यहाँ हम नेहरू जी के साथ–साथ गांधीजी के विचारों को भी देख सकते है उन्होने अनुभव किया था कि[14]" शिक्षा को वे देशवाशियों की खुशी के लिए 'आशा की किरण' मानते थे। यह सब उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में विभिन्न मातृभाषाएँ बोलने वाले बच्चों को अपने आश्रम में पढ़ाकर आत्म–अनुभव से ही सीखा था।"

दो प्रकार की शिक्षा प्रणाली की व्यवस्था

यह स्पष्ट है कि मातृभाषा के उपयोग के पक्ष में सभी प्रमुख राजनेता सहमत थे फिर भी स्वतंत्र के पश्चात् हमारे देश में दो प्रकार की शिक्षा प्रणाली स्थापित हो गई। वस्तुतः महात्मा गांधी इस तथ्य से अवगत थे कि विदेशी भाषा सीखने में छात्रों का अत्यधिक समय तथा धन खर्च हो रहा है जिससे ज्ञान की अन्य शाखाओं को समझने और जानने के लिए उनके पास अवसर ही नहीं होगा। शिक्षण का माध्यम अंग्रेजी होने के कारण शिक्षा प्राप्त करने वाले बालकों के बौद्धिक स्त्रोतों पार इतना अधिक दबाव पड़ता है कि उन्हें जो उच्च विचार विद्यालयों द्वारा प्राप्त देते हैं, उनको वे पचा नहीं पाते है।[15] अच्छे से अच्छे विद्यार्थी को भी तोते की भाँति रटना पड़ता है। वस्तुतः यह उल्लेखनीय है कि तमाम नीतिगत घोषणाओं के बावजूद इस देश में दो प्रकार की शिक्षा नीति अस्तित्व मे है, एक उच्च वर्ग के लिए और दूसरी सरकारी विद्यालय जहाँ निम्न वर्ग के लोग शिक्षा ग्रहण करते है।[16] हम शिक्षा के क्षेत्र में 'इंडिया' और 'भारत' बना रहे है। इस दूरी को कम करने के लिए आज शिक्षा के अधिकार अधिनियम 2010 के अंतर्गत प्रारंभ कक्षाओं में निजी स्कूलों में 25 प्रतिशत स्थान वंचित वर्ग के बच्चों के लिए निर्धारित किया गया। इसका नीजी स्कूलों के प्रबंधकों तथा वहाँ अपने बच्चों को भारी–भरकम फीस देकर प्रवेश दिलाने वाले पालकों ने भरपूर विरोध किया। मामले को न्यायालय भी ले जाया गया सफलता नहीं मिली यह अलग बाता है इस संबंध में जो तर्क अक्सर दिया जाता था, वह था वे बच्चे हमारे बच्चों के साथ कैसे बैठ सकते हैं, वे हमारे स्तर तक कैसे आ सकते है? वे सांस्कृतिक तथा आर्थिक दृष्टि से हमसे बहुत पीछे हैं इत्यादि।

निष्कर्ष

उपरोक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि मातृभाषा के विकास के लिए हम जितना भी प्रयास करें जितनी भी संगोष्ठी का आयोजन करें, शिक्षा नीति में उल्लेख करें, समाज का एक वर्ग अंतर्राष्ट्रीय के नाम पर अंग्रेजी के वर्चस्व को बनाए रखने के लिए प्रयासरत व अपने पक्ष में तर्क गढ़ता रहता है किन्तु जब तक हम इस बहुभाषीय राष्ट्र में मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम नहीं बनाएँगे तब तक हम राष्ट्र में ज्ञान आधारित समाज की संरचना करने में असफल रहेंगे। अतः इसी तथ्य की पुष्टि वर्तमान राष्ट्रपति श्रीमती द्रोपदी मुर्मु ने शिक्षक दिवस पर दिए भाषण में अभिव्यक्त करती है। अगर विज्ञान, साहित्य और सामाजिक विज्ञान की पढ़ाई मातृभाषा में कराई जाए तो इन क्षेत्रों में प्रतिभाएँ और निखर कर सामने आएंगी। राष्ट्रपति ने कहा कि जब शिक्षक मातृभाषा पढ़ाते है तो विद्यार्थी अधिक सहजता से अपनी प्रतिभा का विकास कर सकते हैं। शिक्षकों को संबोधित करते हुए कहा, आज कि ज्ञान विज्ञान, अनुसंधान और नवाचार विकास के आधार है। इन क्षेत्रों में भारत की स्थिति को और मजबूत बनाने की आधारशिला स्कूलों में ही

निर्मित होती है। माताएँ ही हमारे जीवन के आरंभ में हमें जीने की कला सिखाती हैं। माता के बाद शिक्षक हमारे जीवन में शिक्षा को आगे बढ़ाते हैं।

संदर्भ सूची

1. अध्याय 22, *भारतीय भाषाओं, कल और संस्कृति का संवर्द्धन,* नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति।
2. गुहा रामचन्द्र, *गाँधी के बाद भारत,* पेंगुइन बुक्स, गुंडगांव, 2007, पृष्ठ सं0–232।
3. पूर्व उद्धृत, पृष्ठ 87
4. यादव सिंह नाथ केदार, *भारत में आधुनिक शिक्षा का विकास,* अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ सं0–33।
5. दास चोपड़ा, पुरी, *भारत का सामाजिक संस्कृति और आर्थिक इतिहास,* राजीव बैरी मेकमिलन इंडिया, लिमिटेड, नई दिल्ली, 2004, पृष्ठ–250।
6. वही, पृष्ठ 251
7. पूर्व उद्धृत, पृष्ठ 53
8. शुक्ल, एल.आर., *आधुनिक भारत का इतिहास,* कार्यान्वयन निदेशालय, नई दिल्ली, 1997, पृष्ठ 164।
9. चन्द्र विपिन, *आधुनिक भारत का इतिहास,* ओरिएंट ब्लैकस्वॉन प्रा0लि0 हैदराबाद, 2011, पृष्ठ–114।
10. पूर्व उद्धृत, पृष्ठ – 250
11. पूर्व उद्धृत, पृष्ठ – 150
12. कपूर मस्तराम, *स्मरण लोहिया,* अनामिका पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृष्ठ –328–29
13. पूर्व उद्धृत, पृष्ठ–148–49
14. राजपूत सिंह जनमोहन, *गाँधी को समझने का यही समय,* पृष्ठ–55–66, किताब घर प्रकाशन, दिल्ली, 2019,
15. वही, पृष्ठ – 67
16. पूर्व उद्धृत, पृष्ठ 87

पंडित जवाहर लाल नेहरू की इतिहास दृष्टि

डॉ0 राजकुमार*

पंडित जवाहर लाल नेहरू बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे। कुछ लोगों ने इनके व्यक्तित्व को एक पेचीदा व्यक्तित्व से भी तुलना की है।[1] पंडित नेहरू को पुस्तके पढ़ने का बड़ा चाव था। पुस्तक खरीदने एवं पढ़ने की उनकी आदत देश के प्रधानमंत्री बनने के बाद भी यथावत बनी रही। इस संबंध में अनेक संस्मरण भी मिलते है।[2] पंडित नेहरू की रूचि इतिहास की पुस्तकों में अधिक थी। हालांकि पंडित नेहरू ने कभी भी अपने को एक इतिहासकार की श्रेणी में नहीं रखा और न ही बचपन में भी उन्होने इतिहास की कोई पुस्तक पढ़ी। संभवतः इतिहास की पहली पुस्तक जो स्कूल में पुरस्कार स्वरूप उन्हें प्राप्त हुई थी, जी0एस0 ट्रेविलियन लिखित 'गैरीबाल्डी' को उन्होने पढ़ी थी। स्वतंत्रता संग्राम के संघर्ष काल में अपने 10 वर्ष की जेल यात्रा में ही उन्होने इतिहास का अध्ययन तथा लेखन कार्य किया था। उनकी इतिहास संबंधी प्रसिद्ध रचनाएँ 'ग्लिम्पसेज ऑफ वर्ल्ड हिस्ट्री तथा 'द डिस्कवरी ऑफ इंडिया' भी इसी कालखण्ड में लिखी गई है।[3] पहली पुस्तक में 1997 पत्रों के द्वारा अपनी पुत्री इंदिरा गॉधी को विश्व के संदर्भ में भारत के इतिहास को समझने के प्रयत्न किया तथा दूसरी पुस्तक में अपनी नजरों से देखे, भारत का वर्णन किया है।

पंडित नेहरू की इतिहास दृष्टि में उनका पारिवारिक परिवेश, बचपन से 1912 ई0 तक प्रायः भारतीय जनजीवन से बिलकुल अलग, भारतके संस्कृत तथा अन्य साहित्य के प्रति कम जानकारी साथ ही पश्चिम साहित्य के प्रति लगाव तथा अध्यात्मिक आकर्षण ने उनकी इतिहास दृष्टि को परिपक्व किया।

पंडित नेहरू ने अपनी पुस्तक 'विश्व इतिहास की झलक' में इतिहास विषय के बारे में अपने विचार यदा–कदा व्यक्त किये है। इससे यह भान होता है कि वे भारत के इतिहास लेखक के बजाय भारत के निर्माता बनने के अधिक इच्छुक थे। पंडित नेहरू की दृष्टि भारतीय अतीत के वर्णन के बजाय भविष्य में होनेवाले घटना चक्रों के प्रति अधिक थी। पंडित नेहरू ने स्वयं लिखा[4] है ''इतिहास पढ़ना अच्छा है लेकिन उससे ज्यादा दिलचस्प और दिल लुभावने वाली बात इतिहास के निर्माण में मदद देना है। तुम (इंदिरा गाँधी) जानती हो कि हमारे देश में आज इतिहास का

*सहायक प्रोफेसर, विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, रॉची विश्वविद्यालय, रॉची

निर्माण हो रहा है। भारत का पिछला इतिहास बहुत ही पुराना है और प्राचीनता के कोहरें में खो गया है जो दुःखद और अप्रिय युग भी है, जिनकी याद करके हमें शर्म आती है और ग्लानि होती है।'' हालांकि उन्होने यह भी लिखा है[5] ''लेकिन सब बातों का लिहाज करते हुए हमारा पिछला जामाना बहुत शानदार है, जिस पर हम सही तौर पर गर्व कर सकते है। और जिसका ख्याल करके हम खुशी हासिल कर सकते है। लेकिन आज हमें इतनी फुरसत नहीं कि हम अतीत को याद करने बैठें। हमारे दिमाग में तो यह भविष्य है जिसका हम निर्माण कर रहे है, भरा पड़ा है और वह वर्तमान है, जिसमें हमारा पूरा समय और हमारी पूरी शक्ति लग रही है।''

पंडित नेहरू के उपरोक्त कथन से तीन बिन्दुओं की ओर ध्यान आकृष्ट होता है। प्रथम, वे इतिहास लेखन को बहुत कम महत्व देते हैं, जबकि अपने को इतिहास निर्माता के रूप में व्यक्त करते है। इसके विपरीत आस्कर वाईल्ड जैसों का विचार है कि इतिहास का निर्माण कोई भी कर सकता है, परन्तु इतिहास लेखन कोई महान व्यक्ति ही कर सकता है। परन्तु यहॉ पर पंडित नेहरू का विश्लेषण न्यायोचित या तर्कसंगत नहीं लगता। दूसरे, पंडित नेहरू दबी जबान से अतीत की प्रशंसा करते है, परन्तु स्थान–स्थान पर भारतीय अतीत को दुःखद, अप्रिय, शर्म और ग्लानि का हेतु बतलाते है। जबकि भारत के सभी प्रमुख इतिहासकारों ने भारत के अतीत की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। स्वामी विवेकानन्द ने लिखा[6] ''जब तक हिन्दू जाति अपने अतीत को भूली हुई थी, तब तक संज्ञाहीन अवस्था में पड़ी रही और अतीत की ओर दृष्टि जाते ही चहुॅओर पुनर्जीवन के लक्षण दिखाई दे रहे हैं। ''उन्होने पुनः लिखा[7] ''हिन्दू लोग अतीत का जितना ही अध्ययन करेंगें उनका भविष्य उतना ही उज्ज्वल होगा'' साउथ ऐशियन स्टडीज के निदेशक रहे सुनील खिलानी लिखते है[8] ''अब मैं किस प्रकार अपनी अतीत में रूचि रखता हूॅ कि अतीत हमारे वर्तमान तथा भविष्य के लिए संबंधित है। अतः अतीत को झुठलाया नहीं जा सकता।'' पंडित नेहरू ने लिखा है कि इतिहास क्या है? ''परिवर्तनों का रिकार्ड''। उनके शब्दों में परिवर्तनों का अभिलेखें के सिवा और है भी क्या?[9] अगली पंक्ति में उन्होने लिखा[10] ''अगर पुराने जमाने में बहुत कम परिवर्तन हुए होते तो इतिहास लिखने के लिए कुछ मसाला ही नहीं मिलता।'' तीसरे, विश्व के देशों इग्लैण्ड, आस्ट्रलिया, उत्तरी अमेरिका की अपेक्षा भारत का अतीत अत्यंत उज्ज्वल तथा श्रेष्ठ है। अतः भविष्य के लिए अधिकतर विश्व के देशों का इतिहास नकारात्मक तथा ध्वंसात्मक है, भारत का इतिहास सकारात्मक तथा सृजनात्मक है। अतः उसे भुलाना लाभकारी नहीं हो सकता।''

पुनः पंडित नेहरू ने इतिहास के क्षेत्र और उसकी व्यापकता का चिंतन करते हुए कहा[11] ''मैं उन मशहूर आदमियों के बारे में तुम्हें लिखे बिना नहीं रह सकता जिनके शानदार कारनामों से इतिहास के पृष्ठ भरे हुए हैं । अपने ढंग पर उनके खुद के हाल भी दिलचस्प है और उनसे हमें उस जमाने को समझने में मदद मिलती है, जिसमें वे हुए थे। लेकिन इतिहास सिर्फ बड़े–बड़े आदमियों, बादशाहों, सम्राटों या इसी तरह के दूसरे व्यक्तियों के कारनामों का लेखा ही तो नहीं

है अगर ऐसा होता तो इतिहास का काम अभी तक खत्म हो जाना चाहिए था क्योंकि बादशाह और शहंशाह दुनिया के रंगमंच पर अब अकड़ कर चलते हुए दिखाई नहीं देते। लेकिन वास्तव में महान स्त्रियों और पुरूषों को अपने प्रदर्शन के लिए किसी ताज या तख्त या हीरे–जवारात या खिताबों की जरूरत नहीं है।''

पंडित नेहरू इस संदर्भ में सही दृष्टिकोण देते हुए इतिहास के सही स्वरूप को बतलाते हुए पुनः लिखते है[12] ''असली इतिहास में इधर–उधर के कुछ गिने–चुने व्यक्तियों का वर्णन नहीं होना चाहिए, बल्कि जनता के लोगों का होना चाहिए, जिनसे राष्ट्र बनता है।'' पंडित नेहरू विश्व के इतिहास क्रम में निरंतरता पाते हैं, जिसमें मनुष्य जाति जीविका के लिए सतत् संघर्षरत रही है।[13] वे भी इतिहास के कृत्रिम अथवा मनमाने विभाजन को स्वीकार नहीं करते। वे भारत के इतिहास को हिन्दूकाल, मुस्लिम तथा ब्रिटिश काल में विभाजन को मान्यता नहीं देते तथा इसे न ही विद्वतापूर्ण और न ही सही मानते है।''[14]

भारत के प्रमुख विद्वानों[15] तथा इतिहासकारों की भांति पंडित नेहरू ने भी भारतीय इतिहास के विकृतियों की ओर ध्यान दिया है। पंडित नेहरू लिखते है[16] ''स्कूल और कॉलेजों में जो इतिहास पढ़ाया जाता है उसमें आमतौर पर कुछ ठीक बातें नहीं होती। मैंने भारत के इतिहास के बारे में बहुत ही कम और इंग्लैड के इतिहास के बारे में कुछ थोड़ी–सी बातें स्कूल में पढ़ी। भारत का जो कुछ मैने पढ़ा वह ज्यादातर गलत या तोड़–मरोड़ किया हुआ और ऐसे लोगों का लिखा हुआ था जो हमारे देश को नफरत की नजर से देखते थे।'' उन्होने पुनः[17] स्वीकार करते हुए माना ''लेकिन खुद मेरी ही शिक्षा में कसर है और जो इतिहास मुझे पढ़ाया गया वही उट–पटांग है तो इसमें मेरा क्या कसूर है?''

पंडित नेहरू ने देश के छात्र–छात्राओं को इतिहास का गहन अध्ययन करने की बात की है जो उनके एक पत्र से पता चलता है जिसे उन्होने अपनी पुत्री को लिखा था। उक्त पत्र[18] में नेहरू ने चेतावनी देते हुए सभी देशों के या अपने देश के इतिहास को ज्यादा बढ़ाकर बताने की प्रकृति से बचने को कहा है। उन्होने कहा[19] कि ''कभी–कभी हम उसके (इतिहास के) किसी खास टुकड़े में उलझने लगते है और जरूरत से ज्यादा महत्व देने लगते है। करीब–करीब सभी की यह भावना यह होती है कि अपने देश का चाहे वह कोई–सा देश हो, इतिहास दूसरे देशों के इतिहास से ज्यादा शानदार है और अध्ययन के ज्यादा योग्य है।''एक अन्य पत्र में उन्होने लिखा कि इतिहास पढ़कर हमें यह सीखना चाहिए कि दुनिया ने कैसे आहिस्ते–आहिस्ते लेकिन निश्चित रूप से तरक्की की है।[20]

भारतीयों में हीन भावना पैदा करने, अपने शासन को सुदृढ़ करने, ईसाईयत का प्रचार एवं अपने को उच्चतर दिखाने के लिए अनेक ब्रिटिश इतिहासकारों ने यह भ्रमजाल फैलाया कि भारत का न कोई इतिहास उपलब्ध है और न ही भारतीयों को इतिहास लिखने की कोई अवधारणा थी।

इस निर्मूल तथा तथ्यहीन विचार का प्रचार जेम्स मिल से लेकर विंसेट आर्थर स्मिथ तक ने किया गया है। जेम्स मिल[21] ने लिखा है कि भारत में हिन्दू, मुस्लिम विजय से पूर्व इतिहास के बारे में पूर्णतः अज्ञानी है। उनका भूगोल, तिथि वर्णन तथा इतिहास विकराल, बेहूदा तथा असंगत है। हिन्दू ऐतिहासिक साधनों का पूर्णतः अभाव है। लार्ड मैकाले[22] ने भारतीय इतिहास को बेहूदा बताया। लुई डिक्न्सिन ने कहा कि कोई हिन्दू इतिहासकार है ही नहीं।[23] इंग्लैण्ड के मोरिज विंटरनिट्ज[24] ने भारतीय इतिहास को उपाख्यान, कल्पित तथा परम्परा कहा है। जुलियस एंगलिश[25] ने लिखा है कि भारतीयों के पास उपाख्यायिकाएँ व पुराण है अर्थात् वर्णात्मक कल्पित कथाएं व आख्यान है, कोई इतिहास नहीं है। आर्थर ऐंथोनी मैक्डॉनल्ड[26] ने इसे भारतीय साहित्य में एक कमजोर पक्ष कहा है। एडवर्ड गिब्बन[27] ने एशियाई इतिहास की बताया है। दार्शनिक जी0डब्लू0एफ0 हींगेल[28] ने कहा– भारतीयों के पास न केवल धर्म के अनेक प्राचीन ग्रंथ है तथा काव्य के श्रेष्ठ सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ है बल्कि कानून की पुरानी संहिता भी है.... परन्तु कोई इतिहास नहीं है।'' कुछ ऐसा ही विचार फ्लीट, माउंटस्टुअर्ट ऐलीफिस्टन, कोवेल, वी0ए0 स्मिथ आदि ने दिये है।

हालांकि अर्नगल विचारों का खण्डन भी फ्रेडरिक मैक्समूलर, कर्नल टाड, हालवैल, स्टीलिंग, वाल्तेयर आदि ने किया है। फ्रेडरिक मैक्समूलर[29] ने लिखा है कि 'वेदों को गड़ेरियों के गीत तथा ब्राह्मण ग्रंथो को जड़ बुद्धि का प्रत्यय (Tweddle of idiots) कहने की बात गलत है। रामायण तथा महाभारत को मिथक या काल्पनिक कहना एवं पुराणों को पोंगापंथी ग्रंथ कहना न्यायोचित नहीं है। स्टीलिंग[30] ने लिखा है कि ''ब्राह्मणों द्वारा अनेकों दस्तावेज केवल उपाख्यान (Legends) नहीं है। विल्सन ने भी स्वीकार किया है कि– यह कहना गलत है कि हिन्दुओं ने कभी इतिहास का संकलन नहीं किया। दक्षिण का साहित्य अनेक हिन्दू लेखकों द्वारा स्थानीय इतिहास से भरपूर है।''

19वीं शताब्दी के उतरार्द्ध में स्वामी विवेकानन्द तथा भगिनी निवेदिता[31] ने अपने भाषणों, लेखों तथा ग्रंथों में इस कपोल कल्पित प्रचार की तीव्र भर्त्सना की तथा कठोर शब्दों में आलोचना की। कुछ विद्वानों[32] ने महाराजा इक्ष्वाकु से महाभारत तक के तीस प्रमुख इतिहासकारों के नाम भी दिये हैं जिनमें से केवल तीन चार के ग्रंथ उपलब्ध हैं। ये है वाल्मीकि, कृष्णद्वैपायन व जैमिनी। वर्तमान भारत में इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान शिवाजी सिंह[33] का यह कथन सत्य है कि '' अंग्रेजों द्वारा जान–बुझकर फैलाई गई इस धारणा के पीछे उन्हें भारतीय इतिहास की कोई बुद्धि नहीं थी।'' उन्होने इसे एक औपनिवेशिक मिथक कहा। उन्होने इसे औपनिवेशिक काल को भारतीय इतिहास का एक ऐतिहासिक मिथकों को गढ़ने का काल सही कहा है।''

उपरोक्त संक्षिप्त ऐतिहासिक संदर्भ में पंडित नेहरू के इतिहास दृष्टि विचारों को सहज समझना होगा। वस्तुतः भारत के ऐतिहासिक साधनों की उपलब्धियों में वे पूर्णतः पाश्चात्य चिंतन तथा ब्रिटिश साम्राज्यवादियों तथा औपनिवेशिक इतिहासकारों से सहमत थे। पंडित नेहरू का

विचार है कि ''आदि आर्यो ने इतिहास लिखने की ओर ध्यान नहीं दिया।''[34] ब्रिटिश इतिहासकारों द्वारा फैलाये इस मिथक को कोई भी स्वीकार नहीं करेगा। जबकि यू0एन0ओ0 जैसे विश्व संस्था भी वेदों को विश्व का प्राचीनतम प्रथम ग्रंथ मानते है। यद्यपि आंशिक रूप से पंडित नेहरू प्राचीन संस्कृत साहित्य की उपयोगिता मानते हैं। उन्होने स्वयं माना है[35] वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत वगैरह ऐसे हैं जिन्हें महान पुरूष ही लिख सकते थे। इनसे और दूसरी सामग्री की मदद से हमें पुराने इतिहास का अध्ययन करने में सहायता मिलती है। इनस हमें पूर्वजों के रस्म–रिवाज, रहन–सहन और विचार करने के ढंग का पता लग जाता है। लेकिन ये वास्तव में इतिहास नहीं है।'' पंडित नेहरू का उपरोक्त कथन, अस्पष्ट, असंगत तथा विरोधाभास से युक्त लगता है। निश्चय ही यदि उन्होने संस्कृत तथा भारत के प्राचीन साहियों का अध्ययन गंभीरता से किया होता तो उनके निष्कर्ष विश्लेषण तथा विवेचन भिन्न होता।

वास्तव में संस्कृत साहित्य ऐतिहासिक सामग्री का अक्षय भण्डार माना जा सकता है। ये केवल धार्मिक, आध्यात्मिक या नैतिक साहित्य नहीं बल्कि इससे अधिक तत्कालीन भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक दशाओं का विस्तृत विश्लेषण करता है। वास्तव में जब योरोप में अन्धकार काल था, उससे पूर्व भारत में दिव्य प्रकाश था। प्राचीन इतिहासकारों में महर्षि बाल्मीकी तथा याज्ञवल्क्य, पराशर, महर्षि वेदव्यास, वैशम्पायन, लोमहर्षण, शौनक, गौतम, वात्स्यायन, चरक, कौटिल्य, पाणिनी, कात्यायन, कालिदास, वाणभट्ट, राजशेखर आदि को भुलाया नहीं जा सकता। यह सत्य है कि अनेक ग्रंथ दुलर्भ है तथा विदेशियों द्वारा बाहर ले जाये गये या नष्ट कर दिये गए। अतः यह कहना नितांत गलत होगा कि भारत में ऐतिहासिक ग्रंथों का अभाव है या भारतीयों ने इतिहास लेखन की दृष्टि न थी।

इस संदर्भ में पंडित नेहरू का यह कथन[36] कि ''संस्कृत में वास्तविक इतिहास की अकेली पुस्तक कश्मीर के इतिहास पर है। लेकिन यह बहुत बाद के जमाने की है। उनका नाम ''राजतरंगणी'' है। उसके कश्मीर के राजाओं का सिसिलेवार वर्णन है और यह कल्हण की है।'' कल्हण की ''राजतरंगिणी'' एक अद्वितीय ऐतिहासिक ग्रंथ है इसमें पूर्व के ग्यारह इतिहासकारों के नाम भी है। इसमें महाभारत युद्ध से पूर्व का विस्तृत वर्णन किया है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि शेष को भुला दिया जाये। अतः पंडित नेहरू का कथन प्रथमदृष्टया कुछ अधूरा है जो शायद किसी को मान्य न हो।

विश्व की समस्त भाषायें संस्कृत से लेटिन तथा ग्रीक व अरमाइक द्वारा उत्पन्न हुई है। योरोपीय भाषाओं में एक भी शब्द ऐसा नहीं जिसकी उत्पत्ति संस्कृत भाषा से न हुई हो। भाषा के परिवर्तन में जलवायु, मानवीय परिस्थितियों, युद्ध, तकनीकी विकास व व्यापार का प्रभाव पड़ता है। आज कम्प्युटर की वैश्विक भाषा के रूप में संस्कृत को ही प्राथमिकता दी जा रही है। संस्कृत को विश्व की जननी भाषा कहा गया है। इसे विश्व संस्कृतियों की कुंजी भी कहा गया है। विश्व

की विभिन्न सभ्याताओं, परम्पराओं, ज्ञान–विज्ञान तथा ऐतिहासिक विकास क्रम को समझने में संस्कृत का ज्ञान अनिवार्य है। अतः देश–विदेश के अनेक इतिहासकारों तथा विद्वानों[37] ने इसकी भूरि–भूरि प्रशंसा की है। प्रो0 बॉप ने संस्कृत को ''विश्व की एकमात्र भाषा'', ड्यूवास ने इसे ''आधुनिक योरोपीय भाषाओं का उद्गम्'' मैक्समूलर ने ''विश्व के महानतम भाषा''माना है। विल डयूरेंट ने लिखा '' भारत हमारी वंशीय माता है और संस्कृत योरोपीय भाषाओं की माता है।'' महात्मका गॉधी ने लिखा ''संस्कृत के ज्ञान के बिना कोई भी सच्चा भारतीय और बुद्धिमान नहीं हो सकता।''

1760 ई0 में कोलकत्ता पर कब्जा करने तक ब्रिटिश कम्पनी के राज्य स्थापित होने तक संस्कृत विद्वता तथा सम्मान की भाषा जानी जाती थी। इसीलिए सर विलियम जोन्स, चार्ल्स विलकिंस, हेनरी थामस, कोलब्रुक, अलैक्जेण्डर कनिंघम, जार्ज अब्राहीम गिर्यसन, पार्जिटर, मैक्डॉनल्ड, कीथ, व्हीलर आदि ने संस्कृत सीखी। इसे भारत के प्राचीन इतिहास, संस्कृति, कला, विज्ञान की जानकारी के लिए अनिवार्य समझा गया।

परन्तु शीध्र ही जेम्स मिल, लार्ड मैकाले जैसे साम्राज्यवादी प्रशासकों तथा इतिहासकारों के आने पर संस्कृत की उपेक्षा प्रारंभ हुई। जेम्स मिल ने एक–एक वस्तु के लिए अनेक पर्यायवाची शब्द होने पर इसका ''दुर्गण''[38] बताया। लार्ड मैकाले ने संस्कृत व्याकरण को ''नासेन्स'' कहा[39]। अब इसे ''देववाणी'' के स्थान ''मृत भाषा'' कहा जाने लगा। अंग्रेजी विश्वकोषों तथा कोषों में ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार तथा बढ़ते प्रभाव के साथ संस्कृत भाषा का बिना किसी वैज्ञानिक आधार के अवमूल्यन[40] होने लगा। संस्कृत भाषा को क्रमशः विश्व की प्राचीनतम भाषा, विश्व की एक पुरानी भाषा, इण्डो–आर्यन भाषा, इण्डो–योरोपीयन भाषा आदि ढंग से उसका स्थान गौण करने का प्रयत्न किया गया।

भारतीय प्राचीन इतिहासिक साहित्य की भाषा संस्कृत रही है। संस्कृत भाषा के बारे में पंडित नेहरू के चिंतन बहुत कुछ ब्रिटिश विचारों के अनुकूल है। उनका मत है[41] कि आर्यो से पहले भारत में एक महान सभ्यता मौजूद थी। इनकी भाषायें जो आर्यो की संस्कृत से निकली हुई नहीं है, बहुत पुरानी है और इसे बहुत सुन्दर साहित्य माना जाता है। इन भाषाओं के नाम हैं तमिल, तेलगु, कन्नड़ और मलयालम।

पंडित नेहरू[42] ने पुनः माना कि भारत की असली भाषायें दो परिवारों में बांटी जा सकती है द्राविड़ और भारतीय आर्य भाषाएँ। भारतीय आर्यो की मुख्य भाषा संस्कृत थी और भारत की सारी आर्य–भाषाएँ–हिन्दी, बंगला, गुजराती और मराठी–संस्कृत से निकली है। इसके साथ ही उन्होने बच्चों की शिक्षा के लिए एक मात्र साधन उसकी मातृभाषा माना है। साथ ही पंडित नेहरू ने स्वीकार भी किया[43] है कि ''भारत में आज हरेक चीज उलट–पुलट हो रही है और हम आपस में भी अंग्रेजी बहुत ज्यादा इस्तेमाल करते हैं। उन्होने आगे लिखा है कि ''एक भद्दी बात है कि

फिर भी मै ऐसा कर रहा हूं। लेकिन मुझे उम्मीद है कि हमलोग जल्दी ही इस आदत से छुटकारा पा जायेगें।''

उपरोक्त से यह ज्ञात होता है कि पंडित नेहरू को संस्कृत के बारे में स्पष्ट चिंतन की कमी था। वैसे स्वतंत्रता के पश्चात् संस्कृत की उपेक्षा तथा दुर्गति अंग्रेजों के काल से बदतर हो गई थी। भारतीय संविधान के निर्माण के समय डॉ0 बी0आर0 अम्बेदकर[44] ने संस्कृत को राजभाषा बनाने का प्रयत्न किया पर सफल न हुए। पंडित नेहरू के प्रधानमंत्रित्व काल में तीन शिक्षा आयोग तथा राजभाषा आयोग बने। तीनों ने भारत में संस्कृत की आवश्यकता पर बल दिया। 1956ई0 में संस्कृत आयोग की भी स्थापना हुई। परन्तु पाश्चात्य वातावरण के सम्पोषक पंडित नेहरू के अंग्रेजी पढ़ी लिखी नौकरशाही, पाश्चात्यकरण की होड़ में संस्कृत को कोई उचित स्थान नहीं लेने दिया।

ऐसा माना जा सकता है कि पंडित जवाहर लाल नेहरू भारतीय परम्परा व संस्कृति के मुरीद थे किन्तु पाश्चात्य वैचारिक आवरण के कारण उनकी इतिहास दृष्टि में फिसलन दिखती है।

संदर्भ सूची

1. संपादकीय, नेहरूज इंडिया, स्पेशल अंक, 120 ईयर्स ऑफ नेहरू, 14 नवम्बर, 2009
2. नटवर सिंह, द लीगेसी ऑफ नेहरू, मिन्ट, पृ0 04
3. खुशवंत सिंह, इंडिया फ्रॉम ट्रूथ, लव, एण्ड ए लिटिल मैलिस, पैनगुईन, दिल्ली।
4. जवाहरलाल नेहरू, विश्व इतिहास, पत्र 01 जनवरी 1931, पृ0 21–22
5. वही, पत्र 1 जनवरी, 1931, पृ0 22
6. विवेकानन्द साहित्य, भाग–9, कोलकत्ता, 1989, पृ0 246
7. सतीश चन्द्र मितल, स्वामी विवेकानन्द की इतिहास दृष्टि, नई दिल्ली, 2012, पृ0 246
8. सुनील खिलानी, द आइडिया ऑफ इंडिया, मिन्ट, 2009, पृ0 1–4
9. जवाहरलाल नेहरू, विश्व इतिहास, पत्र 08 जनवरी 1931, पृ0 28
10. वही, पृ0 28
11. वही, पत्र 28 मार्च 1932, पृ0 91
12. वही,, पृ0 92
13. वही, पृ0 92–94
14. के0 के0 खुल्लर, नेहरू द हिस्टोरियन, द हिन्दुस्तान टाइम्स, 27 मई, 1965
15. सतीश चन्द्र मितल, भारतीय राष्ट्र चिंतकों का वैचारिक चिंतन तथा इतिहास दृष्टि, हैदराबाद, 2001
16. जवाहरलाल नेहरू, विश्व इतिहास, पत्र 8 जनवरी, 1931, पृ0 28–29
17. वही, पत्र 28 मार्च, 1932 पृ0 91

18. वही, पत्र 01 जनवरी, 1931, पृ0 23
19. वही, पत्र 28 मार्च, 1932, पृ0 91
20. वही, पत्र 05 जनवरी, 1931, पृ0 25
21. जेम्स मिल, हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इंडिया, भाग–एक, 1817, पृ0 117
22. थामस पिन्ने (सं0) द लैटर्स ऑफ बी0बी0 मैकाले, भाग–तीन पृ0 46–47
23. लुई डिकिन्सन, एन एस्से ऑन द सिवीलाईजेसन ऑफ इंडिया, पृ0 15
24. ए0ए0 मैक्डॉनल्ड, हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ0 11
25. मेरिज विटंरनिट्ज, ए हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर, पृ0 209
26. एडवर्ड गिब्बन, डिकलाइन एण्ड डाउनफॉल ऑफ होली रोमन एम्पायर
27. जी0डब्लू0एफ हीगेल, रीजन इन हिस्ट्री, पृ0 25
28. फ्रेडरिक मैक्समूलर, ए हिस्ट्री ऑफ एंशियंट संस्कृत लिटरेचर, पृ0 209
29. एलेक्जैण्डर डो, हिस्ट्री ऑफ हिन्दुस्तान, 1768, भूमिका
30. सतीश चन्द्र मिततल, हिन्दुत्व से प्रेरित विदेशी महिलाएँ, नई दिल्ली, 2014, पृ0 27–30
31. ठाकुर राम सिंह, अनुवादित, आर्यावत् का प्राचीन इतिहास, नई दिल्ली, 2004 पृ0 24–27
32. शिवाजी सिंह का अध्यक्षीय भाषण, इंटरनेशनल कॉग्रेस ऑफ इंडियन हिस्ट्री, 2009, पृ0 05
33. जवाहरलाल नेहरू, विश्व इतिहास, पत्र 14 जनवरी, 1931 पृ0 46
34. वही, पृ0 47
35. वही,
36. एन0सी0ई0आर0टी0 प्रकाशन, संस्कृत द व्योस ऑफ इंडियाज सोल एण्ड विजडम, नई दिल्ली, 2001, पृ0 1–2
37. जेम्स मिल, हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इंडिया भाग–दो, पृ0 91
38. थाम्स पिन्ने, द लैटर्स ऑफ टी0बी0 मैकाले भाग–तीन, 1976, पृ0 324
39. सतीश चन्द्र मित्तल, हिन्दू ाब्द के बदलते अर्थ' पांचजन्य, 7 अक्टॅबर, 2012
40. जवाहरलाल नेहरू, विश्व इतिहास, पत्र 14 जनवरी, 1931, पृ0 47
41. वही, पृ0 48
42. वही,
43. सतीश चन्द्र मित्तल, भारतीय इतिहास लेखन की विकृतियां– तथ्यों के आईने में, 2013, पृ0 32
44. वही, पृ0 33

शब्द– 3260

Public Opinion on Women Property Rights in Hindu Code Bill Discourse: 1944-1946

Anupriya*

Abstract

The succession and ownership rights over property is, hitherto, peculiarly sacrosanct in a patriarchal society like India since the civilization renders its women frail and incapacitated to hold property. Inheritance rights of women come to challenge men's appropriated power over the flesh. The landmark legislation of Hindu Succession Act in 1956, after prolonged struggle, points out the oppressiveness of patriarchal power relations and shows that such social hierarchies are not biological inevitabilities but constructed relations that can be changed.[1] In order to get a clearer insight, the women property right narratives within the Hindu Code Bill discourse is taken into consideration as a major plot because the debates have a history of egalitarian dialogue where immense effort was made, most importantly by women, to reconstitute an unbiased social structure based on equality between men and women. The following article is an attempt to bring into light the public opinion which was collected nationwide by the Hindu Law Committee in 1944- 1945. The spotlight of study is the dissenting and conflicting public opinion in matter of women property rights within the Hindu Code Bill discourse.

Keywords:

Inheritance rights, succession, public opinion, patriarchy, women emancipation.

Introduction

Amidst the paradigm shift in historical research in the last few decades, feminist historiography, has gained a worldwide importance. The recent developments in history writing reflects that patriarchy is a conceptual tool for the study of gender history. Also, the study of socio-legal history, which is predominantly affected by diverse narratives and role of patriarchy, is seen as an increased area of interest for the feminist historians. In documenting such socio-legal history, however, the historians must crucially comprehend

* UGC NET-JRF, PhD Research Scholar , Ranchi University

the social structure and interpret narratives that emerge in the process of legal change in the public and political sphere depending upon the structure of society.[2]

In the Indian context particularly, one such area of growing interest is the study regarding trajectories of property rights of women. The reason behind this focus area of study is unsuccessful implementation of the Hindu Succession Act 1956 due to the deeply embedded traditional social laws and overpowering patriarchy.in order to get a clearer insight, diverse narratives on women property rights within the Hindu Code Bill discourse is taken into consideration as a major plot because the debates have a history of egalitarian dialogue where immense effort was made, most importantly by women, to re-constitute an unbiased social structure based on equality between men and women.

In course of exploring secondary source for the study of women property right debates in the Hindu Code Bill discourse, one comes across works of leading feminist writers and sociologists in recent times. The first explanatory work hunted by me in this direction is Chitra Sinha's '*Debating Patriarchy: The Hindu Code Bill Controversy in India (1941- 1956)'* published in 2012. The author labors to "broaden the approach by looking at an expanded role of law in social transformation, where law, even when nit implemented in practice, works through transformation of social consciousness and law slowly emancipates the public mind and work towards the liberation of society and promotion of gender justice."[3] The next secondary source explored is '*Land and Gender Equality: The Politics of Women's Rights in India'* by Flavia Agnes published in 1999. This compiled work attempts to "map the issue of gender and law reform upon a broad canvas of history and politics and explore strategies which could safeguard women's rights within a sphere of complex social and political boundaries."[4] Yet another exploratory work widely read in this field is '*Women and Social Change in India'* by Jana Matson Everett published in 1981. Jana Everett "purports to study the role of the Indian Women's Movement in the formulation of the government policies towards women."[5] Tracing the turbulent history of a single legislative project, Eleanor Newbigin in her book '*The Hindu Family and the Emergence of Modern India:*

Law, Citizenship and Community' published in 2013 has brought new insights to discuss the origins and maturing of the Hindu Code Bill. Newbigin argues that "the most powerful set of interests driving the Code was concerned not with gender equality but with a desire to rationalize the Hindu Family as an economic unit. The book sees the Code Bill project as part of the broader shifts in the framework of state governance in India that were triggered by the First World War."[6]

While the first three accounts of female activisim deals with the process of legislation of women rights within the Hindu Code Bill discourse centering around women's movement in India, the work of Eleanor Newbigin diverts herself from the women's movement and focuses on the political events which shaped the formulation of different acts for women. However, in process of dwelling into socio-legal history, the authors have neglected the exclusive study on property rights of women. Moreover, they have also ignored detailed study of the role that the public opinion submitted to the Hindu Law Committee played in the legislation of the Hindu Succession Act of 1956.

The present article is, thus, an endeavor to unfold the diverse narratives that were reflected in the public opinion through the oral evidence and written statement submitted to the Hindu Law Committee. The following questions as to what did women actually want? Did public actually support women enjoying property rights or not? How far did the majority support the issue? Which groups supported or opposed the right of women in property? What were the determining factors for the support as well as opposition for inheritance rights of women? and the dissenting public opinion have been attempted to look upon in the following paper.

Hindu Law Committee and the need for collecting public opinion

The defects in the Right to Property Act led to great dissatisfaction among people. One of the major opposition of the Act was because of the exclusion of the agricultural land. This was because in a country like India where agriculture was a major occupation, the most valuable form of property is the arable land. In an agrarian economy, it is a productive, wealth-creating

and livelihood sustaining asset. Traditionally it has been a basis of power and social status.[7] Any improvement in women's economic and social situation is crucially linked to their having independent land rights.[8] Thus, until agrarian land was included as a property of inheritance for women, their right would not have been justified.

A Hindu law committee was then formed to examine the act which submitted its report in 1941. It clarified that the Act of 1937 and the amending Act 1938 was effective only in respect of property other than the agricultural land in Governor's Provinces.[9] The committee aimed to "suggest amendments as would:

1. Resolve the doubts felt on the construction of the Acts;
2. Clarify the nature of the right conferred by them upon the widow; and
3. Remove any injustice that may have been done by them to the daughter."[10]

The Hindu Law Committee (Rau Committee) prepared a questionnaire which was translated to different vernacular languages distributed widely in all parts of India to seek public opinion. Though a tough opposition was received from the orthodoxy, a strong support also came from the liberals and the women's organizations. The committee then reached a conclusion that a complete code of Hindu Law should be prepared afresh since it was caught in the dilemma to choosing between the orthodox and liberals because both had strong viewpoints. On one hand there were orthodox whose view reflected the religious sentiments of the people and were of the view that women were incapable of managing property, on the other hand were the liberals and the women whose support reflected the sufferings of women and need for modernizing the society, of which both could not be neglected. The committee suggested that "first, it is worthwhile spending time and labor in order to get a good code; secondly, that all sections of thought must be given a hearing if a proper code is to be enacted; thirdly, that neither regional differences nor even constitutional difficulties are insuperable barriers."[11]

Thus, the decade of 1940s opened up the stage for wide and controversial debates and discussions on the issue of women property rights through the

Hindu Code Bill. Thus, the movement for the removal of women's legal disabilities gathered strength throughout the country and enlisted public opinion in support of a demand for an official enquiry into the laws with a view to wholesale revision and codification.[12] The following section will deal with the different narratives which came up during the course of collection of public opinion by the members of the Hindu Law Committee. It will reflect the conflicting viewpoints that emerged during this heated debate in public amongst different sections of society.

The fragmented groups on women inheritance rights

As the questions over the women's property rights began to be widely debated, one witnessed several conflicting opinions that arose out of different sections of society from different regions. While the religious orthodox organizations of both men and women vehemently objected the absolute right of inheritance and ownership over property by women, the more liberal women organizations all over India and the social reform organizations reflected a more liberal view towards granting property rights to married and unmarried daughters as well as widows. Except for Maharani of Natore and certain Purdahnishin aristocratic ladies who had hardly done any social work among the masses, women largely supported the cause of giving daughter a share in father's property. Women organizations also fully supported the inheritance rights of married women and widows.

The social reform organizations and growing intelligentsia were in fact seen as strenuous protagonist and supporters of women property rights. However, the most conflicting opinion arose from the group of advocates and Law Associations. The factionalism in this group, largely on regional basis, gave rise to diverse narratives. While the advocates and Law & Bar Associations in Bombay were more welcoming towards this proposed change, those in areas of Patna and Bengal refuted any change in the existing laws by not supporting the right of women acquiring property. There were also individuals who, not belonging to any organization, submitted their viewpoint to the Hindu Law Committee. Mr. P. L. Shome, Advocate General of Assam was against giving daughters a share in property, married or

unmarried. Dr. Ananta Prasad Mukherjee, Principal of Sanskrit College in Calcutta denied any such demand of rights in the society. On the other hand, Mr. A. C. Gupta and Prof. K. P. Chattopadhyaya of Calcutta, both supported women's right over self- acquired property and partially absolute right over ancestral property. They argued it was both feasible and desirable. Such conflicting public opinion made the already tough task more complicated

Factors Projected for the denial of property rights to women

Religion

A strong opposition came up from the religious organizations and the social orthodox groups. These group of people were staunch believers of Hindu Shastric traditions and in no way could accept the 'disintegration' of the Hindu society. Claiming the divine origin of the Hindu Law, Mr. Manubhai C. Pandia, the secretary of Varnasharam Swarajya Sangha in Bombay opposed the inheritance rights of women. P. V. Kane of Dharma Nirnaya Mandal very partially supported the inheritance rights by arguing that "women may be given absolute estate in all property inherited from the husband and even here they should have a limited estate only if there are heirs of the husband within the compact series."[13] During meetings in Delhi, Sanatan Dharma Rakshini Sabha of Meerut represented by Gyan Prakash Mittal and Prabhu Dayal Sarma objected on women getting share in property. Rajputana Provincial Hindu Sabha and Delhi Provincial Hindu Mahasabha objected absolute rights to women over property on similar lines of general suppression of Hindu customs. Mr. Mukteshwar Pandey (M.L.A) and the All India Yadav Mahasabha from Patna argued the property rights of women were against the fundamental principles of Hindus.

Orthodox socio-religious organizations og women from all regions had contentious views regarding women property rights. Sundari Bai, headmistress of Arya Mahila Vidyalaya opposed any such change in Hindu Law. Arya Mahila Hitakarini Mahaparishad of Allahabad represented by Srimathi Vidyanathi Devi opposed inheritance law based on religion. They argued that "the observance and non-observance of the shastric rules in regard to these matters will affect the prospects of our souls in the world as well as

in the next. The code does not pay adequate regard to this aspect of the matter."[14] Mrs. Janakibai Joshi of the All India Hindu Women's Conference refuted daughter's share in parental property.

Caste

In pre-colonial India, before re-construction and brahmanisation of literary works, certain social groups from the 'low' castes in the then existing amorphous society provided women with property rights according to their customary laws. Such groups supported the Hindu Succession Bill in the Hindu Code Bill discourse. Contrary to this, people and groups representing high caste were opposed to equal rights of women and men in the property of the family. Greater the restrictions on women, higher was the caste hierarchy in society, thereby playing a crucial role in maturing the caste system. Increased control over women was one of the major factors that defined the purity of the caste because it was believed that the male seed which women received should be the best. So it was important to guard the sexuality of women to secure one's hierarchy in caste since it was presumed to be the greatest threat to the purity of caste. Maheshwari Sabha belonging to the Jodhpur and Bikaner in the Rajputana states wished the succession acts to be left to be governed by the laws of their own states. Likewise, Mr. Pusalkar representing the Brahman Sabha of Kolhapur and Mr. K. L. Bhave representing Maharashtra Brahman Sabha preferred Mitakshara over Dayabhaga. They argued that the right by birth should be prevailed and daughter should not be a simultaneous heir.

It has been rightly argued by Joanna Liddle and Rama Joshi that "the development of the gender division, based on the control of female sexuality, was integral to the formation of the social structure, based on the control of economic sources, revealing the crucial link between women's sexuality and the economic position of the community.[15] This way the caste structure so formed was preserved. The purity of the institution of the caste was highly protected as it was one of the prime institution for the installation of the Hindu society. On similar lines Bangiya Varnasharama Swarajya Sangh and Bangiya Brahman Sabha vehemently opposed the legal rights. Claiming the property rights to be cause for the destruction of the Hindu Samaj, Kashi

Pundit Samaj of Allahabad represented by Bibhuti Bhushan Nyayacharya and Bankim Chandra Bhattacharya opposed the code entirely. Jai Guru Society, another organization of pundits from Allahabad opposed women inheritance rights.

Region

The regions in which Mitakshara law governed the property rights wanted to preserve their own regional laws. Similarly the Bengal area where Dayabhaga law governed the social norms and legal rights of women to own and inherit laws, people wanted to preserve their own regional laws. Where on one hand the Dayabhaga law provide the ownership rights on the demise of the father, the Mitakshara law provided property rights by birth. Region wise, Bombay and Delhi were highly supportive of the Hindu Succession Bill. Calcutta and Patna were amongst the areas which very much opposed the Bill. Orthodox groups and organizations of Pundits from Allahabad also opposed the legal rights for women in property.

Patriarchy

Patriarchy was the most important factor determining the denial of the legal inheritance and ownership rights of women over property of the family. Patriarchy encircled within its domain all the above mentioned factors (religion, caste and region). Property rights for women came as a major threat to patriarchal power relations. Patrilineal succession to property was considered very crucial and legitimate for the maintenance of patriarchal social organization which was more or less brought by the Aryans in the Indian subcontinent. Control over women's sexuality was very much essential, according to them, for the enlargement of the patriarchal caste hierarchy. "Patriarchies are clearly formed through historical process and structured by other dominant ideologies- of colonialism, of class, and of caste, which they in turn structure."[16] Thus, this challenge to patriarchal power relations was not accepted by the male dominated society as it would obviously lead to decline of their autocratic power in the family. The public opinion, when collected in matters of women property rights, clearly reflected the strong patriarchy.

The support to inheritance rights of women

James Mill in his book "*The History of British India*" blames the undisciplined nature of the society and their abuse of power for the degraded and humiliated position of women in India. Arguing about the strict dependence of women on men in Indian society, the author has also pointed out property rights which the hindoo women were excluded from. He has argued that "in proportion as society refines upon its enjoyments, and in proportion as it advances into that state of civilization, in which various corporal qualities become equal or superior in value to corporal strength, and in which the qualities of the mind are ranked above the qualities of the body, the condition of the weaker sex is gradually improved, till they associate at last on equal terms with men and fill the place of voluntary and useful copartners."[17]

Women organizations and social reform organizations were the staunch supporters of the Hindu Succession Bill. At the conference session in 1932, the Dowager Rani Lalitkumari Sahiba of Mandi moved a resolution demanding all India enquiry committee to go into this question and appealed all states to co-operate with this committee.[18] Along with them there were liberals who supported the view of granting women absolute property rights. The major national organizations of women such as All India Women's Conference, Women Indian Association and National Council for Women in India, all proposed for women's equal rights in property as men. All Bengal Women's Union represented by Mrs. Romola Sinha and Abala Ghosh, Gujarati Stree Mandal represented by Mrs. Soudamini Mehta, Mahila Atma Raksha Samiti represented by Mrs. Kamala Mukherjee, Postgraduate Student Women's Section represented by Mrs. Gita Bose, South India Ladies Club represented by Mrs. Natarajan and Mrs. Natesan, Maharashtra Bhagini Samaj represented by Mrs. Ramabai SrikhanDas, AIWC represented by Mrs. Rameshwari Nehru, Mrs. Chandrakala Sahai and Mrs. Renuka Ray etc. fully supported the issue necessary for emancipation of women and modernization of the nation consequently. The society could only progress if women were liberated from the shackles of long embedded patriarchal traditions.

Social Reform Associations welcomed the changes. Lady Vidyagauri Neelkanth representing the Gujarat Social Reform Association and Bombay Women's Council was in favour of the draft code and accepted women gaining legal ownership rights in landed property. On similar lines, Maharashtra Mahila Mandal of Pune supported women's rights. Arya Mahila Samaj of Bombay advocated removal of sex disqualifications and supported absolute rights. Other social reform association like Seva Sadan Society, Bombay Prarthana Samaj and Bhagini Samaj of Bombay also welcomed the change. "The Bhagini Samaj congratulated the Hindu Law Committee for the able handling of the complicated matters and the very broad minded view point in forming the new Code."[19] Mrs. Sulochana from Bombay Presidency Women's Council and other from Gujarati Hindu Stri Mandal were of the view that the act gave women better rights. Bombay Incorporated Law Society, Poona Bar Association and some liberal minded advocates also supported the bill.

The analysis of the public opinion collected in matters of property rights of women brings us to the conclusion that women organizations were the champion of women rights in the Hindu Code Bill discourse. Women's question spread large in nineteenth century. But it is interesting to note how "this was not the question of 'what do women want?' but rather 'how can they be modernized?'."[20] The turn of the century largely saw a change in the perspectives with the growth of modern education and women's access to it. The victim to the feeling of historical denial were exposed to a new world of ideas and values.[21] However, forces of patriarchy interlaced with religion and caste emerged as strong opposition to the progressive Hindu Succession bill granting women the inheritance and ownership rights of over movable and immovable property. But the strong support emerged victorious. Thus, the public opinion played a crucial role later in the legislation of Hindu Succession Act in 1956.

References

1 Bob Pierik, "Patriarchal Power as a Conceptual Tool for Gender History", *Rethinking History,* Vol. 26, Issue no. 1, 2022, p. 74. DOI: 10.1080/13642529.2022.2037864

2 Chitra Sinha, "Rhetoric, Reason and Representation: Four Narratives in the Hindu Code Bill Discourse", 2015, https://www.studocu.com/in/document/university-of-delhi/history/hindu-code-chitra-sinha/42865449.

3 Chitra Sinha, *Debating Patriarchy: The Hindu Code Bill Controversy in India (1941-1956),* Oxford University Press, New Delhi, 2012, p. xxiii.

4 Flavia Agnes, *Law and Gender Equality: The Politics of Women's Rights in India,* Oxford University Press, New Delhi, 1999, p. 2

5 Jana Matson Everett, *Women and Social Change in India*, Heritage Publishers, New Delhi, 1981, p. 2.

6 Eleanor Newbigin, *The Hindu Family and the Emergence of Modern India: Law, Citizenship and Community*, Cambridge University Press, UK, 2013, p. 2.

7 Bina Agarwal, "*Gender Challenges: Property, Family and the State", Volume 2,* Oxford University Press, New Delhi, 2015, pp. 26-27.

8 Ibid. p. 10.

9 *Report of the Hindu Law Committee*, Government of India Press, Shimla, 1941, p. 2.

10 Ibid. p. 16.

11 Ibid. p. 12.

12 Renuka Ray, "The Background of the Hindu Code Bill", *Pacific Affairs*, Vol.25, no. 3, 1952, p. 273.

13 *Oral Evidence tendered to the Hindu Law Committee 1945*, Superitendent of Government Press, Madras, 1947, p.4.

14 Ibid., p. 16.

15 Joanna Liddle, Rama Joshi, *Daughters of Independence: Gender, Caste and Class in India*, Rutgers University Press, 1986, p. 57.

16 Susie Tharu and K. Lalita (ed.), *Women Writing in India: 600 BC to the Early Twentieth Century*, vol. I, Oxford University Press, New Delhi, 1991, pp. 190-199.

17 James Mill, *The History of British India*, volume I, Cradock Baldwin, Paternoster Row, London 1817, p. 294.

18 Arpana Basu, Bharti Ray, *Women's Struggle: A History of the All India Women's Conference 1927-2002*, Second Edition, Manohar Publishers, New Delhi, 2003, p. 62.

19 *Written Statement Submitted to the Hindu Law Committee 1945*, Superitendent Government Press, Madras, 1947, p. 35.

20 Geraldine Forbes, *Women in Modern India*, Cambridge University Press, UK, 1996, p. 12.

21 Maitrayee Chaudhuri, *Indian Women's Movement: Reform and Revival*, Radiant Publishers, New Delhi, 1993, p.2.

The Upper Damodar Valley

Environmental Loss and Evolution of Institutions for Conservation

Riya Kumari Gupta*

Abstract

Damodar, the lifeline of Jharkhand and West Bengal, is not only a river but a national asset owing to the presence in it of the vast mineral resources crucial to the development of the country. Tapping of the natural resources of the Damodar valley badly impacts the ecology of the river, turning dangerous for communities and biodiversities of the Damodar basin. This article argues that there is a need to incorporate useful ideas into government institutions that come to the fore from the strategies and issues of movements around the Damodar.

Keywords : *upper Damodar, ecology, mining, industrialisation, pollution, environmental movement*

The Damodar River valley has been well known for its enormous coal reserves since the colonial period (approximately 46% of India's total coal storage is here), often termed 'the storehouse of Indian coal'[1]. Flowing through two states, Jharkhand and West Bengal, it covers a total distance of 529 km, of which 258 km is in Jharkhand via Hazaribagh, Ramgarh, Koderma, Giridih, Dhanbad, Bokaro and Chatra districts and the rest in West Bengal. The journey of the Damodar River is diverse in its upper and lower part. A mixed population of forest-based tribals and migrated non-tribals inhabit its upper part while its lower part having vast fertile lands is the home of the agriculture-based rural society. The river originates from Chulhapani, located at the border of the Lohardaga and Latehar districts. The story of Damodar pollution begins at the Piparwar coalfield area, where it fills with fly ash, oil, toxic metals and coal dust and becomes extremely contaminated while reaching Kolkata.

* Senior Research Fellow, University Department of History, Ranchi University, Ranchi

This article explores the phenomenon of the ecological transformation of the upper Damodar valley from a historical perspective. It presents an analysis of the traditional and modern institutions for restoring the Damodar ecosystem. This article also analyses strategies and issues of movements related to Damodar and tries to find out to what extent are they successful in putting positive changes in the existing institutions. Finally, this article argues that there is a need to incorporate useful tools into government institutions that come to the fore from the strategies and issues of these movements. In other words, this article is related mainly to past events showing its continuity with the current situation, contrasting with the environmentally focused research done by other scholars on the upper Damodar valley.

The present article has been divided into three sections. The first section mainly deals with the traditional water resource management institutions of Jharkhand and the changes brought in it by the British government. This part presents a backdrop of environmental loss and resource management in the upper Damodar valley. The next part gives a brief sketch of the contemporary concerns and the Indian government's endeavours in formulating institutions for the sustainable utilisation of the natural resources of the Damodar and presents an analysis of these institutions and their challenges. The last part discusses some valuable tools for the development of strong institutions, highlighted in the strategy of the environmental movements around the issues related to Damodar.

In the available studies on Damodar, two distinct approaches are visible. The first approach refers to the river as the 'centre of commerce' and the 'river of opportunities', whereas the second approach terms the river as 'the Black River' and considers the journey of the Damodar as the journey of cultural loss, dispossession and environmental loss. The former approach is dominant in the literature of the 1950s and the latter in the literature written after the 1970s.

Concept of Environmental Loss, Conservation and Institution

Before elaborating on this topic, it is necessary to clarify the meaning of environmental loss, conservation and institutional design regarding environmental conservation. Indeed, the notion of environmental conservation

is broad. Widely it simply means the protection of natural resources, but narrowly it is defined in various ways.[2] This article explains the idea of environmental conservation within the sphere of historically developed institutions. With the development of institutions, the meaning of environmental conservation also changed. For example, traditionally, the concept of environmental conservation meant ensuring the river's use both in terms of resource as well as for cultural requirements. However, modern institutions believe environmental conservation is vital for economic development. Institutions are the set of formal and informal rules that coordinates or constrains the behaviour of individuals or organisations concerning the use of natural resources.[3] There are mainly two elements of institution - 'culture' and the 'law.'

Conservation during the Pre-colonial and Colonial Period

Since pre-historic times, rivers have been a prime location for the flourishment of human civilization. The history of civilization along the Damodar River also goes back to pre-historic times. Being the centre of civilization, rivers have borne the burden of sewage and other human-generated waste from time immemorial. Although the pollutants of the pre-modern period were mainly 'biodegradable' and 'organic',[4] the strong institutions for environmental conservation were well developed by pre-modern society. The "institutions" formed by them incorporated the idea of resource conservation and management in their customs and religious practice.

As an illustration, the Damodar has prominent place in Santhal stories, songs and traditions.[5] Bradley Birt called the Damodar 'The Sacred River of Santal'.[6] Santal called it 'their sea' where they immersed the ashes of their dead.[7] Similarly, Nagendra Kumar noted in *Ranchi District Gazetteer 1970* that it is the fervent desire of the Bedia tribals that after their death, the bones should be thrown in the sacred water of the Damodar.[8] On the last day of *Poush* month (*Makar Sankranti*), Santhals sing and clap in praise of the river Damodar. Not only tribals but non-tribal cultural traditions are also associated with the Damodar River and they too consider Damodar as

a holy river. The famous Chinnamasta temple is located at the junction of the Bhairvi and the Damodar Rivers in the Ramgarh district. Ancient Jain and Buddhist religious remains are also found on the bank of Damodar. [9] Thus, traditional institutions used the notion of "sacred", "holy", "faith", and "reverence" for resource conservation. Alpa Shah noted that in a tribal society, "sacred and secular exist in one conceptual realm". [10] This type of institution follows the approach of "sociological institutionalism", where institution and culture are the two sides of the same coin. Nevertheless, the main flaw of this design was that it believed in the self-purification capacity of the river, i.e., it cleans itself from pollutants over time. This belief prevents ordinary people from adopting a conservationist approach; as Amita Baviskar has pointed in this regard that "in the context of, depleted natural resources, reverence is not enough.'' [11]

When the British conquered our country, they considered Indian society and culture backwards. They used all the natural resources of their colonies as a 'commodity'. Only those things mattered to them that had the potential to generate profit. Damodar was not an exception to this principle. Traditional institutional designs for resource conservation were inadequate to serve the British Empire. So, they formulated their institutions for resource management based on utilitarian ideology. British land revenue administration altered the traditional institutional design of resource management.

Up till the arrival of the colonial power in India, the vast upper catchment area of Damodar was covered with the pristine tropical forest, and the various tribal societies were living there. [12] During the early British period, the Karnapura fields in the upper Damodar valley were challenging to access as being surrounded by hills. [13] British institutions, however, contributed significantly in the transformation of the ecology of Damodar valley. Reflecting on the condition of the 1940s, P. C. Roychaudhury mentions that "The hills of the upper valley have been denuded of their vegetation due to thoughtless felling of trees, over-grazing and over-cropping". [14]

It is obvious, the chronicle of environmental loss across Damodar valley begins with British geologists' exploration of coal deposits. Damodar means 'fire in the womb', indicating the existence of coal deposits in the Damodar

basin was known even in the pre-historic ages.[15] Nevertheless, in the age of capitalism, these resources became very valuable. Damodar valley was the first site where British geologists discovered coal mines. Apart from its mineral resources, it was also valuable for transportation before the arrival of the railways. The first proposal was made by the British for dealing with the water of the Damodar River in 1866 to construct a Navigation canal to connect Calcutta with the coalfield of Raniganj,[16] as the coal mining had started in Raniganj coalfield in 1774 and by this time, Damodar valley became the subject of exploration. However, at that time, the pollution level in the Damodar was not as bad as it was after the arrival of the railway. In 1880, the members of the sanitary commission reported that Damodar water was pure enough for drinking even in Calcutta. The local communities there prefered Damodar water for drinking because tanks were silted up and became unfit for drinking and irrigation.[17] After the arrival of the railways, mining activities boomed, the forest around Damodar valley started disappearing, and the water was getting polluted. However, the pollution concerns are not mentioned in the British documents.

However, the need for new features to be added in the institutions related to coal resource management in the Damodar valley had been felt since the British period. V.R. Khedkar cited the report of the Foley Committee (1920) in his book. This committee stated that "coal is a national asset on which the manufacturing industries and commercial expansion of the country depend. A landowner or colliery proprietor is at present in a position to waste this national asset without restriction. By such waste, he may obtain an immediate financial benefit, but he injures the country, damages his property, and diminishes the property of his heirs. We hold that the State has a right, in the interest of the community, to step in and prevent the dissipation of the country's resources. Indian coal is not inexhaustible, and scientific mining methods are needed for its conservation and economic extraction." Further, Khedkar wrote that the concerned authorities took practically no action on this recommendation.[18]

Environment management during Post-colonial Period

The independent Indian government inherited the salient features of the British resource management institutions. The commodification of Jharkhand tribals as labourers; and their forests, minerals and rivers as resources began during the British period and continued in the post-independence period. Before explaining the institutions regarding resource conservation, it is essential to briefly sketch the environmental loss in the upper Damodar valley after independence. By this time, the upper tract of the Damodar valley had become a site of massive industrialisation and was referred to be as the 'Ruhr Valley of India'. Enormous coal deposits of Damodar played a vital role in this process. These factories had an independent water supply from the Damodar River. However, they used their resource provider, Damodar River, as their 'dustbin'. In fact, during this period, the root cause of Damodar pollution was untreated sewage. The industrial waste was being dumped into the river, which restricted its water flows. Along with mining and industrialisation, hydropower and thermal power projects in the upper Damodar River and its tributaries were also started by the Indian government. The Indian government set up Patratu Thermal Power Plant, Tenughat Thermal Power Plant, Bokaro Thermal Power Plant and Chandrapura Thermal Power Plant for the tapping of resources of Damodar. [19] Transportation facilities were also developed. Colliers were connected by roads and railways.

During the construction of dams in the upper Damodar valley, trees were felled on a large scale. Deforestation across the catchment area of Damodar reduced biochar[20] and altered river chemistry. Thus, the sacred Damodar River turned into a polluted water body. This led to water-borne diseases and drinking water shortages. Environmental activist Bulu Imam noted, "Currently, almost three hundred industrial units flank the once navigable river, which is now dead and is to be dredged for its sand and coal". [21] Besides water, rivers also give stone, gravel and sand. In the lower Damodar basin, sand quarrying activities highly affected the balance of the Damodar River ecosystem. [22] However, in the upper reaches, sand accumulation had almost stopped due to the construction of high dams at Maithon and Panchet[23]; a

large proportion of sand was deposited in the reservoir, and thus sand became a limited asset. [24]

Many studies were conducted on the river ecosystem by this time. According to these studies, there is a balance between biotic and abiotic components in the river. Any disruption to this balance runs the risk of disequilibrium in the river ecosystem. Pollutants discharged in Damodar undergo the process of 'biological magnification.' [25] Mixing industrial hot waste water into the river provide favourable condition for microbes' reproduction. That is why at the site of industrial development BOD of water is very high.

The loss of natural resources in the Damodar valley brought huge environmental consequences and its economic impacts are also visible. Rivers have many economic utilities. Fall in agricultural productivity and the loss of the livelihood of fishermen, boatmen and traders are economic consequences of environmental loss. Even the GDP growth of any nation depends on the availability of natural resources. Nevertheless, ignoring these facts, the Government did not make any serious effort to save the river from pollution. In the era of globalisation, open economies evolved, catalysing a freer movement of people, goods, services and capital across the world, making the situation even worse.

Amid this, some new features for environmental conservation were added to the legal institutions. As an illustration, Damodar Valley Corporation was established in 1948 for the sustainable management of water resources of the Damodar basin. However, presently it has failed to fulfil its duty towards conserving the river ecosystem. [26] The second crucial legal tool of environmental conservation is Environmental Impact Assesments (EIAs) which proves only toothless safeguard. According to Kuntala Lahiri-Dutt, Radhika Krishnan and Nesar Ahmad, "The EIAs do not document possible impacts on local water availability nor do they assess the ground-level impact of air pollution on surrounding communities and vegetation. The cumulative impacts of water and air pollution are rarely addressed…." It presents only technical information[27] and acts only as a 'rubber stamp' for faster clearances of project

Obviously, it is the government's responsibility for future generations to preserve natural resources. Nonetheless, the pollution level of the Damodar is testimony enough to show the government's insincere approach towards Damodar. The Central and State governments are only involved in legislative changes whose ground effects are rarely seen. Jharkhand Government needs to remember that tackling Damodar pollution is becoming a herculean task with time. During the last few decades, demand for coal increasing by leaps and bounds. Therefore, it is essential to make a concerted longer-term strategy as part of government institutions.

Furthermore, for success, collaborative endeavours of the central government, the state government, the industries and the people are needed because it is mutually harmful to all of them. The main ecological burden of environmental loss was borne by the poor, who depend on their environment for survival. It can also prove to be detrimental for industries in the long run due to a shortage of their raw material and, lastly, would be calamitous for Jharkhand as well as the Indian economy. Moreover, conserving India's resource base is essential for independent foreign policy in a period of global uncertainty.

Indeed, the infrastructure of industries and power plants belongs to the central government, while the land where they are located belongs to the state government. However, the environment is a global asset, so the role of international organizations in cleaning the Damodar River also becomes essential. The strategy for a pollution-free Damodar River may involve afforestation in the catchment area of Damodar for the prevention of soil degradation. Due to a lack of forest cover, rain runs away a lot of silt and good soil and deposits them in the sea, making the land poor in the Damodar valley.

Time demands that the new institutional design should also ensure the ethical responsibility of government with legal responsibility towards environmental conservation. However, a government engrossed in restructuring the entire economy is unlikely to address the ecological woes of the Damodar region. Albeit industries are making Damodar pollution curb challenging, they can also prove to help mitigate the environmental crisis by

strictly adhering the pollution control norms. Moreover, research should be done to search for alternative sources of energy that do not cost the environment.

The article entitled *Ecological Perspectives on the Development of the Piparwar Coal Mine in Bihar 1954-1994* written by Marika Vicziany sheds light on the strategy open to the Government for increasing power generation. It stated that economic development is necessary and desirable in India. India is heavily dependent on coal resources for energy. Due to the reduction of forest cover and the rise in the price of other energy in the international market, the main burden of meeting energy needs is falling on coal resources. Solutions lie in minimizing the effects of mining on the environment. [28] To continue the economic development of the region by exploiting the mineral resources of Damodar Valley, governments and industries should invest in treatment plants to control the pace of pollution; albeit it is a costly option, even in the West, only a few governments have been able to afford it. Water conservation measures for recycling and reusing wastewater in all industries and adequate domestic waste treatment equipment in every town are desirable.[29]

Clearly, several options are available to make the Damodar free from pollution. However, it is becoming more complex and challenging with time and requires substantial capital investments and total industrial transformation. [30] So this article presents some simple measures that can make the Damodar pollution-free as reflected in the movements on the issue of the Damodar. These are given in a subsequent section.

The era of Environmental Awareness

The role of local activists and grassroots movements cannot be neglected in the process of making strong institutions for pollution control. These movements generate bottom-up forces in the process of creating institutional designs. As mentioned earlier, at present, intense competition between private players in agriculture, industry and the domestic sector left the river dry and polluted. The result was that the river became a fertile ground for the rise of environmental movements. There are three types of movements going on around Damodar - first on the issue of pollution, second against cultural loss

and third for rehabilitation of displaced people. The strategies of these movements provide essential tools for establishing new institutional designs for sustainable resource management in the Upper Damodar Valley. Their strategies incorporate features of traditional institutions to create awareness among the masses.

The first type of movement is the '*Damodar Bachao Andolan*', initiated and sustained by erstwhile BJP MP Saryu Rai,[31] in 2004. One of the strategies of this movement is the use of a symbol of faith as their leaders calls the various polluting plants on its bank '*Bhasmasura*'.[32] They inaugurated their movement through *Ganga Dussehra*. This movement has message for government that it is essential to use 'religion' and 'faith' in legal institutions to rouse environmental consciousness. David L. Haberman also noted that "the religious culture of sacred rivers in India offers a unique avenue for approaching environmental restoration today."[33] But it is notable that the Damodar River is not famous, religious and noble as the Ganges. According to Bhaskar and Apratim, the Damodar River is like 'ordinary people', whom society and civilization use as they need.[34] The activists of this movement are trying hard to revive the religious importance of Damodar in the memory of local people so that people become hesitant to pollute the river.

For generating pressure on planners, the leaders of this movement perform strategies like periodically testing Damodar water samples in the lab[35] and informing the concerned officials about the pollution level of Damodar[36] etc. Although *Damodar Bachao Andolan* is not gained recognition at the national level but at the state level due to being run by a political activist it immediately got the most popular place in media among other movements around Damodar. Nevertheless, this movement cannot succeed to put positive change in existing institutions. Planners favours only certain type of movements whose demands fit in the legal institutional design and constrains other thus performs selective task.[37] Sayantoni Datta claims that the "competing regional politics with national politics and the inevitable importance of the coal sector for India." is the main reason for the lower visibility of Damodar Bachao Andolan in comparison with the other national campaign.[38]

Second type of movement runs by Padma Shree awardee Bulu Imam.[39] It has a cultural sentiment because it continuously demands for the provision of cultural clearance along with environmental clearance of development project. He struggles to declare the upper Damodar valley area as a World Heritage Site by UNESCO because it is the region of "a unique palaeoarchaeological heritage, rock art, and Buddhist and earlier megalithic sacred sites, as well as a sacred tradition of village mural painting which is directly descended from Mesochalcolithic rock art".[40] But this demand was rejected during the institutional selectivity process as the primary objectives of the government is to meet the economic needs of the nation. The memory of traditional cultural institutions and associated identity are fresh. The Khortha song written by Shanti Bharat highlights it

Damudar Jharkhandek aas lage re,
Nadi nai halar itihas lage re.
Jug-jugek geet gunje pani ke hiloren
Sanskiritik fool futal, damudarek koren
Purkha ke mnn ke biswas lage re[41]

(Damodar is not just a river. It is the hope and the history of Jharkhand. Its water tells tales of the ages. In the valley of Damodar, the culture developed. It seems it carries the faith of ancestors.) In these lines poet want to say the Damodar is not just a polluted river body but also a lifeline of Jharkhand that carries the custom and culture of Jharkhand. The movement being run by Bulu Imam gives a message to the government that if the cultural base of the local people is preserved then tree cover and wild life in the Damodar Valley can also be saved.[42]

The third type of movements on the Damodar River are Neend Haram Andolan by Mahavir, Tribhuvan and Suresh, *Damodar Bachao Abhiyan* by Ghanshyam, *Damodar Bachao, Khushali Lao* by Kisan Vikas Trust etc. These are based on displacement and livelihood issues.

An article by Jorgen Dige Pedersan titled *'The dog that didn't bark (very loudly)' – large scale development project with little protest in Nehru's India'* illustrates the Damodar Valley Project. It claimed that visitors who visit the upper Damodar area during the construction of dams considered displacement and

environmental degradation as minor issues as they did not mention any problem related to the displacement of local people in their account. He calls these visitors 'Enthusiastic visitors'.[43] Indeed during the construction of DVC, it had been considered that it will bring prosperity[44] in the form of more water and power supply and an increase in fish potential.[45] But interestingly he noted in his footnotes that the movement against the displacement due to DVC is still alive.[46] Since 2006 the Ghatwar Adivasi Mahasabha has been fighting for proper rehabilitation for displaced people. This movement acts like an outsider pressure group. They went to court, submitted a memorandum to the Governor of West Bengal and Jharkhand and mobilised a Dharna and demonstration at the district and block headquarters of DVC. In 2011 they organised a dharna and hunger strike in Jantar-Mantar, New Delhi for preserving livelihood around Damodar valley. Indeed, displaced local communities and sources of livelihood are also part of an ecosystem. The environment and local community are interdependent. Their culture and customs are deeply associated with the local environment. The ecological balance of the Damodar can be maintained properly if their government seriously considers the problems related to displacement.

The nature of these movements may appear diverse from a superficial study. But all these movements raise concerns about environmental loss around the upper Damodar valley. They advocate for strong institutions for the conservation of the environment and community development of the upper Damodar basin. It can be said that along with other measures, their demands as well as their strategies should also be recognised by legal institutions for abatement of pollution in the Damodar.

References

1 G. C. Mondal, A. K. Singh, & T. B. Singh, Damodar River Basin: Storehouse of Indian Coal, Dhruv Sen Singh (ed.), *The Indian Rivers: Scientific and Socio-Economic Aspects,* Springer, Singapore, 2018, p 259

2 A. G. Mertig, Environmental Conservation, M. Grasso & M. Giugni (eds.), *The Routledge Handbook of Environmental Movement,* Routledge, New York, 2022, p 139

3 E. R. Alexander, Institutional Transformation and Planning: From Institutionalization Theory to Institutional Design, *Planning Theory*, 4(3), Sage Publications, London, 2005, p 212

4 S.M. Haslam, *River Pollution: An Ecological Perspective,* John Wiley & Sons, England, 1994, p 22

5 K. K. Verma, *Culture, Ecology and Population: An Anthro-Demographic Study*, National Publishing House, Delhi, 1977, p 22

6 F. B. B. Birt, *The Story of an Indian Upland*, Smith Elder & co., London, 1905, p 132

7 E. Balfour, *The cyclopaedia of India and Eastern and Southern Asia*, Bernard Quaritch, London, 1885, p 527

8 N. Kumar, *Bihar District Gazetteer, Ranchi*, Government of Bihar, Patna, 1970, p 104

9 J. Singh, *Upper Damodar Valley: A Study in Settlement Geography*, Inter-India Publications, New Delhi, 1985, p 126,

10 A. Shah, *In the Shadows of the State: Indigenous Politics, Environmentalism, and Insurgency in Jharkhand, India*, Duke University Press, London, 2010, p 45

11 A. Baviskar, *In the Belly of The River: Tribal conflicts over Development in the Narmada Valley*, Oxford University Press, Delhi, 1995, p 148

12 S. Choudhury, G. S. Chattopadhyay and N. Das, Damodar River Basin: Economic Development and Nature, Seminar Volume of UGC Sponsered National level seminar on the topic *Sustainable Development: An Interdisciplinary Approach, 2012* Retrieved from http://pannetwork.in/Damodar%20ecology.pdf

13 W. R. Dunstan, The Coal Resources of India and their Development, *Journal of the Society of Arts*, 50(2574), London, 1902, p 373

14 P. C. Roy Chaudhury, *Bihar District Gazetteer: Dhanbad*, Secretariate Press, Patna, 1964, p 696

15 A. K. Srivastava, *Coal Mining Industry in India,* Deep & Deep Publications, New Delhi, 1988, p 19

16 GoI, *Report of the Indian Irrigation Commission* 1901-1903, Superintendent of Government Printing, Calcutta, 1903, p 154

17 Letter No. 163 M.F. From J. M. Coates, Esq., M.D., Sanitary commission for Bengal to The Assistant Secy., the Government of Bengal, Financial Department (Sanitation) dated 12 March, 1880, Selections from the Record of Bengal Government irrigation Department 1865-1893, Bengal Secretariat Press, Calcutta, 1893, p 240

18 V. R. Khedkar, *Mineral Resources of the Damodar Valley and Adjacent region and their Utilisation for Industrial Development*, Information office, Damodar Valley Corporation, Calcutta, 1950, pp 95-96

19 Saryu Rai, *Deonad Damodar ki Vyatha*, Yugantar Bharati, Ranchi, p 3-4

20 A kind of charcoal formed by the decayed plants and is accumulated in the soil whose porous nature helps in absorbing toxic substances from polluted soils and reduced contaminants in the soil.

21 B. Imam, A Profile of Chotanagpur, *The Eye*, 1(5), New Delhi, 1992, pp 9-10

22 P. Ghosh, S. Bandyopadhyay, N.C. Jana, & R. Mukhopadhyay, Sand Quarrying Activities in an Alluvial Reach of Damodar River, Eastern India: Towards a Geomorphic Assessment, *International Journal of River Basin Management*, 14(4), DOI: 10.1080/15715124.2016.1209509, 2016, pp 477-489

23 K. L. Dutt, *Mining and Urbanisation in the Raniganj coalbelt,* World Press, Calcutta, 2001, p 39

24 P. C, Roy Chaudhury, op. cit., p 21

25 Biological magnification means they move up in food chain in progressively greater concentrations. R. Patra, S. Mitra, & S. Mukherjee, Perturbation of the Health of the Riverine Ecosystem and its impact on the Biogeological, Ecological and Molecular Perspectives, Bidhan Chandra Patra, Pravat Kumar Shit, Gouri Sankar Bhunia & Manojit Bhattacharya (eds.), *River Health and Ecology in South Asia: Pollution, Restoration and Conservation*, Springer, Switzerland, 2022, p 229

26 Choudhury, Damodar Valley Corporation, the missed opportunity*, Journal of Infrastructure Development,* 3(2), DOI: 10.1177/097493061100300202, p 124

27 Kuntala Lahiri-Dutt, Radhika Balakrishnan and Nesar Ahmed, "Land Acquisition and Dispossession: Private Coal Companies in Jharkhand", *Economic and Political Weekly,* 47(6), Sameeksha Trust, Mumbai, 2012, p 42

28 M. Vicziany, Ecological Perspectives on the Development of the Piparwar Coal Mine in Bihar 1954-1994. Richard H Grove, Vinita Damodaran & Satpal Sangwan. (eds.), *Nature and the Orient: The Environmental History of South and Southeast Asia,* Oxford University Press, Delhi, 1998, pp 484-533

29 M. K. Chakraborty, R.S. Singh, S. K. Chaulya & M. Ahmad, Water Quality Stimulation of Damodar River, A.K. Ghose & B.B. Dhar (eds.), *Mining: Challenges of the 21st Century*, A.P.H. Publishing Corporation. New Delhi, 2000, pp 735-751

30 Picking up the tab for industrial growth. *Down to Earth*, 30 January, 1993, Retrieved from https://www.downtoearth.org.in/news/picking-up-the-tab-for-industrial-growth-30597

31 Presently Saryu Rai is an independent MLA from Jamshedpur West.

32 Saryu Rai, "Sampadak ki kalam se", *Rivers of Jharkhand*, Smarika 06, Yugantar Bharati, Ranchi, 2006, p 1

33 David L. Haberman, *River of Love in an Age of Pollution: The Yamuna River of Northern India*, University of California Press, London, 2006, p 1

34 Bhaskar & Apratim, *Damodar a Riverscape, Cross-Cultural Communications*, New York, 2021

35 Second Jharkhand Legislative Assembly Debate Second Session dated 24 June, 2005, Jharkhand Legislative Assembly Library, Ranchi

36 Interview with the activists of Damodar Bachao Andolan

37 D. Wisler, & M. G. Giugni, "Social Movements and Institutional Selectivity", *Sociological*

Perspectives, 39(1), Chicago, 1996, pp 85-109

38 S. Datta, *Damuda Sacred Water: Narratives on Environmental Loss and Conflict in the Upper and Middle Damodar River Basin,* Indian Institute of Advanced Study, Shimla, 2017, pp 66-67

39 Bulu Imam is the founder of the Indian National Trust for Art and Cultural Heritage (INTACH)

40 B. Imam, Case study for the Protection of Living Heritage in India: The North Karnpura Valley, Eléonore de Merode Rieks Smeets & Carol Westrik (eds.) *Linking Universal and Local Values: Managing a Sustainable Future for World Heritage,* UNESCO World Heritage Centre, Paris, 2004, p111

41 A. Kumari, Damodar Pariyojna: Sapno se Jyada Dard. *7 days*, Ranchi, 10 May, 2008, Retrieved from https://www.cseindia.org/seventh-cse-media-fellowship-rivers-used-and-abused-343

42 B. Imam, "Ecological Background of Chotanagpur – Its Imbalance and Tribal Communities", *Man in India*, 70(3), Ranchi, 1990, p 274

43 J. D. Pedersen, 'The dog that didn't bark (very loudly)' – large scale development project with little protest in Nehru's India*,* K. B. Nielsen & P. Oskarsson (eds*.), Industrialising Rural India: Land, Policy and Resistance,* Routledge, New York, 2017, p29

44 File No. 19/5-G/50, Letter from President Dr. Rajendra Prasad to Minister for works, mines and power Shri N. V. Gadgil dated 26 April, 1950, President Secretariate Department, General Branch, National Archive, New Delhi

45 P. C. Roy Chaudhury, The Saga of the Rivers of Bihar. *The Bihar Information*, 14(1), Patna, 1966, p 7

46 J. D. Pedersen, op. cit., p 37

Jahangir - The Prince of Artists

Environmental Loss and Evolution of Institutions for Conservation

Shafaque Ammar*

Abstract

Jahangir, an unrivalled patron and fastidious critic of art, took Mughal school of painting to its apogee. His reign is considered as golden period for the painters. It was achieved only because of the imperial patronage which was no longer the monopoly of poets, singers or generals. The personality of Emperor Jahangir and his love for painting further helped in the growth of painting to its fullest extent. This paper attempts to analyze the aesthetic and naturalistic personality of Jahangir, painters patronaged by him and the subject that founds their depictions in his memoir, Tuzuk-i-jahangiri,a mortals attempt to immortalize himself.

Keywords : *Unrivalled Patron, Imperial Patronage, Important Events, Pinnacle, Portrait, Subjects of Depiction.*

Introduction

Painting was introduced to Mughal court by the founder of Mughal dynasty Zahirrudin Muhammad Babur and was developed by Akbar, the great but it reached its acme under Emperor Jahangir. Jahangir was admirer of art just like his father Akbar and had keen artistic sense like his great grandfather Babur. His artistic personality combined with the stable and prosperous empire, which he inherited from Akbar, proved to a fruitful ground for the growth of the art of the painting. The emperor was blessed with the painters who were unparalleled in their skills and the painters was blessed to have a patron whose aesthetic personality not only gave them encouragement but also made him greatest critic and admirer of their art. This led to the production of the top quality of art and made the Jahangir's era, the golden period of artists.

* Research Scholar, Dept. of History, Ranchi University.

Jahangir as a Patron of Art

Jahangir was born with an aesthetic and artistic sense which was sparked by the European engravings brought by the Jesuit Missionaries in Akbar's court. This love for European art was on display for the rest of his life. His further contact with the painting was in the form of decoration of the walls of the palaces. Most of the pictures were of the Persian style and few were the pictures painted by the Hindu artists under Akbar's order. As a youth he saw the religious pictures which the first Jesuit mission brought to the court of the 'Great Mogul', for he accompanied the emperor to their chapel and heard the discussions concerning these examples of western painting.[1] The contact with various school of arts during his boyhood introduced him to variety of art form. Later in his days as emperor, the assimilation of these different school gave an unique and definite flavor to the Mughal school of art.

The boyhood interest in painting kept growing and established deeper roots in the heart and mind of Jahangir. He started having painters under his services during his princely days, long before he became an emperor. Prince Salim started a new studio under an émigré Herati painter named Aqa Riza, which worked in full swing at Agra and during the years of Salim's rebellion at Allahabad, and brought about 'minor artistic revolution'.[2] He had limited number of artists in his court during his rebellion days thus not allowing him to display his naturalism and artistic sense on grand scale.

In 1605, Jahangir inherited the royal throne and with this he got imperial atelier under his services. He had the painters who were master at different skills under his command. The trend started in his princely days was vigorously pursued by Jahangir and Mughal painting reached its logical culmination in the course of his reign. He helped it to be free from its bond with the text of manuscripts as it was his desire to have a small group of master painters, each highly specialized in one or more branches of the art who could prepare pictures of persons or groups or themes selected by him and pulsating with life.[3]

Jahangir was an enthusiastic collector of art. He was admirer of any fine workmanship not just of his painters. Jahangir has been described by a modern

critic as belonging to 'the type of rich collector, perennial through the ages, voluptuously appreciative of fine workmanship, an excellent connoisseur, proud of the skill of his painters, and ready to pay heavy price for any picture that caught his fancy and satisfied his aesthetic standards.[4]

Jahangir was essentially an aesthete, a patron, a collector and a connoisseur of art. Intellectual and spiritual quests or even interests were not for him; proud pageant-loving and pleasure-seeking Jahangir's interest in painting was aesthetic out and out, and he seem to have taken a great deal of care to acquire considerable expertise in the identification and evaluation of painting. Jahangir, himself was a very fine calligrapher and had a considerable skill with the brush.[5] He himself remarks-" As regards myself, my liking for painting and my practice in judging it have arrived at such a point that when any work is brought before me, either of deceased artist or of those of the present day, without the names being told me, I say on the spur of the moment that it is the work of such and such a man. And if there be a picture containing many portraits, and each face be the work of a different master, I can discover which face is the work of each of them. If any person has put in the eye and eyebrows of a face I can perceive whose work the original face is, and who has painted the eye and eyebrows."[6]

Jahangir as a patron was very important for the growth of Mughal school of art. He played an important role in changing the aspects of Mughal painting like specialization of the individuals, the application of colours, the subject of depictions etc.

Jahangir's Atelier

Jahangir's atelier was very small in comparison to Akbar's atelier at his peak but the quality of the work produced was way more superior than the work produced during Akbar's period. Emperor Jahangir's confidence in his own visual acuity seems amply confirmed by the extraordinary quality of the works he commissioned. Unlike Akbar, who often demanded large books of both historical and subject matter, Jahangir virtually ignored the historical, and made immediately evident his preference for small books with fewer and thereby often finer Illustrations.[7]

The number of painters in Jahangir's atelier was one third of Akbar's atelier. Jahangir was very specific and precise in demanding of the types of works he wanted to be produced. Jahangir's interest in painting was passionate and connoisseurly. His reign witnessed specialization notably in portrait painting and pictures of flora and fauna, so there was no scope for the lesser skilled and middle-rung artists. Consequently, several Mughal painters had to seek their fortune outside the imperial atelier which reduced the number of artists gradually under the Jahangir's reign.[8] The small atelier made it easy for Jahangir to look after the work of the painters personally. Akbar appears to have left the artists, when once started on their career, very much to their own devices, to rise or fall by their own individual selection of models. The pictures of his reign are proof of this, and show that the painters were groping about in the mists of uncertainty, with no one to guide them on their way. But when Jahangir became emperor and patron, with the school under his control, all this changed. He was an antiquarian with an artist's eye, and out of the well-spring of his knowledge he supplied this missing quality, using it with rare judgments, as the art of his time bears eloquent testimony.[9]

With an small atelier at his hands Jahangir was aware of the specializations of his painters. He was aware who were experts in the application of color, who were expert in taking likeness of humans, who were expert in depicting the natural scenarios and who were expert at drawing of flora and fauna. Every artist had their own unique skills which made them stand apart in the entourage of artists. Perhaps, this was also the reason why Jahangir used to make claims about his expertise in identification of the painters from the work presented to him.

Jahangir knew the potential of his artists and used to place lot of faith in them to bring to reality the vision of the emperor. The kind of faith Jahangir had in his artists can be seen in an incident narrated by Thomas roe, ambassador to the court of the Great Mogul. It was related to copying of portrait owned by Thomas Roe. The Englishman was proud of the works produced in his country and thought of Indian artists as less skilled while, Jahangir was very confident of his artists and had full faith that they can

produce work of equal caliber as European artists, if not better. Thomas roe records –" At night he sent for me, being hassle to triumph in his workman, and showed me 6 pictures, 5 made by his men, all pasted at one tables, So like that I was by candlelight troubled to discern which was which; I confessed beyond all expectations; yet I showed mine own and the differences, which were in art e apparent, not to be judged by a common eye, where at king answered: you confess he is a good workman; send for him name, and show him such photos as you have and let him choose one; In requital where of you shall choose any of these copies to show in England we are not so unskillful as you esteem us''.[10] Jahangir was an art fanatic. He never shied to obtain any painting or miniature from any part of the world that pleased his eyes and aesthetic soul. He used to obtain any praiseworthy art and made his painters draw the copy of it.

Jahangir's admiration of his artists was not limited to only showing faith and trust in them but he used to reward his artists for whenever they used to produce work worthy of satisfying Jahangir's artistic soul. Other than rewarding them in cash and kind he used to bestow on them titles suitable to their skill and talent. Jahangir's memoir is filled with mention of the painters who were under his patronage, their work and their praise. He never restricted himself in praising the amazing skills of his painters. The important painters that found their name in Jahangir's memoir are – Farrukh Beg, Aqa Riza, Abul-Hasan, Ustad Mansur, Manohar, and Basawan. The picture of accession as the front piece to Jahangir Nama was drawn by Abu-l-Hasan, son of Aqa Riza, who has been honored with the title of Nadir-uz-Zaman (wonder of the age). Jahangir mentions it was worthy of all the praise for which artist received endless rewards. His work was perfect and his picture is one of Chef's D'oeuvre (a masterpiece) of the age. At the present time he has no rival or equal. If at this day the masters 'Abdu-l-Hayy and Bihzad were alive, they would have done him justice.[11] Another painter for whom Jahangir was full of praise in his memoir was Ustad Mansur. He bestowed on him the title of Nadir-ul-Asr (unparalleled of the age).[12] Ustad Mansur was master in depicting the beauty of nature. Jahangir was fond of portraiture. Portraiture was an important feature of his era. The painter that was praised for his skill

of taking the likeness of humans was Bishandas. Jahangir, in his autobiography, mentions Bishandas as someone who was unequal in his age for taking likeness.[13] Jahangir also appreciated the merit of the painting by commenting on the painting and providing his signature to it. Such ascription, appearing on paintings bear testimony to his judgement. These observations are invaluable records of his status as a connoisseur.[14]

Themes preferred by Jahangir

Jahangir was keen to preserve a fruitful account of his activities and important events in the form of a memoir and commanded his painters to prepare pictorial records of important festivals such as Holi, Ab-Pashi, birthday weighings etc and meticulously delineating the emperor hunting expeditions.[15] Formal reception, court scenes, common people and their day-to-day life activities were also brought to life by the artists of imperial atelier. Portraiture and hunting scenes were the favourite subject of this time but the more scientific fields of botany and natural history were objects of special study. Any unusual flowers or rare animals were ordered to be copied by the emperor and some of these pictures most elaborate and faithful reproductions have survived to the present day.[16] For Jahangir the portraitures were the means through which he studied and gained insights into the character and personality of the individual portrayed.[17] The most unique subject of depiction were the dreams and fantasies of the emperor. To bring his dreams and fantasies to life on the paper Emperor needed artist who could visualize the emperor's thought. All in All, the ideas for pictures usually used to come from Emperor himself, excited upon seeing a flower, witnessing an important historical event or a notable kill during the hunting.[18]

Some painters were always present at Emperor's service to take the likeness of whatever arouse the curiosity of Emperor. Jahangir not only used to order for the depictions but he himself used to describe it to great extent its features, looks or activities in his memoirs that readers may visualize what Jahangir recorded. Like a tamarind tree that came to view, the form and habit of which was somewhat strange. The original tree had one trunk, when it had grown to 6 gaz, it turned into two branches, one of

which was 10 and other 9 and half gaz. He was awestruck with the shape and size of the tree as the trunk was very straight and well-shaped he told his artists to depict it in the illustrations to the Jahangir Nama.[19] Jahangir vividly describes any animal or flower that he came across for the first time in his life. One such description in his memoir is of galahari (squirrel). He mentioned it as a pie bald animal like the jumping mice. As he saw it for the first time, he ordered his artists to take the likeness of it.[20] There were many illustrations depicting the beauty of Kashmir and other species of flora and fauna but one illustration which leaves everyone awestruck and perfectly captures the visual lust of Jahangir at its epitome is the depiction of Inayat khan, one of Jahangir's intimate attendants. He was ill and brought to court to be given leave to depart. He looked incredibly thin and weak. Jahangir describes his physical look as "skin stretched over bone". He was in such state that even his bone had started to disintegrate. It was so strange that Jahangir ordered the artist to draw his likeness.[21] Jahangir's choice of subject of depiction was very different than of Akbar. While both had the interest for portraiture and were interested in getting depicted their court attendants but the Jahangir's interest in subject of natural history sets him apart from his predecessors as well as successors.

Another unique subject of depiction was the portraits of Jahangir himself. While it was common for the Mughal Emperors to make artist draw their likeness what makes it unique for Jahangir was the idea behind the portraits. Jahangir had great artistic sense and knew what impact visuals leave on the mind of viewers. In most of his portraits he depicts himself as a larger-than-life personality. Paintings eliminating Dalidar (poverty), shooting Malik Amber and depicting himself as lion while Shah (king of Persia) as a lamb are few examples of such portraitures. Jahangir knew what people see people believe.

Except possibly through his memoir, Jahangir was most accessibly and appealingly known through his paintings. If Jahangir's life at times reads like the plot of romantic melodrama, his painting reveal him as dead earnest. They often give the impression of having been coaxed from the artists stroke-by-stroke with painted smile or scowl master minded by the art loving ruler.[22]

Conclusion

Jahangir was an aesthete and his personality combined with resources he had in his hands took Mughal school of painting to its greatest heights. He might not be a great ruler like his father and had many shortcomings but he was the most glorious art patron among Timurids. He was soul and spirit of Mughal art. He brought many novelties in Mughal school of art, looked after his painters, polished their skills with his skillful judgement and observation and showed that his artists were not less skillful than the Europeans. He was a breath of fresh air for Mughal school of art which was limited to illustrations of historical and religious manuscripts. He introduced new themes and subjects and gave the artist freedom to display their skills on a broader and wider scale. Jahangir's artistic personality helped the Mughal school of art reach its pinnacle.

References

1. Percy Brown, *Indian Painting under the Mughals, A.D. 1550 to A.D. 1750*, Life Span Publishers and Distributors, New Delhi,2021, p. 74.
2. M.H. Syed, *History of the Glorious Mughal Empire, vol-3,* Anmol Publications Pvt. Ltd., New Delhi,2004, p. 97.
3. ibid, p. 97.
4. Laurence Binyon, Thomas Walker Arnold, *Court Painters of the Grand Moguls*, Oxford University Press, London,1921, p. 50.
5. Niharranjan Ray, *Mughal Court Painting*, Indian Museum, Calcutta,1975, p. 33.
6. M.P. Srivastava, *Society and Culture in Medieval India, Chugh Publication*, Allahabad, 1975, p. 199.
7. Milo Cleveland Beach, *The Grand Mogul, Imperial Painting in India 1600-1660*, Sterling and Francine Art Institute, Massachusetts, 1978, p. 23.
8. Som Prakash Verma, *Mughal Painting*, Oxford University Press, New Delhi, 2014, p. 14.
9. Percy Brown, *op.cit.*, p. 78.
10. Sir Thomas Roe, *The Embassy of Sir Thomas Roe to the Court of the Great Mogul 1615-1619, Vol 1*,William Foster(ed.), Hakluyt society, London, 1899, p. 225.
11. Jahangir, *Tuzuk-i-Jahangiri, Memoirs of Jahangir, Vol.2*, Alexander Rogers(trans.), Henry Beveridge(ed.), Atlantic Publishers and Distributors Pvt. Limited, New Delhi,2021, p. 21

12. ibid, p. 22.
13. ibid, p. 124.
14. Som Prakash Verma, *op.cit.*, p. xxxi
15. M.H. Syed, *op.cit.*, p. 98.
16. Percy Brown, *Indian Painting, Life Span Publishers and Distributors, New Delhi*, 2020, p. 46.
17. Niharranjan Ray, *op.cit.*, p. 103.
18. Milo Cleveland Beach, *op.cit.*, p. 179.
19. Jahangir, *Tuzuk-i-Jahangiri, Memoirs of Jahangir, Vol.1*, op.cit., p. 328
20. ibid, p. 100.
21. Jahangir, *The Jahangir Nama, Memoirs of Jahangir, Emperor of India*, Wheeler M. Thackston(trans., ed., and annot.), Free Gallery of Art, Arthur M. Sackler Gallery, Washington D.C., p. 280.
22. Stuart Carey Welch, *Imperial Mughal Painting*, George Brazillier, New York, 1978, p. 26.

झारखंड में यूरेनियम उद्योग का सामाजिक-आर्थिक प्रभाव

आलोक कुमार*

सारांश

झारखंड की पहचान प्राचीन काल से एक औद्योगिक प्रदेश के रूप में रही है। आधुनिक समय में यूरेनियम उद्योग के विकास ने इस प्रदेश को वैश्विक स्तर पर एक नई पहचान दिलायी है। जादूगोड़ा में यूरेनियम उद्योग की स्थापना के कारण इसका व्यापक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है जिससे यहां निवास कर रहे लोगों की स्थिति बेहतर हुई है, यद्यपि इस उद्योग ने कुछ नकारात्मक प्रभाव भी उत्पन्न किये हैं। विकिरण के कारण जहाँ पर्यावरण और मानव के स्वास्थ्य पर गंभीर प्रभाव पड़ा है। वहीं विस्थापन के कारण यहाँ प्राचीन काल से रह रहे लोगों की पहचान समाप्त होने का संकट उत्पन्न हो गया है जिसके कारण यहां रह रहे लोगों का अस्तित्व ही संकट में पड़ता नजर आ रहा है।

कुंजी शब्द : विस्थापन, शहरीकरण, पहचान की समस्या, विकिरण, संस्कृतिकरण।

भूमिका

झारखंड की पहचान प्राचीन काल से ही 'रत्नगर्भा' भूमि के रूप में होती रही है। भारत के कुल खनिजों का लगभग एक तिहाई यहीं से प्राप्त होती है, जिससे झारखंड औद्योगिकविकास की दृष्टि से एक अलग पहचान बनाये हुए है। भारत के आजाद होने के बाद से ही प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने भी उस समय के दक्षिणी बिहार, वर्तमान झारखंड की प्रगति के लिए बहुत सारे कल–काखानों की यहाँ आधारशिला रखी। इसी दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयास 1951 ई0 से ही जमशेदपूर से 30.7 कि0मी0 की दूरी पर स्थित जादूगोड़ा में यूरेनियम धातु की खोज की और 1967 ई. में यूरेनियम कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड (यूसीआईएल) की स्थापना से यूरेनियम उत्खनन का कार्य प्रारंभ हो गया।

झारखंड में यूरेनियम उद्योग का सामाजिक-आर्थिक प्रभाव

किसी भी उद्योग के स्थापित होने से उस क्षेत्र की सामाजिक और आर्थिक स्थिति में आमूलचूल परिवर्तन देखने को मिलता है। उद्योग के स्थापित हो जाने से वहाँ की व्यवस्था में एक

*शोधार्थी, सीनियर रिसर्च फेलो, विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची

क्रांतिकारी बदलाव दिखलाई पड़ता है। औद्योगिक कार्य शुरू होने के बाद बड़े पैमाने पर यहाँ के लोगों को रोजगार के साथ–साथ सरकार को राजस्व की प्राप्ति होती है।

जादूगोड़ा क्षेत्र में यूरेनियम उद्योग की स्थापना हो जाने के बाद यहां के लोगों के जीवन स्तर में काफी बदलाव देखने को मिल रहा है। यूरेनियम उद्योग में लगभग पाँच हजार स्थायी और दस हजार अस्थायी श्रमिक कार्यरत है[1] जिससे यहाँ कार्यरत श्रमिकों को यूसीआईएल कंपनी के द्वारा वेतन के रूप में एक बड़ी धनराशि दी जाती है, जिससे यहाँ कार्यरत श्रमिकों की प्रतिव्यक्ति आय अन्य क्षेत्र के लोगों से ज्यादा है। आय की अधिक मात्रा में प्राप्ति होने के कारण यहाँ के लोगों की क्रय क्षमता भी काफी बढ़ गई है। इसलिए जहाँ जादूगोड़ा पहले एक छोटा कस्बा हुआ करता था, आज यह यूरेनियम उद्योग के कारण एक छोटे शहर रूप में बदल गया है और यहाँ की आबादी चालीस हजार से ज्यादा हो गई है।[2] यहाँ के लोगों की क्रय क्षमता में वृद्धि होने के कारण यहाँ पर हर तरह की वस्तुएं आसानी से उपलब्ध हो जाती है। जीविका के एक बड़े स्रोत के रूप में यहां के स्थानीय लोगों को रोजगार के नये–नये अवसर भी उपलब्ध हो गये जिसके कारण यहाँ के स्थानीय लोगों को आर्थिक रूप से सशक्त होने में काफी बल मिला है। महिलाऐं भी यहाँ कोई न कोई कार्य करती नजर आती है जिससे वे भी अब सशक्त हो रही है।

इसके अलावा यहाँ यह देखा जा रहा है कि यूसीआईएल कंपनी में जो श्रमिक कार्य कर रहे है, उसकी आर्थिक स्थिति ठीक है और वे अपनी सुविधा की वस्तुओं को आसानी से खरीद पाते हैं। उनके जीवन स्तर को ऊँचा उठाने में मदद मिली हैं। इसके अलावा जादूगोड़ा का यह क्षेत्र जनजातीय बाहुल क्षेत्र है[3] जिनमें से अधिकांश आबादी निरक्षर या मशीनी काम में दक्ष नहीं होने के कारण इन्हें स्थायी रोजगार नहीं प्राप्त हो पाया। यदि कार्य दिया भी गया तो वह निम्न स्तरीय होता हैं जिसमें कार्य के एवज में मामूली रकम दी जाती है। इससे उसके जीवन स्तर में विशेष बदलाव नहीं आ पाया जिससे उनमें सामाजिक असामनता की भावना बढ़ गई है। इसके अलावा यहां के मूल निवासी जिन्हें विस्थापन के कारण रोजगार दिया गया है, उनमें से अधिकांश लोगों के बीच साक्षरता का अभाव होने के कारण उन्हें मशीनी कामों में नहीं लगाया जाता और न ही प्रबंधन के उच्च स्तर के कार्य दिये जाते, यह कार्य ज्यादातर बाहरी प्रदेशों से आये लोगों से लिया जाता है। इस दक्षतापूर्ण कार्य हेतु इन्हें ज्यादा मजदूरी दी जाती है। अतः दोनों प्रकार के कार्यरत मजदूरों के बीच आय असमानता के कारण जीवन स्तर में अंतर दिखता है। साथ ही ऐसा देखा जाता है कि इनकी मूल भूमि दूसरे प्रदेशों में होने के कारण ये बाहर से आये लोग अपनी आय का बड़ा हिस्सा अपने प्रदेशों में ले जाते हैं, जिससे जादूगोड़ा से प्राप्त आय का इन क्षेत्रों में खर्च न होने से यह क्षेत्र उतनी तरक्की नहीं कर पाया, जितना का वह हकदार रहा है।

शिक्षा पर प्रभाव

किसी भी उद्योग की स्थापना होने से वहाँ की शैक्षणिक स्थिति को बेहतर बनाना वहाँ स्थापित कंपनी की जिम्मेवारी बन जाती हैं, क्योंकि उस उद्योग में काम करने वाले कामगारों के बच्चों और आसपास के गांवों के बच्चों का शिक्षित होना एक मौलिक अधिकार है। इस दिशा में यूसीआईएल द्वारा जादूगोड़ा, नरवापहाड़ और तुरामडीह में तीन परमाणु ऊर्जा केन्द्रीय विद्यालय[4] संचालित किए जा रहे है। इसके अलावा झारखंड सरकार द्वारा संचालित विद्यालयों में उच्च स्तर तक की शिक्षा दी जा रही है। आंगनबाड़ी संचालन केन्द्र द्वारा छोटे बच्चों को पौष्टिक आहार के साथ विद्यालय का संचालन किया जा रहा है। वर्तमान समय में यहाँ पर निजि संस्थानों द्वारा विद्यालय का संचालन किया जा रहा है जिससे शिक्षा की स्थिति यहाँ बेहतर स्थिति में दिखलाई पड़ता है। इसके अलावे जादूगोड़ा खनन क्षेत्र में योग्य और मशीनी कार्य हेतु अनुभवी श्रमिकों को प्रशिक्षण भी दिया जाता है[5] जिससे ये मशीनी कार्य का प्रशिक्षण लेकर उच्च वेतनमान में नियुक्त हो सके। महिलाओं में भी शिक्षा के क्षेत्र में यहाँ विकास देखने को मिलता है। वे भी अच्छी शिक्षा प्राप्त कर और प्रशिक्षण लेकर यूसीआईएस में कार्यरत हो रही है।

यद्यपि यूसीआईएल द्वारा जादूगोड़ा और उसके आसपास के विस्थापित बच्चों को शिक्षित करने का कोई सघन कार्यक्रम नहीं संचालित होता है जिसके कारण यहां के बहुत सारे बच्चे अपनी प्राथमिक शिक्षा ग्रहण करने के बाद आगे की शिक्षा से वंचित रह जाते हैं। इसके साथ ही यहां पर विकिरण के प्रभाव के कारण बहुत सारे बच्चे शारीरिक और मानसिक रूप से अपंग हो गये है। इनके लिए भी शिक्षा प्राप्त करने की कोई व्यवस्था नहीं है, जिससे ये बच्चे अपने मौलिक अधिकार से वंचित रह जाते हैं। इस ओर यूसीआईएल और राज्य सरकार को ध्यान देने की आवश्यकता है।

महिलाओं पर प्रभाव

झारखंड खनिज संपदा से युक्त एक संपन्न प्रदेश है। यहाँ देश की लगभग चालीस प्रतिशत खनिजों की प्राप्ति होती है।[6] इन्हीं खनिजों में यूरेनियम एक महत्वपूर्ण खनिज है, जिसकी प्राप्ति भारत में सर्वप्रथम जादूगोड़ा में 1951 ई0[7] में की गई। इस यूरेनियम उद्योग का प्रभाव यहाँ की महिलाओं पर पड़ा और इन्हें सामाजिक और आर्थिक रूप से प्रभावित किया।

यूसीआईएल की स्थापना से शिक्षा, रहन–सहन तथा रोजगार के नये–नये अवसर पैदा हो रहे है, जिसका प्रभाव यहां की महिलाओं पर पड़ा और वे इनसे लाभान्वित हो रही हैं। शिक्षा के क्षेत्र में जहाँ स्त्रियां शिक्षण और प्रशिक्षण का कार्य बेहतर ढंग से कर रही है, वहीं रोजगार में एक नये–नये अवसरों का भी लाभ ले रही हैं। इनके रोजगार प्राप्त करने की दिशा में यूसीआईएल के द्वारा सहयोग दिया जाता है और इसके लिए कई तरह के कार्य संचालित कर

प्रशिक्षण दिलाया जाता है जैसे यहां की महिलाओं को सिलाई, कढाई, बुनाई का प्रशिक्षण दिया जाना और बागवानी, जंगली उत्पाद जैसे दोना–पत्तल बनाना, मशरूम की खेती इत्यादि सिखाया जाता है[8] और इन उत्पादों की बिक्री के लिए बेहतर बाजार भी प्रदान दिया जाता है ताकि उन्हें अपने उत्पादों के बेचने के लिए संघर्ष ना करना पड़े। इस तरह से प्रशिक्षण प्राप्त स्त्रियां आर्थिक रूप से सशक्त होकर अपने परिवार का भरण–पोषण कर रही है।

यूसीआईएल द्वारा अपने श्रमिकों को आवास की सुविधा हेतू नई कॉलोनियों का निर्माण किया गया जिनमें रहने वाले लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्थानीय बाजारों में आवश्यक सामानों की खरीद–बिक्री जैसे कामों में भी बड़ी संख्या में स्त्रियों को रोजगार मिला है साथ ही इन कॉलोनियों में अशिक्षित महिलाओं को घरेलू काम मिल जाने के कारण इनकी जीविका में सुधार हुआ है, जीवन स्तर में सुधार हुआ है जिसके कारण अब यहाँ की महिलाओं को दूसरे प्रदेशों में काम करने के लिए नहीं जाना पड़ता है। यद्यपि इस प्रकार के आर्थिक सशक्तिकरण का लाभ सभी स्त्रियाँ नहीं ले पा रही है और वे सामाजिक रूप से पिछड़ी हुई है।

यूरेनियम उद्योग की स्थापना का एक दूसरा नकारात्मक पक्ष भी है, जिससे यहां की महिलाएं प्रभावित हो रही है और उससे अनदेखा नहीं किया जा सकता। यह पक्ष इस उद्योग से उत्पन्न होने वाली विकिरण ही समस्या से जुड़ा हुआ है। यूरेनियम उद्योग के कचरे से निकले विकिरण के कारण उन्हें स्वास्थ्य संबंधी गंभीर समस्या[9] का सामना करना पड़ रहा है, जो उनके प्रजनन क्षमता से संबंधित है, जिससे स्त्रियों को गर्भधारण में समस्या तथा गर्भपात जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है जिनके कुछ उदाहरण दिखते है, इसके दुश्प्रभाव भी है जैसे– विवाह विच्छेद की समस्या जो एक गंभीर सामाजिक समस्या[10] जिससे यहाँ की स्त्रियों को जुझना पड़ता है। इसके अलावे जिन महिलाओं को गंभीर असाध्य रोग हो गया है, उन्हें उनके घरवाले अपने पास रखने से भी कतराते हैं, जो एक विकट सामाजिक समस्या को जन्म दे रही है।

आवासीय समस्या

यूरेनियम उद्योग की स्थापना से पूर्व जादूगोड़ा का यह क्षेत्र एक सिमटा हुआ गांव था, लेकिन यूसीआईएल की स्थापना होने के बाद अपने श्रमिकों के आवास हेतू व्यवस्था की गई, जिससे यहां की मूलभूत आवश्यकताओं जैसे बिजली, पानी, सड़कें, चिकित्सा की सुविधा, शिक्षा की व्यवस्था इत्यादि दिशा में कार्य किये गये जिनसे यह क्षेत्र पहले इन सुविधाओं से वंचित था। इन सुविधाओं के विकास का लाभ यहाँ रह रहे सभी व्यक्तियों को मिल रहा है जो समाज में अभी तक पिछड़े थे वे भी इन सुविधाओं का लाभ लेकर अपनी स्थिति बेहतर बना पाये है। इन्हें आवास के अतिरिक्त विद्यालय, अस्पताल, खेल–कूद के मैदान और मनोरंजन के अन्य साधनों के प्राप्त होने से उनके व्यक्तित्व के विकास में महत्वपूर्ण योगदान मिल रहा है।

यूसीआईएल, परमाणु ऊर्जा विभाग के अंतर्गत कार्यरत एक अंगीकृत इकाई है, जो सीधे प्रधानमंत्री के निर्देशन में काम करता है इसलिए यहां की सुरक्षा की जिम्मेवारी भारत सरकार और यूसीआईएल प्रबंधन की होती है। केन्द्र सरकार द्वारा इसकी सुरक्षा की जिम्मेवारी केन्द्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल द्वारा की जाती हैं जिससे यहाँ सुरक्षा की चाक–चौबंद व्यवस्था रहती है, जिसका लाभ यहां रह रहे स्थानीय लोगों को मिल रहा है।

आवासीय विकास का एक दूसरा पक्ष भी है, जो इस उद्योग के स्वरूप से जुड़ी हुई समस्या से संबंधित है और यह इस उद्योग से उत्सर्जित होने वाला विकिरण है। इस उत्सर्जित विकिरण का प्रभाव आवासीय क्षेत्रों में स्पष्ट दिखता है। यूसीआईएल द्वारा खनन मजदूरों और ऑफिसरों को आवंटित किये गये आवास की प्रकृति भिन्न प्रकार की होती है। ऑफिसरों के लिए बने आवास उस जगह पर स्थित हैं, जहाँ रेडियोधर्मी विकिरण का प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पड़ता है, जबकि खनन मजदूरों के लिए बने आवास[11] उन क्षेत्रों में स्थित हैं, जो विकरणीय प्रभाव क्षेत्र के अंतर्गत हैं। साथ ही बांदुहुरांग में मजदूरों के आवास यूरेनियम खदान की चाहरदीवारी से सटे हुए है और इस चाहरदीवारी की ऊंचाई चार फीट ही है। खदान से सटे होने के कारण खान से निकले पदार्थ के विस्फोट के बाद रेडियोधर्मी धूलकणों और रेडॉन गैस से मजदूरों और उनके परिवार वालों पर दुष्प्रभाव पड़ने की आशंका बनी रहती हैं। जबकिऑफिसरोंके आवास पहाड़ के पीछे सुरक्षित स्थल पर होने के कारण वे उसकेदुष्प्रभाव से मुक्त हैं। इस तरह यूसीआईएल के द्वारा आवासीय सुविधा के संबंध में दोहरी तथा भेदभाव पूर्ण नीति अपनाई गई हैं।[12]

इसके अलावे यूरेनियम उद्योग में गैर कार्यरत श्रमिकों को भी आवासीय समस्या का सामना करना पड़ रहा है। खनन क्षेत्र का दायरा बढ़ने के कारण जहां उनके आवासीय क्षेत्र सिमटते जा रहे हैं, वहीं टेलिंग पौंड के विस्तार के कारण भी उनकी आवासीय समस्या विकट होती जा रही है। कई बार तो टेलिंग पौंड का प्रदूशित जल उनके आवासीय क्षेत्रों में फेल जाता है जो उनके आवास के आस पास की भूमि को बर्बाद कर देता है।[13] पीने योग्य जल को विषैला बना देता है जिससे यहाँ बसे लोग अपनी पुश्तैनी जमीन को छोड़ने को विवश हो रहे हैं। यह एक गंभीर मानवीय संकट को जन्म दे रहा है।

अपराध और कानून व्यवस्था संबंधी समस्या

वर्तमान समय में यूरेनियम काफी संवदेनशील धातु के रूप में गिना जाता है, जहाँ इसका प्रयोग कर ऊर्जा की प्राप्ति की जा सकती है, वहीं नाभिकीय हथियारों के रूप में प्रयोग कर सभ्यता को समाप्त भी किया जा सकता है। इसके प्रथम प्रयोग ने जहां इसकी वर्तमान समय की आवश्यकता के लिए इसे जरूरत बना दिया है, वहीं इसके गलत उपयोग का भय पूरे विश्व के लिए चिंता का विषय बन चुका हैं। भारत में यूरेनियम की प्राप्ति मुख्यतः झारखंड राज्य के

जादूगोड़ा के क्षेत्रों में होती है। यह क्षेत्र जंगलों से घिरे होने और उग्रवादी संगठनों के प्रभाव क्षेत्र में होने के कारण यूरेनियम की चोरी का भय बना रहता है। ऐसे ही यूरेनियम चोरी का मामला जून 2008 में प्रकाश में आया।[14]

इसलिए यह एक गंभीर कानून व्यवस्था का मुद्दा बन गया है। यूसीआईएल, भारत सरकार के परमाणु ऊर्जा विभाग के अंतगर्त कार्य करता है[15] जो सीधे प्रधानमंत्री के क्षेत्राधिकार में आता है, इसलिए यह एक अतिसंवेदनशील क्षेत्र के अंतर्गत आता है। इसके अलावा हाल के दिनों में यहां चोरी, छिनतई, हत्या जैसी आपराधिक घटनाओं में वृद्धि देखी गई है।[16] जो यहां के कानून व्यवस्था पर प्रश्नचिन्ह खड़े करते हैं। इन घटनाओं की मुख्य वजह है युवकों में बेरोजगारी। इसी कारणवश वे ऐसी घटनाओं को अंजाम दे रहे हैं। यद्यपि यूसीआईएल द्वारा युवाओं को रोजगार के अवसर मुहैया कराने के लिए कई कौशल विकास कार्यक्रमों का प्रशिक्षण दिया जा रहा है।

शहरीकरण तथा रहन-सहन की सुविधाओं का विकास

औद्योगीकरण के कारण ही प्रायः शहरीकरण का विकास होता है[17] और नये नये शहर बसने प्रारंभ हो जाते हैं। शहर के बसने से यहाँ बिजली, पानी, सड़क, अस्पताल, शिक्षण संस्थान जैसी मूलभूत सुविधाओं का विकास आरंभ हो जाता है। इसके अलावा मनोरंजन और विलासिता संबंधी सुविधाओं का विकास होता है, जिससे इन क्षेत्रों में रहने वाले मानव समुदाय के लोगो को लाभ मिलता हैं। जादूगोड़ा भी एक गाँव से ही अपनी विकास यात्रा प्रारंभ कर शहरीकरण की दिशा की ओर अग्रसर हो रहा है, इसके पीछे की वजह है, इस क्षेत्र में यूरेनियम उद्योग का प्रसार होना। यूरेनियम उद्योग के कारण ही जादूगोड़ा और तुरामडीह में प्रायः सभी तरह की सुविधाओं की वस्तुओं इन क्षेत्रों में प्राप्त हो जाती है, जो हमे शहरों में दिखाई पड़ती है। जैसे–सिनेमाघर, शॉपिंग मॉल, रेस्टोरेंट, विलासिता ही वस्तुओं की दुकानें इत्यादि। शहरीकरण के कारण लोगों की दिनचर्या बदल जाती है। एक शहर में भिन्न–भिन्न प्रदेशों से आकर लोगों के बसने और आपस में मिल–जुलकर रहने से बहुत सारी संस्कृतियों का आपस में सम्मिश्रण हो जाता है जो एक नव संस्कृति के रूप में विकसित हो जाती है। जादूगोड़ा के सघन आबादी वाले क्षेत्रों में हमें इस प्रकार की संस्कृति देखने को मिलती हैं।

सामाजिक भेदभाव की समस्या

सामाजिक भेदभाव की समस्या मुख्यतः यूरेनियम खनन से प्रभावित वैसे लोगों में देखने को मिलती है, जो विस्थापन का पीड़ा झेल रहे है। विस्थापन के कारण जब वे नई जगह में बसाये जाते है तो वहां के लोगों द्वारा उन्हें निम्न दृष्टि से देखा जाता है और उन्हें सामाजिक कार्यों से अलग रखा जाता है।[18]

यूरेनियम खदानों के आस–पास रहने वाले परिवार जो यूरेनियम के विकिरण के कारण शारीरिक रूप से अक्षम हो जाते हैं, वे अन्य गांवों में रहने वाले अपने रिश्तेदारों के यहां शादी–विवाह में नहीं आमंत्रित किये जाते हैं। यदि उन्हें आमंत्रित भी किया जाता है, तो उन्हें अलग बर्तनों में खाना परोसा जाता हैं, जिन्हें अन्य बर्तनों से अलग रखा जाता है। जादूगोडा, तुरामडीह एवं आस पास के रहने वाले आदिवासी एवं अन्य समुदाय के लोग अपने ही समुदायों के अंदर और बाहर भी सामाजिक रूप से बहिष्कृत है।[19] यदि समय रहते इन समस्याओं को दूर नहीं किया गया तो यह भेद्भाव की भावना मानवता के लिए एक गंभीर समस्या को जन्म देगी।

खाद्य सुरक्षा का अभाव

भोजन व्यक्ति का मौलिक अधिकार है। इससे किसी को वंचित नहीं किया जा सकता है, लेकिन वर्तमान समय में जिस प्रकार से यूरेनियम उद्योग की स्थापना के कारण इससे उत्सर्जित विकिरण तथा कचरे के जमाव के कारण भूमि की उर्वरता नष्ट होती जा रही है साथ ही खनन के कारण जंगलों को काटा जा रहा है जिसके कारण कृषि योग्य भूमि की मात्रा घटती जा रही है ये सभी समस्याएँ एक गंभीर खाद्य संकट को जन्म दे रहा है।

झारखंड का यह क्षेत्र एक कृषि भूमि का प्रदेश रहा है, परंतु यूरेनियम उद्योग की स्थापना के बाद से यहां के लोग विस्थापित होने की वजह से अपनी आजीविका का मुख्य साधन कृषि और जंगली उत्पाद को खोते जा रहें हैं। साथ ही कृषि भूमि के सिमटते जाने और शेष बची भूमि में अम्लीयता की मात्रा बढ़ने के कारण उपज का घटते जाना एक गंभीर खाद्य संकट को जन्म दे रहा है,[20] जो स्थानीय लोगों की पहचान के संकट जैसी जटिल समस्या को भी जन्म दे रहा है। इसलिए यूरेनियम खनन इलाकों में सार्वजनिक वितरण प्रणाली, स्वास्थ्य सुविधाओं एवं अन्य बुनियादी सुविधाओं की विशेष व्यवस्था होनी चाहिए। अन्य सामान्य क्षेत्रों के मुकाबले इन क्षेत्रों में ज्यादा सार्वजनिक स्वास्थ्य केन्द्रों की जरूरत होती है। यहाँ तक कि जो लोग किसी बीमारी से पीड़ित नहीं होते हैं, उनकी भी नियमित जाँच एवं निगरानी की जरूरत होती है।

खाद्य सुरक्षा की दिशा में यूसीआईएल के साथ–साथ केन्द्र और राज्य सरकार दोनों को इस दिशा में पहल करने की आवश्यकता है क्योंकि यूरेनियम उद्योग का यह क्षेत्र जनजातीय बहुलप्रदेश है, जो अशिक्षित है जिनके कारण इनमें जागरूकता का अभाव है। इसलिए इन्हें विकास संबंधी सरकारी योजनाओं की जानकारी नहीं मिल पाती है, क्योंकि अधिकांश योजनाऐं हिन्दी या अंग्रेजी में लिखी होती हैं, इसलिए इन योजनाओं को उनकी क्षेत्रीय भाषाओं में लिख कर इन तक पहुंचाने की आवश्यकता है। इस दिशा में गैर सरकारी संगठन भी लोगों की मदद के लिए आगे आकर प्रयास कर सकते हैं।

निष्कर्ष

इस यूरेनियम उद्योग की स्थापना के बाद जहाँ भारत ने ऊर्जा और सामरिक क्षेत्र में आत्मनिर्भरता की ओर अपने कदम बढ़ए हैं वहीं इसके प्रभाव झारखंड में भी दृष्टिगोचर होते है। जहाँ यूसीआईएल की स्थापना होने के कारण रोजगार के अवसरों में वृद्धि, नगरीकरण का विकास, शिक्षा के नये केन्द्रों की स्थापना, बेरोजगारी में कमी, आवागन के साधनों में वृद्धि, लोगों की आय में वृद्धि, आवासीय सुविधाओं का विकास इत्यादि कई सकारात्मक प्रभाव इन क्षेत्रों में देखने को मिल रहा है। यह जनजातीय बहुल आबादी वाला प्रदेश सदियों से पिछड़ेपन तथा अवेहलना का दंशझेल रहा है। यूरेनियम उद्योग की स्थापना होने से उनके जीवन में बदलाव आया और इसका प्रभाव राज्य की प्रगति में दिखाई पड़ता है। वहीं इस उद्योग की स्थापना से कई नकारात्मक प्रभाव भी दिखाई पड़ते है। यूरेनियम एक रेडियोएक्टिव पदार्थ है जिसके विकिरण के प्रभाव से मानव के स्वास्थ्य पर गंभीर संकट उत्पन्न हो रहे है। वायु, जल तथा मृदा भी इससे प्रभावित हो रहे है, जैव विविधता को नुकसान पहुंच रहा हैं, इससे आनुवांशिक विविधता भी प्रभावित हो रही है। इसके अलावा विस्थापन और पलायन जैसी गंभीर समस्या भी यहाँ देखने को मिल रही हैं। इसके कारण यहाँ की सामाजिक– सांस्कृतिक एकरूपता प्रभावित हो रही है। समय रहते इस दिशा में यदि ठोस कदम नहीं उठाया गया तो इस क्षेत्र में बसे मानव जीवन पर इसके गंभीर दुष्परिणाम उत्पन्न हो सकते है। विकास के उद्देश्य से स्थापित यह उद्योग स्थानीय जनजीवन के लिए संकट का कारण न बन जाय, इसलिए यूसीआईल प्रबंधन का यह विशेष दायित्व है कि इस दिशा में ठोस कदम उठाये।

संदर्भ सूची

1. तरुण कान्ति बोस, पी० टी० जॉर्ज,*एक खोया स्वर्ग, यूरेनियम खनन के खिलाफ झारखंड के आदिवासियोंका संघर्श,* झारखंड के नये यूरेनियम खदानों के असर पर रिपोर्ट, वर्ल्ड इन्फोमेशन सर्विसऑन एनर्जी, 2013, पृष्ठ–7
2. एचटीटीपीएस :/ /डब्लू डब्लू डब्लू. भास्कर कॉम/झारखंड / घाटशिला /न्यूज /जादूगोड़ा विकास में फिसड्डी, 10.08.2022
3. एस० सी० भट्ट, *द डिस्ट्रिक्ट गजेटियर ऑफ झारखंड,* ज्ञान पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2002
4. यूरेनियम कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड, जादूगोड़ा, एचटीटीपीएसः/ /यूसीआाईएल. जीओभी.इन, 09.08.2022
5. वही
6. रामकुमार तिवारी, *झारखंड की रूपरेखा,* हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2019 पृ –532–534
7. परमाणु खनिज अन्वेशण एवं अनुसंधान निदेशालय, हैदराबाद, वेबसाइट एचटीटीपीः/ /डब्लू डब्लू डब्लू ऐएमडी. जीओभी. इन 28.07.2022

8. यूरेनियम कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड, 54 वां वार्षिक प्रतिवदेन, 2020–21, पृष्ठ–85
9. सुनील मिंज, *जादूगोड़ा : नस्ल को धीमा जहर,* सुधीर पाल (संपा०), झारखंड इन्साइक्लोपीडिया, (खंड–3), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ–239–40
10. वही,
11. यूरेनियम कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड, पूर्वोद्धृत,
12. *एक और चेहरा यूसीआईएल का,* सेंटर फॉर कम्युनिकेशन एंड एजुकेशन, लेबर फाइल व श्रमजीवी (द्वैमासिक पत्रिका) द्वारा गठित तथ्यान्वेशी दल का रिपोर्ट, संस्करण– 2010, रांची, पृष्ठ–6
13. वही, पृष्ठ– 6–7
14. बिंदराई इंस्टीच्यूट फॉर रिसर्च
    स्टडी एण्ड एक्शन, अंक–7, रांची, पृष्ठ–9
15. यूरेनियम कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड, पूर्वोद्धृत
16. *खान, खनिज और अधिकार,* डेवियर डायस (संपा०) अंक–6, रांची, अगस्त–2014, पृष्ठ–6
17. राम कुमार तिवारी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ–340–345
18. तरुण कान्ति बोस, पी० टी० जॉर्ज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ–22–24
19. वही, पृष्ठ–25–26
20. वही, पृष्ठ–26–27

झारखंड आंदोलन में पत्रिकाओं घरबंधु, आदिवासी और आदिवासी सकम की भूमिका

अंजु कुमारी*

जब पहली बार झारखंड अलग राज्य की मांग की गयी और इसके लिए आंदोलन की शुरूआत की गयी तो देश या बिहार के अखबारों ने इसे महत्व नहीं दिया था। उस समय आंदोलनकारियों को झारखंड क्षेत्र का अपना अखबार या अपनी पत्रिका की कमी खली थी। उन दिनों रांची से निकलनेवाली मूलतः धार्मिक पत्रिकाघर बंधु ने झारखंड आंदोलन, आदिवासियों की समस्या, उनके मुद्दे को जगह दी और जागृति फैलाने का काम किया। लेकिन घर बंधु की एक सीमा थी। इसलिए आंदोलनकारियों ने आदिवासी नाम से एक ऐसी पत्रिका निकाली, जिसने झारखंड आंदोलन का खुल कर समर्थन किया। यह आंदोलनकारियों का मुख पत्र था। जब जयपाल सिंह झारखंड आंदोलन से जुड़ गये तो, उन्होंने आदिवासी सकम नामक पत्रिका निकाली। जैसे–जैसे आंदोलन आगे बढ़ता गया, गतिविधियां बढ़ीं तो बिहार के कुछ अखबारों (बिहार हेराल्ड) में भी झारखंड आंदोलन को कुछ जगह मिली थी। लेकिन अगर आजादी के पहले की बात करें तो कह सकते हैं किघर बंधु, आदिवासी और आदिवासी सकम ने झारखंड आंदोलन को जन आंदोलन बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

कुंजी शब्द : झारखंड आंदोलन, आदिवासी, घर बंधु, आदिवासी सकम, छोटानागपुर, साइमन कमीशन

झारखंड आंदोलन के आरंभ के दिनों से ही छोटी–छोटी पत्रिकाओं ने बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। आरंभिक दौर (1912–1947) में झारखंड आंदोलन को बड़े दैनिक अखबारों से मदद नहीं मिलती थी। खबरें भी नहीं छपती थीं। उन दिनों झारखंड क्षेत्र से कोई दैनिक अखबार का प्रकाशन नहीं होता था। आंदोलन को छोटी–छोटी पत्रिकाओं से ही मदद मिलती थी। यह देश की आजादी तक चलता रहा। कई पत्रिकाएं निकलीं और बंद भी हुई लेकिन उन्होंने अपना काम किया। आंदोलन के आरंभ होने से लेकर देश की आजादी तकघर बंधु, आदिवासी, आदिवासी सकम जैसी कुछ पत्रिकाओं ने अलग राज्य के समर्थन में जोरदार आवाज बुलंद की थी। मूलतः धार्मिक पत्रिका होने के बावजूद घर बंधु ही आरंभ में आंदोलन को समर्थन देनेवाली एकमात्र पत्रिका थी। बाद में आंदोलन समर्थकों ने अपनी पत्रिका आदिवासी और आदिवासी सकम निकाली, जिससे काफी मदद मिली। आजादी के बाद के दिनों में अबुआ झारखंड, हीरानागपुर, झारखंड टाइम्स, सिंहभूमि एकता, शाल पत्र, झारखंड वार्ता, झारखंड दिशोम, झारखंड दर्शन, छोटानागपुर संदेश, झारखंड खबर, झारखंड ज्योति, जय झारखंड जैसी पत्रिकाओं ने झारखंड

*शोधार्थी, इतिहास विभाग राँची युनिवर्सिटी, राँची (झारखण्ड)

आंदोलन की आवाज को जन–जन तक पहुंचाने का काम किया। झारखंड आंदोलन का इतिहास बताता है कि 1912 में छोटानागपुर उन्नति समाज के बनने से लेकर 1950 के झारखंड पार्टी के निर्माण तक विभिन्न आदिवासी–सदान पत्र पत्रिकाओं ने बड़ी भूमिका निभायी।'[1]

जब पहली बार अलग झारखंड राज्य की मांग उठी थी, उस समय देश में आजादी की भी लड़ाई चल रही थी। बंगाल से अलग होकर बिहार का निर्माण हुआ था। बिहार राज्य के निर्माण के लिए बिहार के अखबारों और पत्र–पत्रिकाओं ने आंदोलन चला रखा था। भले ही बिहार राज्य का गठन 1912 में हुआ था लेकिन इससे 36 साल पहले ही अखबारों ने बिहार राज्य की मांग उठा दी थी। सर्वप्रथम बिहार के एक अखबार मुर्ग–ए–सुलेमा ने 7 फरवरी 1876 के अंक में बिहारियों के लिए अलग बिहार प्रांत का नारा दिया था। कुछ महीने बाद 22 जनवरी 1877 के अपने अंक में समाचार पत्र कासिद ने भी इस मांग का समर्थन करते हुए बंगाल के साथ बिहार के एकीकरण को बिहार के लिए अहितकर बताया'[2]। अलग बिहार बनाने में बिहार के अखबारों (खास कर बिहार बंधु और द बिहार टाइम्स) की भी बड़ी भूमिका थी। इसलिए जब झारखंड राज्य अलग होने की मांग उठी तो इसके लिए पत्र–पत्रिकाओं के समर्थन की जरूरत महसूस की गयी।

घरबंधु

1880 में घरबंधु का प्रकाशन रांची से प्रारंभ हो चुका था। गोस्सनर एवं लेजिकल लूथरेन चर्च इसे प्रकाशित करता था लेकिन इसका उद्देश्य बिल्कुल अलग था। एक अप्रैल, 1898 से रांची से आर्यावर्त का निकल रहा था, जिसके संपादक थे समाजसेवी बालड्डष्ण सहाय। यह साप्ताहिक अखबार था जो नवंबर 1905 तक प्रकाशित होता रहा। तब तक अलग झारखंड राज्य की सीधी मांग भी नहीं उठी थी। जब झारखंड की मांग पहली बार उठी, तब इस आवाज को आगे बढ़ानेवाला, समर्थन देनेवाला कोई अखबार नहीं था, कोई पत्रिका नहीं थी। क्षेत्रीय पहचान की लड़ाई के प्रारंभिक दिनों में इस क्षेत्र का अपना कोई अखबार नहीं था। बिहार की राजधानी पटना, कलकत्ता और दिल्ली के अखबारों से लोग काम चलाते थे। यह मानी हुई बात है कि पटना–दिल्ली के अखबार इस क्षेत्र की जनकांक्षा को अपेक्षित महत्व नहीं देते थे। बल्कि एक हद तक उपहास का भाव उनमें छिपा होता था'[3]।

झारखंड आंदोलन की शुरूआत 1912 में ही हो गयी थी। इसका उल्लेख इतिहासकारों–लेखकों ने किताबों और लेखों में किया है। अगर किसी पत्रिका को आदिवासियों की समस्याएं या उनकी एकता को बनाये रखने या अलग राज्य की मांग उठाने का सबसे पहला श्रेय जाता है तो वह हैघर बंधु। एक अप्रैल, 1912 को बिहार राज्य का गठन होने के तुरंत बाद धार्मिक पत्रिकाघर बंधु ने झारखंड क्षेत्र के लोगों को एकजुट करने, यहां के मुद्दों को उठाना आरंभ कर दिया। इससे संबंधित पत्रों– खबरों को छापना आरंभ कर दिया। जब कोई अखबार साथ नहीं दे रहा था, उन

दिनोंघर बंधु ने यह दायित्व निभाया। घर बंधु का एक मई, 1912 का अंक इसका गवाह है। एक पाठक के पत्र कोघर बंधु ने विस्तार से छापा था। इसे झारखंड राज्य की मांग का पहला संकेत समझा जा सकता है। छपा हुआ पत्र इस प्रकार था–बंगाली, बिहारी और हिंदुस्तान के अन्य सभ्य जाति हैं, जो लोग अपने बीच में इस तरह की वार्षिक सभा स्थापित कर अनेक लाभ उठा रहे हैं। हम ही लोग पीछे पड़े हैं। निश्चय कई एक बातों में एकता नहीं हो सकती, क्योंकि हम भिन्न–भिन्न मंडली के लोग हैं। लेकिन कुछ ऐसी बात है, जिनमें हम एक हो सकते हैं और अपने बीच से अनेक हानिकारक बातों को दूर कर सकते हैं। इस काम में रांची के मुख्य लोगों को आगे होनो निहायत ही दरकार है।[4]

जब छोटनागपुर चैरिटेबल एसासिएशन (छोटानागपुर उपकारी समाज) का गठन हुआ तोघर बंधु ने छोटानागपुर उपकारी समाज शीर्षक से खबर प्रकाशित की थी।1912 में जब बिहार–बंगाल का बंटवारा हुआ तो आज के झारखंडी इलाकों को बिहार के साथ जोड़ दिया गया। बंगाल में इसका तीखा विरोध हुआ जिसकी प्रतिक्रिया रांची में भी हुई। यहां के कुछ उत्साही युवाओं ने 1912 में ही बिहारी नामक बुलेटिन निकाल कर प्रशासन पर बंगाली कर्मचारियों के बोलबाले का विरोध किया'[5]। रांची के चर्च रोड से राय साहेब शरत चंद्र राय ने मैन इन इंडिया' का प्रकाशन आरंभ किया था। 1924 में प मामराज शर्मा ने रांची से छोटानागपुर पत्रिका निकाली थी। इन पत्रों में झारखंड आंदोलन की खबरें नहीं के बराबर होती थी। उन दिनों जो कुछ भी छपता था, वहघर बंधु में ही।

पहली बार आधिकारिक तौर पर झारखंड राज्य की मांग साइमन कमीशन के सामने उठायी गयी थी। कमीशन की टीम 12 दिसंबर,1928 को पटना में थी। छोटानागपुर उन्नति समाज को साइमन कमीशन ने अपनी बात रखने के लिए आमंत्रित किया गया था। साइमन कमीशन को छोटानागपुर उन्नति समाज ने ज्ञापन सौंपा था। झारखंड आंदोलन के इतिहास में यह पहला मौका था, जब किसी संगठन ने आधिकारिक तौर पर झारखंड राज्य का ज्ञापन सौंपा था। यह ज्ञापन उन दिनों छोटानागपुर के हालात को बताता है। साइमन कमीशन से छोटानागपुर उन्नति समाज के प्रतिनिधियों की मुलाकात की छोटी खबर तो कुछ बड़े अखबारों ने छापी थी लेकिन संक्षिप्त तौर पर। घर बंधु ने 15 फरवरी, 1929 के अंक में बड़े विस्तार से साइमन कमीशन से छोटानागपुर उन्नति समाज के प्रतिनिधियों की मुलाकात की खबर प्रकाशित की थी। साइमन कमीशन से मुलाकात करने के लिए छोटानागपुर उन्नति समाज का जो प्रतिनिधिमंडल पटना गया था, उसमें घर बंधु के संपादक भी थे। साइमन कमीशन से मुलाकात करनवालों में वे भी थे। इसलिए उन्हें बातचीत की पूरी जानकारी मिली थी।

घर बंधु ने लिखा था–बिहार सरकार ने छोटानागपुर का रक्षक और पालक होने में अपनी अयोग्यता दिखायी है। फिर छोटानागपुर–संथालपरगना और संबलपुर इन देशों का वर्तमान

बिहार, ओड़िशा प्रदेश के साथ में न जातीय, न देश की आचरणीय रीति–नीति का कोई संबंध है। वरन उक्त देशों के आदि–निवासियों में पारस्परिक संगठन, रीति–नीति, संस्था के प्रबंध, कठिनताएं और दुख के कारण एक सा है और ये सब अब एक ही मंगल और उन्नति के चाहक हैं, क्योंकि ये सब अपनी जातीय जीवन की दशा को पहचान रहे हैं। पटना में यूनिवर्सिटी, कॉलेज और अन्य संस्थाओं के लिए बड़े–बड़े घर और महल बनाये जा रहे हैं और जब छोटानागपुर सिर्फ एक कॉलेज के लिए चिल्लाता है, तो उसे पाने के लिए उसके पास निराशा को छोड़ कर कोई मार्ग नहीं है। इस दिशा में बिहार सरकार का एकमात्र उद्देश्य है कि बिहार खूब तरक्की करे और बेचारा छोटानागपुर मरे। फलतः इस गवर्नमेंट में छोटानागपुर शिक्षा की सीढ़ी में कभी चढ़ नहीं सकता। अतएव प्रार्थना है कि हम आदि–निवासियों के लिए एक अलग प्रदेश के संगठन करने का प्रबंध हो, जिसमें संथालपरगना, छोटानागपुर, जशपुर, सुरगुजा और राजगांगपुर आदि स्टेट मिलायें जायें। यह प्रदेश एक ही गवर्नर के अधीन रहे। यह नया प्रदेश कोई ऐसा कोई छोटा–मोटा स्थान नहीं होगा क्योंकि इस प्रदेश के आदि–निवासी जिलों का क्षेत्रफल 66,600 वर्गमील है और यह इंग्लैंड व वेल्स दोनों से बड़ा है,जिसका वर्गमील 58,388 वर्गमील है।'[6]

एक्टिंग गवर्नर जेम्स डेविड सिफटन को छोटानागपुर उन्नति समाज ने एक अभिनंदन पत्र सौंपा था जिसमें उनके सामने छह मांगें भी रखी गयी थीं। इनमें पहली ही मांग थी अलग प्रांत का गठन करना। एक्टिंग गवर्नर को सौंपे गये अभिनंदन पत्र में कहा गया था–आदि–निवासियों के लिए एक अलग प्रदेश हो, जिसके लिए अलग शासन प्रबंध और कानूनी सभा संगठन हो। जमीन के लिए ऐसी नीति का प्रबंध हो जिसके द्वारा आदि–निवासी प्रजा की आर्थिक उन्नति हो, दीन से दीन खेतिहर भी अपनी इज्जत की रक्षा करना सीखे। आदि–निवासियों को उच्च दर्जे की नौकरियों में जैसे डिप्टी मजिस्ट्रेट, शिक्षा विभाग, पुलिस, मिलिटरी, कृषि विभाग आदि में उचित मौका मिले, आदि–निवासियों के लिए स्कालरशिप की व्यवस्था हो, रांची में डिग्री कॉलेज खुले'[7]। ऐसी खबरों के छपने से लोग यह समझने लग गये थे कि छोटानागपुर–संथालपरगना क्षेत्र और यहां के लोगों के साथ जो अन्याय हो रहा है, उसके खिलाफ घर बंधु पत्रिका लिख रही है। घर बंधु एक धार्मिक पत्रिका थी और उसकी सीमाएं थीं। इसलिए अलग राज्य के आंदोलन की खबरों के लिए एक पत्रिका की जरूरत महसूस की जा रही थी।

आरंभिक दिनों में झारखंड आंदोलन को जन आंदोलन बनाने का काम घर बंधु ने ही किया था। इसने लगातार आदिवासियों की समस्याओं और छोटानागपुर की उपेक्षा का मुद्दा उठाया। साइमन कमीशन को मांग पत्र सौंपने के बाद घर बंधु ने आदिवासी प्रांत की ओर शीर्षक से लगातार लेख लिख कर छोटानागपुर के लोगों को यह बताने का प्रयास किया कि छोटानागपुर की उपेक्षा हो रही है और अलग प्रांत ही इसका समाधान है। खास तौर पर रोजगार के मुद्दे को घर बंधु ने उठाया था और लोगों को यह बताने में सफल रहा था कि एक कॉलेज के लिए रांची

तरस रहा है लेकिन वह नहीं मिल रहा है। घर बंधु ने लोगों के बीच जागृति फैलाने का काम किया था और यह बताया था कि अलग प्रांत के बगैर छोटानागपुर के लोगों का कल्याण नहीं हो सकता। जब जयपाल सिंह झारखंड आंदोलन से जुड़ गये तो जहां भी उनकी सभा होती, घर बंधु के माध्यम से उनके विचारों को लोगों तक पहुंचाया जाता था। बाद में यह दायित्व आदिवासी ने संभाला।

आदिवासी

1933–34 में छोटानागपुर आदिवासी महासभा के तत्वावधान में आदिवासी नामक पाक्षिक पत्रिका का प्रकाशन हुआ जिसके संपादक राय साहब बंदी उरांव और जूलियस तिग्गा थे। यह बेनी माधव प्रेस ,रांची से छपती थी। इसमें आदिवासियों की समस्याओं को प्रमुखता से स्थान दिया जाता था। आदिवासी पत्रिका आंदोलनकारियों द्वारा ही निकाली जाती थी, इसलिए बेबाक होकर इसमें लिखा जाता था। इसके तीखेपन के कारण इसका प्रकाशन भी कुछ साल तक बंद करा दिया गया था। इसे झारखंड आंदोलनकारियों की पहली अपनी पत्रिका कहा जाता है। पूरी आदिवासी पत्रिका ही झारखंड आंदोलन की खबरों से भरी होती थी। इग्नेस कुजूर ने अपनी पुस्तक झारखंड दुमुहाने पर में आदिवासी पत्रिका का उल्लेख किया है। उन्होंने लिखा है–आदिवासी को झारखंडियों का सर्वप्रथम पाक्षिक समाचार पत्र कहा जा सकता है। सभा का नाम उन दिनों आदिवासी महासभा था। यह पाक्षिक समाचार पत्र रांची से प्रकाशित होना आरंभ हुआ था। अप्रैल 1938 से जून 1939 तक यह समाचार पत्र चला। जूलियस तिग्गा और राय साहेब बंदी उरांव इसके संयुक्त संपादक थे। राय साहब उन्नति समाज के दिनों से ही सभा के कर्मठ कार्यकर्ता थे। श्री तिग्गा राभेनशॉ कॉलेज के एक ग्रेजुएट, महासभा के जनरल सेक्रेटरी थे। आदिवासी जागरण में इनकी प्रशंसा घटा कर लिखी नहीं जा सकती।[8]

सितंबर 1938 के घर बंधु में अखबारों–पत्रिकाओं को लेकर एक टिप्पणी छपी थी, जिसका संकेत था कि कैसे झारखंड आंदोलन को एक अपने अखबार या अपनी पत्रिका की कमी खल रही है, उनके मुद्दे सही तरीके से नहीं उठ पा रहे हैं। इसलिए ऐसी स्थिति में जनता को क्या करना चाहिए। प्रत्येक सभ्य और शिक्षित समाज अखबारों की उपयोगिता और आवश्यकता को जानता है और अपना निज अखबार रखता है तथा दूसरों का भी अखबार पढ़ता है। इसलिए तुरंत एक साप्ताहिक पत्र निकालने का प्रयत्न किया जाये। घर बंधु, निष्कलंक या छोटानागपुर दूत पत्रिका इस या ऐसे आंदोलन के लिए काफी नहीं हैं। जब तक निज पत्र नहीं निकाला जाता, लोगों को किसी उपयुक्त पत्र को पढ़ने के लिए उत्साहित करना चाहिए। जिस किसी पत्र में इस आंदोलन के विपक्ष में कोई बात नजर आये, तुरंत उसका प्रतिवाद उस पत्र में और अन्य पत्रों में देना चाहिए। जगह–जगह सभा करके अपनी मांग की आवाज उठानी चाहिए। घर बंधु विशेष

कर धर्म विषयों के लेखों के लिए है। आशा है आदिवासी फिर थोड़े दिनों में अपना चेहरा दिखावेगा'[9]। घर बंधु में इस प्रकार की टिप्पणी अकारण ही नहीं छपी थी। दरअसल सितंबर 1938 के पहले घर बंधु के कई अंकों में आदिवासी प्रांत नाम से लगातार लेख छप रहे थे। इन लेखों का गहरा असर हो रहा था। छोटानागपुर उन्नति समाज को बदल कर आदिवासी महासभा करने की घटना को भी व्यापक कवरेज दिया गया था। इसलिए इस बात की संभावना बनती है कि घर बंधु पर इस बात के लिए दबाव हो कि वह धार्मिक पत्रिका है और धार्मिक पत्रिका की तरह ही निकले।

आदिवासी पत्रिका के प्रकाशन से घर बंधु पर दबाव कम हुआ, क्योंकि अब झारखंड आंदोलन, अलग प्रांत की मांग या आदिवासियों की समस्याओं की खबरें छापने के लिए एक नयी पत्रिका आदिवासी भी थी। इसके बावजूद घर बंधु अपने दायित्व को निभाता रहा। 1938 में छोटानागपुर उन्नति समाज में कुछ और संगठनों को जोड़ कर छोटानागपुर आदिवासी सभा का गठन किया गया। घर बंधु ने इसे छोटानागपुर उन्नति समाज का नया जन्म माना था। बैठक के बारे में घर बंधु ने लिखा था– मई 30 और 31 तारीख को रांची में एक नया तारा का उदय हुआ। सर्वसम्मति से फैसला लिया गया कि अब से लेकर छोटानागपुर के सब आदिवासियों की एक ही सभा होगी और अब तक जितने भी भिन्न–भिन्न राजैनतिक सभाएं थीं, सब छोटानागपुर उन्नति समाज के साथ मिल कर छोटानागपुर आदिवासी सभा बनते हैं। यही सभा पूरे छोटानागपुर के आदिवासियों के हक–हकियत और राजनैतिक बातों में कार्रवाई करेगी। उक्त सभा ने अनेकानेक संकल्पों को सर्वसम्मति से ग्रहण किया है कि वे सरकार के पास उचित ध्यान और कार्रवाई के लिए भेजे जायें। उन संकल्पों में सबसे मुख्य संकल्प यह है कि छोटानागपुर अलग प्रांत बनाया जाये और इस प्रांत में संथालपरगना भी मिलाया जाये'[10]।

जब पहली बार जयपाल सिंह ने जनवरी 1939 में आदिवासी महासभा का नेतृत्व संभाला तो महासभा की पूरी रिपोर्ट आदिवासी में छपी। आदिवासी ने मार्च, 1939 में महासभा विशेषांक निकाला। राय साहेब बंदी उरांव और जुलियस तिग्गा के संयुक्त संपादन में यह ऐतिहासिक अंक निकाला गया था। 76 पृष्ठ का यह इस अंक था। जयपाल सिंह के रांची आगमन, स्वागत और आदिवासी महासभा का नेतृत्व संभालने की जितनी अच्छी जीवंत व विस्तृत रिपोर्ट आदिवासी पत्रिका ने छापी थी, उतनी किसी और पत्रिका से उम्मीद नहीं की जा सकती थी। 19।1।39 को प्रातः काल ही से स्टेशन पर नर–नारियों का जमघट हो चुका था। स्वयंसेविकाओं का चार हजार का दल स्वागत संगीत अलापने में लीन हो गया। सभापति और इस प्रकार देश माता की भक्ति में बेसुध हो शोर आरंभ हुआ कि श्रीमान जयपाल सिंह की जय। हां, एक हजार स्वयंसेविकाओं ने पुष्प मालाओं से हमारे हृदय सम्राट जयपाल के गले में पर्वत लगा दिया। खूब धूम और जय ध्वनि के साथ स्वागत हुआ। हमारे स्वयंसेवक दल ने शाही दलबंदी के साथ उन्हें उनके डेरे में

पहुंचा दिया। अहा, महासभा का पहला दिन पहुंच आया। 65 हजार की भीड़ बड़े तालाब के समीप सभापति के स्वागत को खड़ी थी'[11]।

जयपाल सिंह के आदिवासी महासभा के सभापति बनने के लिए जो प्रस्ताव लाया गया था, उसका समर्थन किया था जूलियस तिग्गा ने, जो आदिवासी पत्रिका के संपादक थे। यह इस बात का संकेत है कि उस महासभा को सफल बनाने और जयपाल सिंह को नेतृत्व सौंपने में आदिवासी पत्रिका की कितनी प्रमुख भूमिका थी। प्रस्ताव आया कि महासभा के कामों को चलाने के लिए कार्यकारिणी से चुना हुआ माननीय महाशय जयपाल सिंह सभापति चुने जायें। बाबू जूलियस तिग्गा ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया'[12]।

21 जनवरी, 1939 को रांची में विशाल जुलूस निकाला गया था, जिसमें लगभग एक लाख लोगों ने भाग लिया था। आदिवासी ने उनका पूरा भाषण मार्च, 1939 के अंक में प्रकाशित किया था। भाषण में जयपाल सिंह ने कहा था–केवल पृथककरण में ही छोटानागपुर का उद्धार है। हम तब तक संतुष्ट नहीं हो सकते, जब तक हमें पूर्ण रूप से अपना अस्तित्व, अपना प्रांत, अपनी सरकार, अपनी शासन पद्धति नहीं मिल जायेगी'[13]। इस तरह दूसरी महासभा की पूरी कार्यवाही आदिवासी पत्रिका के माध्यम से घर–घर पहुंच गयी।

1938 में छोटानागपुर आदिवासी सभा का गठन करने के पहले छोटानागपुर उन्नति समाज का जो महाधिवेशन हुआ था, उसमें भी आदिवासी प्रांत की वकालत की गयी थी। घर बंधु ने आदिवासी प्रांत शीर्षक से विस्तार से वार्षिक अधिवेशन में लिये गये निर्णय के बारे में लिखा था–आदिवासी जाति को जीवित रखने के लिए आदिवासी प्रांत का होना एक ही साधन है। इसके लिए संगठन और आंदोलन की जरूरत है। महासभा के संकल्पों को जानना, उन्हें देहातों में फैलाना, हरेक आदिवासी को जागृत करना, एक–एक आदिवासी का कर्तव्य है। स्मरण रहे कि जब तक दस में दस और सौ में सौ आदिवासी सहमत नहीं हो जाते हैं, तब तक आदिवासी प्रांत हमें मिलनेवाला नहीं है'[14]।

कुछ अन्य भी पत्रिकाएं भी थीं जिनका प्रकाशन भले ही झारखंड के आंदोलनकारी नहीं करते थे लेकिन ऐसी पत्रिकाएं मुद्दों को किसी न किसी तरह से उठाती थीं। ऐसी ही एक पत्रिका थी झारखंड। 1938 के जनवरी में गुमला के साहित्य आश्रम से झारखंड नामक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया गया था। इसके संपादक थे ईश्वरी प्रसाद सिंह। पहले वर्ष के 11वें अंक में झारखंड पत्रिका में इन गरीबों के लिए कौन शीर्षक से एक लेख का प्रकाशन किया गया था। इस लेख में सदानों की समस्या की ओर ध्यान दिलाया गया था। झारखंड पत्रिका ने लिखा–आदिवासी उरांव, मुंडा और सदान लोग भाई–भाई हैं। दोनों की जन्मभूमि यह झारखंड सदा से है। दोनों को यहीं जीना–मरना है। कोई भी किसी के बहकावे में नहीं आये। बहकानेवाले तो स्वार्थ में पड़े हुए हैं। वे नेता बनना चाहते हैं। दूसरों को गिरा कर स्वयं उठना चाहते हैं। हमारे सदान भाई

हों अथवा आदिवासी भाई हों, दोनों से हम प्रार्थना करते हैं कि इस बहकावे में आ कर दंगा–फसाद नहीं कर लें'[15]।

आदिवासी पत्रिका बहुत लंबे समय तक नहीं निकल सकी थी। इसका तेवर काफी आक्रामक था और यही कारण था कि अलग झारखंड की प्रांत की मांग को इसने बहुत तेजी से और प्रभावशाली तरीके से लोगों तक पहुंचाया था। इसके संपादक को भले ही जेल जाना पड़ा लेकिन इसका तेवर नहीं बदला। आदिवासी पत्रिका निडर पत्रिका थी और इसका मकसद स्पष्ट था। इसने आदिवासी महासभा की बैठकों को सफल बनाने का काम किया था। खास कर जब जयपाल सिंह की पहली सभा रांची में हो रही थी। अपनी आक्रामक रिपोर्टिंग के बल पर आदिवासी झारखंड के लोगों को यह बताने में सफल रहा था कि बिहार के साथ रह कर आदिवासियों का भला नहीं हो सकता। महासभा का 1939 का आदिवासी महासभा विशेषांक एक ऐतिहासिक अंक था जिसने महासभा की कार्यवाहियों को जन–जन तक पहुंचाया था। जयपाल सिंह के विचारों को जन–जन तक पहुंचाने में इसका खास योगदान रहा था। इसके संपादक जूलियस एक्का तो आदिवासी महासभा के पदाधिकारी भी थे और जयपाल सिंह को अध्यक्ष बनाने में उनकी भूमिका रही थी।

आदिवासी सकम

1939 में आदिवासी पाक्षिक के बंद होने से झारखंड आंदोलन को प्रचारित होने में परेशानी हो रही थी। झारखंड आंदोलन को बढ़ावा देने के लिए खुद जयपाल सिंह ने 6 जुलाई, 1940 को जमशेदपुर से एक साप्ताहिक अखबार आदिवासी सकम का प्रकाशन शुरू किया। उन्होंने आत्मकथा में लिखा है–1940 में मैंने महसूस किया कि पेन, तलवार से ज्यादा धारदार हो सकता है। मैंने अंगरेजी, हिंदी और मुंडारी में चार पृष्ठों का आदिवासी सकम का प्रकाशन आरंभ किया। अधिकांश जगह अंगरेजी की सामग्रियों से भरी होती थी। मेरी मातृभाषा मुंडारी थी। मैंने दो हजार कॉपियों से शुरूआत की। पांच सौ जमशेदपुर और रांची तथा बाकी 1500 गांवों के लिए। मुफ्त में इसे बांटा जाता था। मुझे आदिवासी सकम के रजिस्ट्रेशन या ग्राहक बनाने की परवाह नहीं थी। मैंने आंकलन किया था कि हर गांव के लिए एक पत्रिका पर्याप्त है। लगभग पूरा अंक मैं खुद लिखता था जिसमें कई दिनों का समय लगता था। छह माह के भीतर ही इसकी प्रसार संख्या पांच हजार तक पहुंच गयी'[16]।

जितने दिनों तक आदिवासी सकम चला, झारखंड आंदोलन और आदिवासियों को जगानेवाले लेख या खबरें प्रमुखता से छपती रही। आदिवासी सकम ने रांची और सिंहभूम जिले में झारखंड आंदोलन को आगे बढ़ाने में बहुत सहयोग किया। इसकी खासियत थी कि यह पत्रिका मुंडारी में भी निकलती थी। रांची–खूंटी और सिंहभूम के बड़े इलाके में मुंडाओं की अच्छी आबादी रही

है और उन दिनों उनमें से अधिकांश हिंदी नहीं जानते थे। मुंडारी में आदिवासी सकम निकालने से जयपाल सिंह की बात आसानी से मुंडाओं तक पहुंची थी और आंदोलन तेज हुआ था।

वर्ष 1944 में जयपाल सिंह के सहयोगी प्रो जेम्स हेवर्ड ने अलग प्रांत आंदोलन को बल प्रदान करने के लिए हजारीबाग में झारखंड न्यूज नाम से एक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया गया था। वह हिंदी और अंगरेजी में छपती थी'[17]। बाद में इस अखबार को रांची लाया गया। यह अखबार आदिवासियों की खबरों से भरा होता था। डेढ़ साल तक चलने के बाद यह अखबार बंद हो गया। आजादी के बाद तो अनेक छोटी–छोटी पत्रिकाएं झारखंड आंदोलन के समर्थन में निकलने लगी। दैनिक अखबारों में भी आंदोलन की खबरों को प्रमुखता मिलने लगी थी। लेकिन आरंभ के दिनों में घर बंधु, आदिवासी, आदिवासी सकम जैसी पत्रिकाओं ने ही मोरचा संभाला था।

आजादी के पहले झारखंड क्षेत्र से निकलनेवाली पत्रिकाओं की भूमिका का अध्ययन बताता है कि अगर घर बंधु, आदिवासी और आदिवासी सकम जैसी पत्रिकाएं नहीं होती तो झारखंड के लिए जन मानस बनाने का काम बहुत ही मुश्किल होता। तब बिहार का कोई अखबार झारखंड आंदोलन के पक्ष में खड़ा ही नहीं था। खबरें नहीं छपती थीं। छोटानागपुर की कब्सी उपेक्षा हो रही है, इसकी कोई खबर पटना के अखबारों में नहीं छपती थी। घर बंधु ने धीरे–धीरे और संयमित तरीके से झारखंड की उपेक्षा का सवाल उठाना आरंभ किया था। बाद में इसने लेखों के जरिये छोटानागपुर के लोगों को यह बताने का प्रयास किया कि अगर आदिवासियों का कल्याण–हक चाहिए तो अलग राज्य ही एकमात्र विकल्प है। अगर घर बंधु में भी खबरें नहीं छपती तो साइमन कमीशन को अलग राज्य की मांग को लेकर दिये गये ज्ञापन की भी जानकारी लोगों को नहीं हो पाती। साइमन कमीशन को जो ज्ञापन सौंपा गया था, वह आज कहीं उपलब्ध नहीं है लेकिन अगर विस्तार से किसी पत्रिका में उस ज्ञापन की चर्चा है तो सिर्फ घर बंधु में ही है। घर बंधु ने झारखंड आंदोलन को आगे बढ़ाने, लोगों में जागृति फैलाने का काम आरंभ कर दिया था और उसे गति दी थी आदिवासी पत्रिका ने। पहली पत्रिका जो झारखंड आंदोलनकारी ही निकालते थे, इसलिए किसी से दबने का सवाल ही नहीं था। खुल कर यह पत्रिका लिखती थी। बाद में आदिवासी सकम ने झारखंड आंदोलन को आगे बढ़ाने का काम किया था।

आरंभ के दिनों में इन छोटी–छोटी लेकिन झारखंड आंदोलन के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण पत्रिकाओं ने जनमानस बनाने का काम किया। इसका असर आजादी के बाद तब देखने को मिला जब पहली बार लोकसभा–विधानसभा के चुनाव हुए। इन चुनावों में झारखंड क्षेत्र में अलग राज्य को प्रमुख मुद्दा बना कर मैदान में उतरी झारखंड पार्टी को बड़ी सफलता मिली थी। इन पत्रिकाओं ने समय–समय पर जिस तरीके से झारखंड आंदोलन के समर्थन में माहौल बनाया था, यह उसी का फल था। बाद के दिनों में पटना, दिल्ली और कोलकाता के अखबारों को भी झारखंड आंदोलन को महत्व देने के लिए बाध्य होना पड़ा। अगर घर बंधु, आदिवासी,आदिवासी सकम

जैसी पत्रिकाओं ने झारखंड आंदोलन का महत्व नहीं दिया होता, जनमानस बनाने का काम नहीं किया होता, तो यह आंदोलन खड़ा ही नहीं हो पाता।[17]

संदर्भ सूची

1. वंदना टेटे, अखड़ा, रांची, वर्ष 11, अंक एक, मार्च–मई 2017, पृष्ठ 3।
2. नीहार नंदन प्रसाद सिंह, आंदोलन की तैयारी, बिहार सृजन के शताब्दी वर्ष, बिहार राज्य अभिलेखागार निदेशालय, पटना, 2012, पृष्ठ 24।
3. मिथिलेश कुमार सिंह, बाखबर–बेखबर, दिशा इंटरनेशनल पब्लिसिंग हाउस, दिल्ली, 2016, पृष्ठ 225।
4. घर बंधु, जीइएल मिशन प्रेस, रांची, 1 मई, 1912।
5. मिथिलेश कुमार सिंह, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 60।
6. घर बंधु, पूर्वोद्धृत, फरवरी, 1929,पृष्ठ 23।
7. घर बंधु, पूर्वोद्धृत, अगस्त, 1929।
8. इग्नेस कुजूर झारखंड दोमुहाने पर, सत्यभारती, रांची, पृष्ठ 130–131।
9. घर बंधु , जीइएल मिशन प्रेस, रांची, सितंबर 1938, पृष्ठ 150।
10. घर बंधु, पूर्वोद्धृत, मई 1938, पृष्ठ 74।
11. आदिवासी (महासभा विशेषांक), रांची, मार्च 1939, पृष्ठ 12।
12. वही, पृष्ठ 17।
13. वही, पृष्ठ 38।
14. घर बंधु, जीइएल मिशन प्रेस, रांची, मई 1938, पृष्ठ 76।
15. झारखंड, साहित्य आश्रम गुमला, वर्ष 1, अंक 11, पृष्ठ 9।
16. लो बीर सेंदरा, ऐन आटोबायोग्राफी मरांग गोमके जयपाल सिंह, न्यूट्रल पब्लिसिंग हाउस लिमिटेड, रांची, 2004, पृष्ठ 115–116।
17. बलवीर दत्त, प्रभात खबर, 14 अगस्त, 2016।

झारखण्ड के लोकगीतों में नदियाँ

अमित राज*

सारांश

जनजातीय समाज में मनुष्य का जीवन प्रकृति के साथ अत्यंत निकटता से जुड़ा है। पहाड़ के उच्च शिखर, पेड़–पौधे, फूल–पत्तियाँ, नदी–नाले और जंगल में रहने वाले सभी जीव–जन्तुओं के साथ मनुष्य के सम्बन्धों की रीति उसके पैदा होने से ही चलती आयी है। समय–समय पर मानव ने प्रकृति के साथ अपने इस अप्रतिम साहचर्य को अपने गीत–संगीत और रागों में भी उजागर करने का प्रयास किया है। ये गीत–संगीत केवल मनोरंजन के साधन नहीं अपितु पूरी जीवनशैली के प्रतिबिम्ब हैं। इन समाजों के अंतःसंबंधों की धूरी है लोकगीत। सामान्यतः लोक में प्रचलित, लोक द्वारा रचित एवं लोक के लिए लिखे गए गीतों को लोकगीत कहा जाता है। लोकगीत झारखण्ड की सांस्कृतिक पहचान है। झारखण्ड के पठारी भागों में वास करने वाले संथाल, मुण्डा, उराँव, पहाड़िया, हो एवं खड़िया आदि जनजातियाँ प्रकृति से गहराई से जुड़ी हुई हैं। उन्होंने प्रकृति के नाना रूपों को आत्मसात किया। प्रकृति से प्राप्त साहचर्य और अनुभवों को जब उन्होंने अपनी लय में पिरोया तो उस संगीत से लोकगीतों का जन्म हुआ। यहाँ के लोकगीतों में मानों वन्य–प्रकृति एवं नदियों की सस्वर ध्वनियाँ गूँजती है। लोक कवियों ने भी अपने लोकगीतों में नदियों के महत्त्व को स्वीकारा है क्योंकि इस जनजाति बाहुल्य राज्य के लोगों का अनूठा जीवन और उनके विविधतापरक रीति–रिवाज आज भी जंगलों और नदियों के आस–पास ही सम्पन्न होते हैं।

कुंजी शब्द : झारखण्ड, लोकगीत, नदी, जनजाति

भूमिका

झारखण्ड राज्य को जैव विविधता, सम्पन्न संस्कृति और ऐतिहासिक धरोहर का अपरिमित वरदान मिला है। यहाँ प्राकृतिक सौंदर्य है, सांस्कृतिक साक्ष्य भी है और ऐतिहासिक धरोहरें भी हैं। धार्मिक स्थलों की श्रृंखला है, कला संस्कृति है और समृद्ध इतिहास भी है। इस आदिकालीन धरती को प्राणवान बनाने के लिए अनेक नदियाँ भी हैं। दामोदर, कोयल, स्वर्णरेखा, बराकर, मयूराक्षी, अजय, शंख, गुमानी आदि नदियाँ अपने जल एवं बहाव से प्रकृति एवं प्राणियों में प्राण का संचार करती हैं। कल–कल करती ये नदियाँ–सरितायें इसके भू–भाग को सदा सींचती रहती

*इतिहास विभाग, राँची युनिवर्सिटी, राँची (झारखण्ड)

हैं। ये नदियाँ कभी चट्टानों में अठखेलियाँ करतीं, कभी घने वनों में आच्छादित इलाकों में धँसती और कभी मैदानी भागों से बहती आगे बढ़ती हैं। इस जनजाति बाहुल्य राज्य के लोगों का अनूठा जीवन और उनके विविधतापरक रीतिरिवाज आज भी जंगलों, पहाड़ों और नदियों के आस–पास ही सम्पन्न होते हैं। अपनी माटी से जुड़े रहना उनकी संस्कृति है। नदियों के करीब रहना उनके मन को भाता है। जंगलों में रहना और पेड़ों से प्रेम रखना उनका संस्कार है। उनका दैनिक जीवन–व्यवहार कुदरत के विभिन्न अवयवों के साथ हैं। ये अवयव हैं– जल, जंगल और जमीन। जल से ही जंगल–जमीन की उपयोगिता है और यहाँ की जंल का मुख्य स्रोत नदियाँ हैं। इसलिए यहाँ के लोगों ने अपने लोकगीत–संगीत में नदियों के महत्व को स्वीकारा है। वन–पर्वत, नृत्य–संगीत तथा उमंग और मस्ती की पृष्ठभूमि के बिना आदिवासी जीवन का चित्र भरपूर नहीं उभरता और सफेद दीवार पर उजली रेखाओं के समान निर्जीव जान पड़ता है।[1] राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने कहा था कि लोकगीतों में धरती गाती है, पर्वत गाते हैं, नदियाँ गाती हैं, फसलें गाती हैं। उत्सव, मेले और अन्य अवसरों पर मधुर कंठों में लोक समूह लोकगीत गाते हैं।

लोकगीतः जीवन पद्धति और सांस्कृतिक धारा का दर्पण

झारखण्ड के आदिवासियों के लोकगीत उनके जीवन पद्धति और सांस्कृतिक धारा की निरंतरता का दर्पण है। वैसे भी मुण्डारी में कहावत है–''सेन गी सुसुन, काजी गी दुरंग, डूरी गी दुमंग'' अर्थात् उनका चलना ही नृत्य है, बोलना ही गीत है और शरीर ही मांदर है।[2] यही आदिवासी जीवन दर्शन है। इनका दिन कठिन श्रम में खेत–खलिहानों, नदियों, जंगलों–पहाड़ों में बीत जाता है। एकांत हो या समूह इनका गीत–संगीत कभी नहीं छूटता। तभी तो कहते हैं झारखण्ड में ''जेके गीत से प्रीत नइ सेकर बात कर थीत नइ।'' अर्थात् जिसे संगीत से प्रेम नहीं उसकी बातों का भरोसा नहीं।[3] सरल जनजाति समाज ने नैसर्गिक रूप से अपने सुख–दुःख, कटु–मधु अनुभवों, सपनों एवं आकांक्षाओं को शब्द रूप दिए। यहाँ की जनजनातियों की मानसिकता की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति उनके संगीत में होती है। यद्यपि निरक्षर जनजातियों से कल्पना की ऊँची उड़ान की अपेक्षा नहीं की जा सकती। उनके चरित्र की सही प्रतिबिम्ब उनके गीतों में परिलक्षित होता है। उनका संगीत उनकी आंतरिक संवेदनाओं का दर्पण तो है ही, उनके बाह्य परिवेश को भी चित्रित करता है।[4]

झारखण्डी संस्कृति के अभिन्न अंगः गीत तथा नृत्य

झारखण्डी संगीत के कितने दीवाने होते हैं इन गीतों से स्वतः पता चल जाता है–''मांदर किनलों दादा, जनी किनल नियर लागेला। मांदर फूटलों दादा जनी मोरल लखे लागेला।'' अर्थात् मांदर खरीदता है तो पत्नी खरीदने का आनंद पाता है और मांदर फूटने पर पत्नी वियोग सा दुख

पाता है।[5] संगीत तो अमृत वर्षा है उसमें झारखण्डी पूरी तरह से भींग जाने को उतावले रहते हैं। जो समाज जितना अच्छा गा, बजा और नाच सकता है उतना ही वह सभ्य संस्कृति का माना जा सकता है। राज्य के पठारी भागों में वास करने वाले संथाल, मुण्डा, उराँव, पहाड़िया, हो एवं खड़िया आदि जनजातियाँ प्रकृति से गहरी रूप से जुड़ी हुई हैं। प्रकृति से प्राप्त साहचर्य और अनुभवों को जब उन्होंने अपनी लय में पिरोया तो उस संगीत से लोकगीतों का जन्म हुआ। हर्ष–विषाद, सुख–दुख, आकर्षक, आनंद, उत्कंठा, वेदना, सुनहरे अतीत की याद, जातीय आदर्श और संस्कृति के पालन का आह्वान आदि जनजातियों के गीतों के मुख्य विषय होते हैं। लोकगीत वृहद् स्तर पर जनजातियों के नाम पर ही रखे गये हैं। जैसेः– मुण्डारी गीत, संथाली गीत, उराँव गीत, हो गीत, खड़िया गीत आदि। संथालों में दोड़, बाहा, सिंगराई, लागड़े, पाता, सोहराय, बुवांग, नटवा, आसाढ़िया, रोपनी, रिंजा काराम, गोलवारी, मतवार, डाहार, मातवार, रिन्जा, सोलावारी आदि लोकगीत हैं। मुण्डा, उरांव, हो में करमा, जतरा, जादूर, गेना, जरगा आदि लोकगीत हैं।[6] नागपुरी लोकगीतो में झूमर, भिनसरिया, अधरतिया, पहिल संझिया, बिहनीया, डमकच, संस्कार गीत, उदासी, जसपुरीया अंगनई आदि प्रमुख हैं। इनके लोकगीतों में संस्कारगीत, गाथागीत, पर्वगीत, ऋतुगीत, प्रकृतिगीत, पेशागीत, जातीयगीत आदि प्रमुख है। इसलिए यहाँ के लोकगीतों में वन्य–प्रकृति एवं नदियों की सस्वर ध्वनियाँ गूँजती है।

संथाली लोकगीतों में 'गांग नाई' (गंगा नदी), सुड़ा नाई (सोन नदी), दामोदर नदी, स्वर्णरेखा नदी, खरकाई नदी, कोसी नदी, कोयल नदी आदि नदियों का नाम विविध गीतों में बारम्बार आती है। नागपुरी लोकगीतो में भी गंगा नदी, बाला नदी, स्वर्णरेखा नदी, शंख नदी, काँची नदी आदि का उल्लेख मिलता है। मुण्डा, उराँव, हो, खोरठा लोकगीतों में भी नदियों का बड़ी सुंदर उपमाओं और मनोहर रूपकों के साथ प्रयोग किया गया है, जो दृश्य के रूप–विधान में चार चाँद लगाते हैं।

जीवन-मृत्यु सम्बन्धी दार्शनिक विषयों के लोकगीत तथा नदियाँ

संथाल समाज में अस्थि का विर्सजन किसी निश्चित नदी के निश्चित घाट पर किया जाता है। भारत में संथाल अपना प्राचीन निवास स्थान गंगा के उत्तर या उत्तर–पश्चिम तथा बाद में गंगा के दक्षिण–पश्चिम, बंगाल के मिदनापुर एवं झारखण्ड के हजारीबाग के बीच में लम्बे अरसे से रहने से उस क्षेत्र के गंगा, दामोदर, सोन, खड़कई आदि नदियों में अस्थि विसर्जन करने की परम्परा है, जिसे नायगाड़ा या जाङबाहा कहा गया है। जाङबाहा को पहले गंगा, दामोदर, सोन आदि नदियों के गाया घाट, तिरियो घाट, तेलकुपी घाट, बारनी घाट, हाटकुंडा घाट, बांडा घाट एवं दामालिया घाट में विसर्जन किया जाता था। लेकिन आजकल लोग अपनी सुविधानुसार अन्य कई नदियों में प्रवाहित करते हैं। जैसे खड़कई नदी के कुमड़ा, जामते घाट, वैतरणी नदी के तीसरी घाट, स्वर्णरेखा नदी के दिगड़ी घाट आदि हैं।

इस संस्कार का मुख्य उद्देश्य अपने पुराने मूल जन्म स्थान तक मरने के बाद भी पहुँच जाना है। यही तो सृष्टि का चक्र है।

गीत :–

बाबु जा, कुंकाल चुकाक् रेम दोहो लिदिञ,

बाबु जा, धीरी तेदोम तेन लिदिञ दो

बाबु जा, इदी किदिञ दोम तेल कुपी गाया घाट ते,

बाबु जा, गंगा ताला रेम जाति तालाञ दो।[7]

भावार्थ :– इस गीत में भी संथालों का नदियों के प्रति धार्मिक महत्व को दर्शाते हुए कहा गया है कि मृत आत्मा की अस्थियों को गंगा, दामोदर, सोन आदि नदियों के गाय घाट, तिरियों घाट, तेलकुपी घाट जैसे पवित्र घाटों में विसर्जित किया गया है। इसका मुख्य उद्देश्य अपने पुराने मूल जन्म स्थान तक मरने के बाद भी पहुँच जाना है।

संथाल पहले से अपने आप को खेरवार वंश का मानते हैं। वे अपने को भारतवर्ष में पश्चिमोत्तर भाग से आये हुए मानते हैं। इसलिए झारखण्ड, बिहार, पश्चिम बंगाल एवं उड़िसा के पार्श्ववर्ती क्षेत्र के संथाल पश्चिमोत्तर के दामोदर, गंगा, सोन आदि नदी में अस्थि विर्सजन करते हैं जो नीचे वर्णित लोकगीत में अधिक स्पष्ट होता हैः–

सेदाय दोबोन ताहेंकान

पुछिम मा कोंडरेबोन ताहेंकान दो – 2

पुछिम मा कोंड खोनाक् तुडुक कोमा को,

तुडुक कोमा को लागा लेद् बोन –2

ओने उन जोखान गे खेरवाल वंशों,

खेरवाल वंशों रोड़ लेद् दो, रोड़ लेद् दो

मासे नायगाडा तेहेञ कार दिन, तेहेञ कार दिन

तेहेञ कार दिन आंजेदोक् में,

नायगाडा दोले पारोम चालाक्

जाहाँ तिसोक् कोरे गुजुक–गुरूक् कोरे

गोज् काते रेहों ले सेटोरोक् गे नायगाडा

नायगाडा दोले सेटेरोक् गेया।[8]

भावार्थ :– संथाल के वंशज जो खेरवार समूह के थे, वे आर्यों से बचकर भागने के क्रम में नदी के तट पर पहुँचकर नदी पार करने में कठिनाई को देखते हुए वे नदी से विनम्र भाव से

अनुरोध करते हैं और कहते हैं कि हे माता आज तुम कुछ देर के लिए अपनी तीव्र प्रवाह को धीमी कर दो ताकि हमलोग सुगमतापूर्वक पार कर कपटी आर्यों के जुल्म से छुटकारा पा सकें। तुम्हारे इस अमूल्य योगदान के बदले में हम खेरवार वंशज के लोग न सिर्फ जीवित रहते पूजा अर्चना करेंगे बल्कि मरने के बाद भी हमारी अस्थियों को नदियों में विसर्जित करते रहेगें। इसीलिए संथाल जनजाति अपने निवास स्थान के इर्द–गिर्द नदियों को खासकर दामोदर, सोन, गंगा, स्वर्णरेखा, खड़कई को पवित्र नदियाँ मानते हैं।

धार्मिक-सामाजिक समारोहों में गाए जाने वाले लोकगीतों में नदियाँ

संथाल समाज में कोई सार्वजनिक पूजा–अनुष्ठान के बाद पाता नृत्य गीत की समाप्ति के अवसर पर पाता झीका संपन्न किया जाता है। एक पाता झीका गीत में नदी पार करने का दृश्य का वर्णन किया है। गीत इस प्रकार हैः–

दरा–हरा घाट रे,
रूक्मणी माची हे बायठाल
सुरू सुरू पाताल बाड़ी
शिशु छोड़ा लावड़िया
कारी दारहा रे ढोंगा डुबी गेल

भावार्थ :– हरा–हरा नदी के घाट पर रूक्मणी मचिया पर बैठी हुई है। वह यह देख रही है कि एक शिशु युवक पतली–पतली पाताल बाड़ी से नाव को खेव रहा है कि उतने में ही उसकी नाव 'कारी दह' नामक खाई की गहरी पानी में डुब गया।

गीत :–

गड़ जपः रे प्रभु दुबकन
दो बेदो दो
अएः लोते कपजि सनतन
दो बेदो दो।

इस गीत में प्रभु श्रीकृण के बारे में बताया गया है कि नदी के किनारे प्रभु (कृण) बैठे हैं, चलो, जल्दी चलें। उनसे बात करने की इच्छा होती है, चलों, जल्दी चलें।

गीत :–

गंगा यमुना दुइयो संग ही, दुइयो संग ही
सेइयो बीच मण्डप एक छारु अवध पतिक अबटन

सोने के जाजम झारी बिछावलै रे बिछावलै

तहाँ आजा राउर के विजये कराहु अवध पतिक अबटन

अब इ सुख देखन आउ, अवध पतिक अबटन

सोने के जाजम झारी बिछावलै रे बिछावलै

तहाँ आजा राउर के विजये कराहु अवध पतिक अबटन

अब इ यज्ञ देखन आउ, अवध पतिक अबटन

अब इ सुख देखन आउ, अवध पतिक अबटन।[9]

यह विवाह गीत है। जिसका विवाह होता है उसे मण्डप पर बैठाकर उबटन का नेग किया जाता है। यह विवाह के पहले का एक आवश्यक नेग है। इस उबटन गीत में भी गंगा–यमुना नदियों की वन्दना की गयी है कि विवाह निर्विध्न हो।

मुण्डाओं के लोकगीतों में नदियाँ

अगर झारखण्ड की मुण्डा जनजाति की बात की जाए तो ये प्रकृति की मनोहर रंगस्थली में निवास करते हैं। हरियाली और फूलों से भरे हुए जंगल, रहस्यमय गुफाओं से भरे हुए पहाड़, कलकल गाती हुइ नदियाँ, प्राणों में उन्माद भरने वाली हवाएँ और मधुर स्वरों से जंगल को गुंजित रखनेवाले पंछी, यही मनोहर चित्रसारी मुण्डाओं की दुनिया है। जंगल के एकान्त और सूनापन में भी ये अपने को कभी अकेला नहीं पाते। उनके मन की लहरें कहीं भी किनारा पा जाती है। जो सूनापन जीवन का अभिशाप समझा जाता है, वह मुण्डाओं के लिए वरदान बन जाता है। जंगल के वातावरण का सूना एकान्त मुण्डाओं के लिए भावों का उद्दीपक बन जाता है। जैसे एकान्त की सूनी राह में राही के गीत ही सहारा बन जाते हैं, वैसे ही एकान्त मुण्डा कि कंठों में स्वर का सृजन करता है। नदियों का किनारा, कोई सूनी चट्टान, एकान्त खेत, सुनसान रास्ता ये ऐसे वातावरण प्रस्तुत कर देते हैं, जिनसे गीतों का

प्रस्फुटित होना स्वाभाविक है। इनकी जिन्दगी को छूकर चलने वाला कोई भी गीत–संगीत नदियों से अछूता नहीं है। नदियों की आत्मीयता इनके गीतों में सब जगह दिखाई पड़ती है। मुण्डारी–गीतों में नदियों का बड़ी सुन्दर उपमाओं का प्रयोग किया गया है और वैसे ही उनके मनोहर रूपकों का भी, जो दृश्य के रूप–विधान में चार चाँद लगा देते हैं।

गीत :–

मरङ–गाड दों गुल गुलेअ, हुड़िङ् गड़ दो लेवे लेले।[10]

इस गीत का आशय है कि बड़ी नदी उफनाई हुई है, छोटी नदी लबालब भरी हुई है।

गीत :–

मरङ–गाड़ चिरपी लेक मइनम–बिजिर मइन।

नुड़िङ गड़ नएर लेक मइनम–विअन बोएओन मइन।

इस गीत को आशय है कि बड़ी नदी के चिरपी (मछली–विशेष) के समान बेटी, तुम फुदकती हो। हे बेटी(तुम) छोटी नदी की नयरा(एक मछली) के समान उछलती हो।

गीत :–

बुरु रेदो संङगेल मइन
निरे मइन निरेमे
कञिच गड़ होएओ दुदुगर
नोजोर् मइन होजोरे में।
निरे मइन निरे में
नेङ्गम ओड़ः लो तन,
नोजोर मइन होजोरे में
नपुम् रोसोम् बल तन
नेङगम् ओड़ः ल तन रे
नोर–नोरम नकिः सुपिद
नपुम होसोम बलेतन् रे
डरे–डरेम् नुदुम पएल[11]

इस गीत में कहा गया है कि पहाड़ पर आग(जल रही) है, भागो बेटी, भागो! काँची नदी में आँधी (आ रही) है, भागो बेटी, भागो! भागो बेटी, भागो! तुम्हारी माँ का घर जल रहा है, भागो बेटी, भागो! तुम्हारे बाप का घर आँधी उड़ा रही है।

गीत :–

गंगा तल चिरे समुंदर तल
गेलेबर गोसाई को दुबकन
गंगा तल चिरे समुंदर तल
हिसि बर बमणे को जारूअकन
चि रे गतिअ को चिकतन
गेलेबर गोसाई को दुबकन
मेरे रे सङञ को रिकतन

हिसि बर बमणे को जारूअकन
कचि गतिञरे को उदुबदमेअ
सिद रेन गातिमें को हरि बोलतन
कचि सङञ रे को चुण्डुलद मेअ
तयोमरेन सङमेको रामे राम तन[12]

इस गीत में भी गंगा नदी की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि गंगा के बीच या समुद्र के बीच बारह गोसाईं बैठे हुए हैं। गंगा के बीच या समुद्र के बीच बाईस ब्राह्मण पहुँच गए हैं। वे बैठे हुए बारह गोसाईं, हे मित्र, क्या कर रहे हैं। वे आये हुए, ब्राह्मण(बाईस), हे साथी, क्या कर रहे है! क्या तुमको नहीं बताया गया है (कि) वे तुम्हारे पहले के साथी की अंत्येष्टि–क्रिया कर रहे हैं। क्या तुमको नहीं बताया गया है (कि) वे तुम्हारे पीछे के संगी का अंतिम संस्कार कर रहे हैं।

गीत :–

डुब रे मनि सुनुम हो
गंग ते रेड़नतिः
थाड़ी रे रइ बा ससङ
समुन्दर ते बुअलेन ति।

यहाँ भी गंगा नदी का जिक्र करते हुए कहा गया है कि कटोरे में सरसों का तेल (लेकर) गंगा नहाने गई। थाली में पीली हल्दी (लेकर) समुद्र में तैरने गई।

इन लोकगीतों से पता चलता है कि इनकी चिरसंगिनी नदियों की आत्मीयता इनके गीतों मे सब जगह दिखाई पड़ती है। नदियों के साथ मुण्डा का आत्मीय भाव है, ये उसके सहचर हैं, इनके रात–दिन के साथी हैं।

गीत :–

गड़ गेन रे कन्कि
चोके चि बरूण्डम लोडोतन
नइ पड़ रे बक
चोके चि बरूण्डम लोडोतन

इस मुण्डारी लोकगीत में नदी का वर्णन करते हुए कहा गया है कि नदी के किनारे, हे कन्कि पक्षी, तुम मेढ़की या मेढ़क का घात लगाये हो। नाले के पास हे कन्कि पक्षी, तुम मेढ़की या मेढ़क का घात लगाये हो।

नागपुरी लोकगीतों में नदियाँ

नागपुरी भाषी क्षेत्र की बात करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि मानो प्रकृति ने स्वयं अपने हाथों से इसे बनाया है, सजाया और संवारा है। कलकल करती नदियाँ, ऊँची–नीची पहाड़ियाँ, अति रमणीय जलप्रपात तथा चारों ओर फैले हुए जंगल एवं विविध प्रकार के पेड़–पौधे – यही तो इस क्षेत्र के प्राण हैं और इसी रत्नगर्भा भूमि ने प्रकृति गीतों को जन्म दिया है। नागपुरी लोकगीतों के द्वारा जनजीवन के सभी पक्षों के दर्शन होते हैं। इन लोकगीतों में भी गंगा, दामोदर, शंख, कांची, खरकई आदि नदियों की सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परंपरा की अभिव्यक्ति निहित है।

एक लोकगीत में ननद और भाभी की चुहल होती है जहाँ दोनों गंगा और यमुना नदी के किनारे मिलती हैं। गीत इस प्रकार है :–

ननदी हो भउजी, दुईयो संग जोरीया, ना हायरे,
दुईयो रे मिली, गंगा जमुना पाईन भरे .....।।1।।
तोंहे जे लेह ननद; सोने के घईलवा, ना हायरे
हमे जे लेवब, रुपा के घईला डोईर बासन .....।।2।।

इस गीत का आशय है कि ननद और भाभी दोनों एक साथ जोड़ा के गंगा और यमुना नदी के पास मिलती हैं। भाभी ननद से कहती हैं कि तुम सोना का घड़ा ली, हम चाँदी का घड़ा लेंगे।

एक प्रसिद्ध नागपुरी लोकगीत है जिसमें गंगा–यमुना नदी की अविरल एवं निर्मल धारा समाहित है :–

आम्बा मंजरे मधु मातल हो
रे तईसन पिया मातल जाय, रे तईसन पिया .....।।1।।
गंगा जमुना नदी बहल हो
रे तईसन पिया बहल जाय, रे तईसन पिया .....।।2।।
नाग नागिन कान्चुर छोड़ल
रे तईसन पिया छोड़ल जाय, रे तईसन पिया .....।।3।।
आपने ना आवंय चिठ्ठी लीख भेंजय हो
रे मोर पिया भेलंय कठिन कठोर, रे मोर पिया .....।।4।।
तुलसी पतईया चिठ्ठी लीख भेजु हो
रे जल्दी से आबंय नंद लाल, रे भाई जलदी .....।।5।।

इस गीत में एक पत्नी अपने पति को याद करके कहती है कि आम में मंजर, मधु में मिठास हो गया उसी तरह प्रिये भी मिठास हो गए है। गंगा यमुना नदी बह रही है, उसी तरह प्रिये भी बह रहे हैं। नाग नागिन अपनी केंचुली छोड़ते है, उसी तरह प्रिये भी छूट रहे हैं। आप नहीं आये तो चिट्ठी लिख के भेजिए, मेरे प्रिये आप कठोर हो गए हैं। तुलसी के पत्ते में चिट्ठी लिख भेजिए,

जल्दी से आये नंदलाल रे भाई जल्दी .....।

एक अन्य नागपुरी गीत है जिसमें नदी का वर्णन है–

नदिया किनारे तीरे, हरियर दुब घाँस
चरे लागल ऐरे बुचु, कईल गाय.....।।1।।
कईल गाय केर, हरियर गोबर हो
लीपे लागल एरे मईया, चन्दन चौपाईल.....।।2।।
चन्दन चौपाईल केर, पुरुबे दुवार भाई
ताँहा लागल रे भईया, बजरा केंवारी.....।।3।।
बजरा केंवारी में, सोने केर लाल लागल
खोले लागल ये मन्जर छयेला जवान.....।।4।।[13]

उपरोक्त गीत में भी नदी का समावेश है जिसमें कहा गया है कि नदी के किनारे हरा दुबला घास है, ऐरे बाबु काली गाय चर रही है। काली गाय की हरी गोबर है, लीपने लगी है ए माई (बच्ची) चन्दन के पेड़ जैसा। चन्दन पेड़ के पूरब में दरवाजा भाई, वहाँ लगा हुआ है ए भाई बजरा की खेती।

नागपुरी गीतों में 'डोमकच' लोकगीत जो सभी मांगलिक अवसरों पर विशेष रूप से महिलाओं द्वारा गाया जाता है, इस गीत में भी शंख, बाला, गंगा आदि नदियों समावेश मिलता हैः–

एड़ी पंयरीया मोर; दिसे लील लील; गे माय,
दिसे लील ली; गे माय; जीरहीर खेलाय दे,
शंख नदी तीरे; माय बाला नदी तीरे,
मौके जीरहीर खेलाय दे 2 ..... ।।1।।
डंडा पटोरवा मोर, दिसे लील लील; गे माय,
दिसे लील ली; गे माय; जीरहीर खेलाय दे,
शंख नदी तीरे; माय बाला नदी तीरे,
गे माय, जीरहीर खेलाय दे 2 .....।।2।।
नाक बेसरी मोर; दिसे लील लील; गे माय,
दिसे लील लील; गे माय, जीरहीर खेलाय दे,

शंख नदी तीरे; माय बाला नदी तीरे,

गे माय, जीरहीर खेलाय दे 2 .....।।3।।

गला सकरी मोर; दिसे लील लील; गे माय,

दिसे लील लील; गे माय, जीरहीर खेलाय दे,

शंख नदी तीरे; माय बाला नदी तीरे,

गे माय, जीरहीर खेलाय दे 2 .....।।4।।

कान तरकी मोर; दिसे लील लील; गे माय,

दिसे लील लील; गे माय, जीरहीर खेलाय दे,

शंख नदी तीरे; माय बाला नदी तीरे,

गे माय, जीरहीर खेलाय दे 2 .....।।5।।[14]

इस गीत का आशय है कि एक बेटी अपनी माँ से कहती है कि मेरे पैर में जो पायल है वह लाल–लाल दिखता है, हे माई मुझे शंख नदी और बाला नदी के किनारे जीरहीर खिला दो। मेरे कमर में जो कमरबंध है वह लाल–लाल दिखता है, हे माई मुझे शंख नदी और बाला नदी के किनारे जीरहीर खिला दो। मेरी नाक की नथनी लाल–लाल दिखती है, हे माई मुझे शंख नदी और बाला नदी के किनारे जीरहीर खिला दो। गले की हार या आभूषण लाल–लाल दिखता है, हे माई मुझे शंख नदी और बाला नदी के किनारे जीरहीर खिला दो। मेरा कान की बाली हे माई मुझे शंख नदी और बाला नदी के किनारे जीरहीर खिला दो। वास्तव में लोकगीतकार बार–बार शंख नदी और बाला नदी के महत्व को इस गीत के माध्यम से इंगित करता है।

एक अन्य गीत भी इसी प्रकार है जिसमें पत्नी अपने पति के वियोग गा रही है और उनकी तुलना गंगा–यमुना नदी से करती है। गीत इस प्रकार है :–

आम्बा मंजरे मधु मातलैं रे, तईसने मातल जाए

गंगा जमुना नदी भरलैं रे, तईसने पिया भरल जाए।

अपने ना आवैं, ना चिट्ठी लिख भेजैं रे, समुझी नयना ढरकत लोर।।[15]

पर्व-त्यौहारों से संबंधित लोकगीतों में नदियाँ

अगर पर्व–त्यौहार में नदियों के महत्व और उसकी उपयोगिता की बात करें तो यहाँ का मुख्य आदिवासी त्यौहार 'करमा' है और हर स्थिति पर करमा गीत रचा जाता है और बिना नदियों की उपयोगिता को शामिल किये गीतों की रचना अधूरी है। जैसे एक गीत में दिखाया गया है

कि दुल्हन बहुत ही परेशान है। किस बात पर परेशानी है उसकी सास उसे जाम झरिया नदी से पानी लाने को कहती है। नई दुल्हन को पता नही है कि ये जाम झरिया नदी है कहाँ। उसके बाद ये भी सोचती है कि वहाँ कैसे पहुँचेगी, तब गाँव की महिलायें उसकी मदद करती हैं। वे उसे बताती है कि जाम झरिया है कहाँ। वे कहती हैं कि सामने जो पहाड़ है, उसे पार करने के बाद जाम झरिया नदी दिख जायेगी। गीत इस प्रकार है :–

हाय रे हाय
मैं तो नहिं जानों जी
कहाँ बोहावे जाम झरिया
धर से निकरे फरिका मेर ढ़ाढ़े
कहाँ बोहावे जाम झरिया
डोंगरी च डोंगरी तै चड़ि जाबे।
नीचे बोहावे जाम झरिया
एक कोस रेंगे।
दुसर कोस रेंगे
तीसर मा पहुँचे
जाम झरिया
हाथे मा गगरी
मूढ़े मा गुढ़री
खड़े देखय
जाम झरिया।

नदियों से प्रार्थना करते हुए माँ की ममता के बारे में कई गीत है जिसमें वह नदी पार करने के लिए विनती करती है। एक गीत में एक माँ बहुत ही व्याकुल है कि उसे घर पहुँचना है। घर में अपने बच्चे को वह छोड़ आई है। अब वह नदी पार करना चाहती है पर नदी में तो भंवरे बन रहे हैं। वहाँ के नाविक उस माँ से कहता है कि अब वह नदी नहीं पार कर सकती है। इसीलिये उसके घर में सादर आह्वान करता है। पर माँ व्याकुल होकर उसे बार–बार कहती है कि किसी भी तरह उसे नदी पार करा दे। गीत इस प्रकार है :–

नदिया भौना मारे
कइसे नका बे नदी पार रे।
नदिया .....

आज के रतिया रहि बसि लेबे
कालि नकाबो पार रे
नदिया .....
दिने खवाहूं खाड़ा मछरिया
राते ओढ़ा हूँ भंवर जाल रे।
नदिया .....
रहेला रवितंव राती तोरे टेपरिया
कोरा के बालअवा के खियाल रे।
नदिया.....

करमा पर्व भाई–बहन के आपसी सद्भाव, स्नेह और प्रेम का प्रतीक है। इस पर्व के दौरान महिलाएँ एवं कुंवारी युवतियाँ नदियों में जाकर स्नान करती हैं। नदी जाने के दौरान ये गीत गाती हैं.....

''बहल आवे नदी नाला, बहल आवे कांटा कुशा,
बहल आवा हो देव, हमारी बहनियाँकृकृकृ,
देबउ हो गंगा मइया दूध के ढकनियां में
ऊपर करा हमरो बहिनिया के
छान दिया हो गंगा मइया हमर बहिनियाँ''

उपरोक्त गीत में बहन के प्रति भाई का प्यार झलकता है। विवाहित बहनें ससुराल से नहीं आ पाती हैं। उस दौरान भाई नदी के किनारे गंगा मईया से कहता है कि नदी में हर तरह का कांटा और कुश बह रहा है, लेकिन मेरी प्यारी बहन नहीं आ रही है। अगर नदी के सहारे बहन आती होगी, तो हे गंगा मईया मेरी बहन को छानकर मुझसे मिलवा दो।

नदियों से कैसे जुड़ाव है प्रेम का, दुःख का, वो इस लोकगीत में अभिव्यक्त होता है :–

''कासी फुटलाय आसा लागलय गे सजनी
आबे भइया आइतय लेनिहार गे सजनी
नदिया भरलय समा–डमा गे सजनी
आबे भइया बढ़िए झेकेलाय गे सजनी
देबो गे नदिया दुधा–गुरा के झाक गे सजनी
मोरो भइया के होवे दिहीं पार गे सजनी
कासी झारलय आसा टुटलय गे सजनी
आबे भइया नाही आइतय लेनिहार गे सजनी''

इस लोकगीत के अनुसार कासी का फूल खिलते ही बहन मायके आने की उम्मीद बांधने लगती है कि उसका भाई उस ले जाने के लिए आएगा, लेकिन गाँव से दूर नदी में पानी बढ़ने के कारण भाई नहीं आ पाता है। बहन नदी से निहोर करती है, लेकिन भादो का झर से नदी में पानी सम–डम है। भाई उसे ले जाने के लिए नहीं आ पाता है जिससे बहन की आस टूट जाती है। खुशी है, सुख है एवं उमंग भी, लेकिन भाई के नहीं आने के कारण जो उम्मीद टूटती है, उस पर भी खोरठा में यह लोकगीत है जो इस मर्म को स्पर्श करती है।

एक बहुत ही प्रचलित करमा–गीत है जिसमे काँची नदी का बहुत ही सुन्दर वर्णन है। गीत इस प्रकार है :– ''आजरे करम गोसाईं घरे द्वारे रे, काल रे कांस नदी पारे रे।''

इस गीत का आशय है कि आज करम देवता हस सभी के घर–द्वार आये हैं, कल करम देवता कांची नदी में विर्सजित कर दिये जायेगे।

एक अन्य खोरठा गीत जिसमें नदी का जिक्र करते हुए एक विवाहित बेटी अपने पिता को उलाहना स्वरूप बताती है कि आप मेरा विवाह नदी के उस पार कर दिए हैं। नदी–नाला बारहमास बहता रहता है। यदि आप (पिता जी) रहते तो मुझे विदाई कराके ले जाते। गीत इस प्रकार है :–

बाबा मोरे बीहा देलइ नदी के पार
बलि ओगो नदी नाला बोहइ बारहमास
बाबा मोरे रहतलइ आना लेगा करतलइ
बलि ओगो पइतो परबे परेक अधिन
सास देहइ ओलना ननद देहइ ठोलना
बलि ओगो कहाँ जाये रहबइ डाँढ़ाइ।

सोहराय पर्व के अवसर (श्रृंगार रस में) पर लोकगीत में देवर–भाभी में चुहल होती है। इस गीत में भी गंगा नदी की पवित्रता का वर्णन मिलता है।

गीत :– भाभी गाती है–

'अरे हो गंगा बोहरिया,
गंगा बोहरिया !
कड़वा जो कांदे से।

सोहराय पर्व झारखण्ड में जनजातीय और गैर जनजातीय समुदाय दोनों के बीच लोकप्रिय है। इस पर्व में गंगा नदी में स्नान को पवित्र मानते हुए गाया जाने वाला लोकगीत है:–

''बोल हेकृकृवीरा कुंवर, वीरा क्षत्रिय, सातों भइया
करो हथीन सलहा मतिया रे घायना.... चला भइया गंगा असनान करे हो''

इन लोकगीतों से पता चलता है कि इस प्रदेश के बहुंत सारे लोकगीत–संगीत में नदियों का वन्दन–गान है। यह वन्दन–गान किसी एक नदी को नहीं, बल्कि हमारी सभी नदियों को सम्बोधित है। ये लोकगीत नदी–जल को, जल–धारा को सम्बोधित है।

निष्कर्ष

बहरहाल, जल–जंगल–जमीन, माय–माटी की बात करनेवाला आदिवासी समाज का प्रकृति के साथ मजबूत और मधुर संबंध रहा है। आदिवासियों की पहचान ही उनकी प्रकृति प्रेम एवं प्रकृति संरक्षण है। आदिवासियों का अपना धर्म है। ये प्रकृति पूजक हैं और जंगल, पहाड़, नदियों एवं सूर्य की आराधना करते हैं। इनमें भौतिक सुख–सुविधा की अपेक्षा यथार्थ पर आधारित संतोषपूर्ण जीवन जीने की प्रवृत्ति रही है। प्राकृतिक उपादानों से यहाँ के लोगों का लगाव एवं जुड़ाव इनके जीवन का अभिन्न अंग रहा है, जिसमें नदियों का प्रमुख स्थान रहा है। यहाँ के जनजीवन में नदियों का महत्त्व इसी से जाना जा सकता है कि धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, कृषि, औषधि, पर्यावरण और न जाने कितने क्षेत्र हैं जो नदियों से आदिकाल से लेकर अबतक जुड़े हुए हैं। मनुष्य ही नहीं, कई और प्राणियों के जीवन भी इनसे जुड़े होते हैं। यह सत्य है कि किसी एक जगह नदी से किया हुआ कोई व्यवहार वहीं तक सीमित नहीं रहता, बल्कि विस्तारित होता है। इसलिए समय–समय पर मानव ने प्रकृति के साथ अपने इस अप्रतिम साहचर्य को अपने गीत–संगीत और रागों में भी उजागर करने का प्रयास किया है। लोक जीवन में प्रकृति के समस्त नदी, पहाड़, पेड़–पौधों, फूल–पत्तियों और जीव–जन्तुओं के प्रति अनन्य आदर का भाव समाया हुआ है। खासकर नदियों के लिए तो यह भाव बहुत पवित्र दिखायी देता है। यहाँ के कई लोकगीत–संगीत भी इसकी पुष्टि करते हैं।

संदर्भ सूची

1. श्री जगदीश त्रिगुणायत, *बाँसरी बज रही (मुण्डा लोकगीत),* बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 2000, पृ0 11
2. गिरिधारी राम गौंझू 'गिरिराज', *झारखण्ड का लोकसंगीत,* झारखण्ड झरोखा, राँची, 2019, पृ0 10
3. वही, पृ0 45–46
4. बी0 वीरोत्तम, *झारखण्ड : इतिहास एवं संस्कृति,* बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2004, पृ0 539
5. गिरिधारी राम गौंझू 'गिरिराज', पूर्वोद्धृत, पृ0 47–48
6. श्याम कुमार, *झारखण्ड : एक विस्तृत अध्ययन,* सफल प्रकाशन, राँची, 2004, पृ0 530
7. विनय कुमार, *संथाली भाषा, लोकगीत एवं नृत्य,* झारखण्ड झरोखा, राँची, 2014, पृ0 139

8. वही, पृ0 163–164
9. विमलेश्वरी सिंह, *छोटानागपुर के सुरीले लोकगीत : संस्कार गीत, झूमर गीत तथा डोमकच,* हिन्दी बुक सेन्टर, दिल्ली, 2021, पृ0 33
10. श्री जगदीश त्रिगुणायत, पूर्वोद्धृत, पृ0 48
11. वही, पृ0 82–83
12. वही, पृ0 142–143
13. राम कुमार एवं बिजय कुमार साहु, *ख्याति नागपुरी लोकगीत संग्रह,* पृथ्वी प्रकाशक, दिल्ली, 2017, पृ0 43–44
14. वही, पृ0 55
15. गिरिधारी राम गौंझू 'गिरिराज', पूर्वोद्धृत, पृ0 89–90

भारत की 'एक्ट ईस्ट' नीति तथा आसियान

गोपाल कुमार साहु*

सारांश

भारत सरकार द्वारा प्रतिपादित 'एक्ट ईस्ट' की नीति, जिसे वर्ष 2014 में प्रधान मंत्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में 'लूक ईस्ट' से 'एक्ट ईस्ट' में उन्नयित किया गया, वर्तमान समय के भारतीय विदेश नीति की प्राथमिकताओं को स्पष्ट रूप से इंगित करता है। इस नीति के अन्तर्गत भारत और आसियान के संबंधों में एक नया आयाम जुड गया जिसमें निवेश, पर्यटन तथा कनेक्टिविटी शामिल है। 'एक्ट ईस्ट' पॉलिसी को शुरू करने के बाद भारत और आसियान के आर्थिक संबंधों में अत्यधिक विस्तार हुआ है साथ ही साथ आसियान देशों का भारत में निवेश भी काफी बढ़ा है। पर्यटन के क्षेत्र में 2014 के बाद से भारत में विदेशी पर्यटकों की संख्या में काफी वृद्धि हुई है। लोगों से लोगों का जुड़ाव पहले की अपेक्षा काफी बढ़ा है भारत–म्यांमार–थाइलैंड त्रिपक्षीय राजमार्ग कनेक्टिविटी के विकास का परिणाम है। सामरिक क्षेत्र में दक्षिण चीन सागर विवाद में भारत की उपस्थिती को काफी महत्वपूर्ण माना जा रहा है। इस नीति को लागू करने के बाद विश्व के बडे देशों में भी भारत की प्रतिठा बढ़ी है।

कुंजी शब्द : सामरिक नीति, वार्ताकारिता, कनेक्टिविटी, पुनर्सन्तुलन

भूमिका

भारत की 'एक्ट ईस्ट' नीति मुख्य रूप से 'आसियान' देशों के साथ संबंधों को बेहतर बनाने के लिए अपनाया गया था। आसियान की स्थापना 8 अगस्त, 1967 ई0 को थाइलैंण्ड की राजधानी बैंकॉक में हुई थी, इसके संस्थापक सदस्य इण्डोनेशिया, मलेशिया, थाईलैंड, फिलिपिन्स और सिंगापुर थे, बाद में वर्ष 1984 ई0 में ब्रुनेई, 1995 ई0 में वियतनाम, 1997 ई0 में लाओस और म्यांमार तथा 1999 ई0 में कम्बोडिया ने भी आसियान की सदस्यता ग्रहण की। इस प्रकार वर्तमान में आसियान में दस सदस्य राष्ट्र है।[1] आज से 31 वर्ष पूर्व 1991 ई0 में भारत ने आसियान देशों के साथ संबधों को नया आयाम देने के लिए 'लूक ईस्ट नीति' को आरम्भ किया था। इसके बाद 1992 ई0 में भारत को आसियान में 'आंशिक वार्ताकार' के रूप में शामिल किया गया और यहीं से भारत और आसियान के बीच संबंधों की शुरूआत हुई थी। देखते ही देखते 1996 ई0 में भारत को आसियान में 'पूर्ण वार्ताकार राष्ट्र' का दर्जा प्राप्त हुआ[2] इसी वर्ष संबंधों को सुदृढ़ बनाने के

*यू0जी0सी0 सीनियर रिसर्च फेलो, इतिहास विभाग, राँची विश्वविद्यालय,राँची

लिए 'आसियान–भारत संयुक्त सहयोग परिषद्' की स्थापना की गई जिसका उद्देश्य दोनों के मध्य सहयोग के क्षेत्रों व उपायों का पता लगाना था।[3] 2001 ई0 में दोनों ने आपसी सहयोग को उच्च स्तर पर गति प्रदान करने के लिए नियमित वार्षिक शिखर सम्मेलन के आयोजन का निर्णय किया। इसके परिणामस्वरूप वर्ष 2002 ई0 में कम्बोडिया के शहर नामपेन्ह में प्रथम भारत–आसियान शिखर सम्मेलन का आयोजन किया गया इसके बाद प्रतिवर्ष इस सम्मेलन का आयोजन होता है।[4] 2005 ई0 में भारत 'पूर्व एशिया सम्मेलन' में शामिल हुआ।[5] 2012 ई0 में दोनों पक्षों ने सामरिक सहयोग समझौते पर हस्ताक्षर किया। व्यापार को बढ़ावा देने के लिए दोनों पक्षों ने 4000 वस्तुओं पर व्यापार 'शुल्क' की न्यूनतम स्तर पर करने का फैसला लिया है।[6] 2014 ई0 में नरेन्द्र मोदी के प्रधान मंत्री बनने के बाद संबंध को और मजबुत करने के लिए 'लूक ईस्ट' को 'एक्ट ईस्ट'[7] कर दिया गया, जिससे दोनों पक्षों के कई नये मुकाम हासिल किए।[8]

आर्थिक संबंध

भारत और आसियान देशों के संबंध बहुपक्षीय हैं जिसमें आर्थिक पक्ष प्रमुख है। भारत–आसियान व्यापार और निवेश संबंध लगातार बढ़ रहे हैं, आसियान भारत का चौथा सबसे बड़ा व्यापारिक भागीदार है। भारत का आसियान के साथ व्यापार 1991 ई0 में 1960 मिलियन यू0एस0 डॉलर था जो 2018 ई0 में बढ़कर 81,300 मिलियन यू0एस0 डॉलार हो गया।[9] लगातार बढ़ते व्यापार को देखते हुए भारत को पूर्व की ओर देखने की और महत्वकांक्षा बढ़ी। आसियान के साथ भारत का आयात निर्यात से अधिक है। 2017–2018 में आयात 45313 मिलियन यू0एस0 डॉलर और निर्यात 35411 मिलियन यू0एस0 डॉलर हैं। 1998 ई0 और 1999 ई0 में आयात और निर्यात के बीच अंतर बहुत बड़ा था, लेकिन 2001 ई0 के बाद इसमें लगातार सुधार होने लगा है, परन्तु व्यापार का संतुलन नकारात्मक था क्योंकि आयात निर्यात से अधिक था।[10] आमतौर पर 2007 ई0 से शुरू हुई वैश्विक मंदी के दौर में भी भारत और आसियान क्षेत्र के बीच अंतर्राष्ट्रीय व्यापार बढ़ता ही गया। 2007 से 2018 ई0 तक की अवधि के दौरान आसियान के लिए भारत के निर्यात में भी काफी वृद्धि देखी गई जो बताता है भारत और आसियान के मजबूत आर्थिक संबंध को इसी क्षमता को वास्तविकत रूप देने के लिए मोदी सरकार ने अन्य कार्यक्रमों की शुरूआत की है जिनमें मेक इन इंडिया, डिजिटल इंडिया, स्मार्ट सिटी, स्टार्ट अप इंडिया, स्कील इंडिया इत्यादि शामिल हैं।

भरत–आसियान के संबंधो का दूसरा मुख्य पहलू सामरिक है। विश्व स्तर पर चीन की अमेरिका और जापान से प्रतिस्पर्धा ने भारत को भी इस क्षेत्र में सक्रिय होने को विवश कर दिया है। चीन के 'मेरिटाइम सिल्क रोड़' के रणनीतिक प्रभाव को देखते हुए, अमेरिका ने एशिया में 'पुनर्सन्तुलन की नीति' के अंतर्गत चीन को संयमित करने के लिए भारत और जापान जैसे देशों के सक्रिय होने पर जोर दिया है।[11] 15वें भारत–आसियान शिखर सम्मेलन 2017 के दौरान अपने सम्बोधन में भारतीय

प्रधानमंत्री मोदी इस क्षेत्र के सुरक्षा ढांचे में आसियान की केन्द्रीय भूमिका को रेखांकित किया था। दक्षिण चीन सागर में एक तरफ चीन तथा दूसरी तरफ उसके पडोसियों तथा अमेरिका के बीच बढ़ते तनाव के कारण इस क्षेत्र का सामरिक महत्व बढ़ गया है[12] जिसमें आसियान के द्वारा भारत को सहयोग करने के लिए और इस विवाद को सुलझाने का सुझाव दिया है।

निवेश

लुक ईस्ट पॉलिसी को शुरू करने के बाद से सिंगापुर, थाईलैंड और मलेशिया जैसे आसियान सदस्य देश भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में उभरे हैं। इस अवधि में थाईलैंड, इंडोनेशिया और वियतनाम जैसे आसियान के कुछ सदस्य देशों में निवेश करने वाली भारतीय कंपनियों को भी देखा गया। 1990 ई0 के दशक के मध्य से, सूचना प्रौद्योगिकी और कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर क्षेत्र भारत के लिए बाहरी निवेश का एक महत्वपूर्ण श्रोत बन गया हैं। भारतीय कम्पनियों द्वारा आसियान देशों, विशेषकर सिंगापुर में गोदामों की स्थापना की गई है। अधिक उन्नत आसियान देश, विशेष रूप से, मलेशिया, सिंगापुर और थाईलैंड दूरसंचार, ईंधन, होटल और पर्यटन सेवाओं, भरी उद्योगों, रसायनों, उर्वरकों, कपड़ा, कागज और दालों, और खाद्य प्रसंस्करण जैसे क्षेत्रों में भारत में तेजी से निवेश कर रहे है। मलेशिया ने भारत में लॉजिस्टिक्स, हाइवे और सूचना और संचार प्रौद्योगिकी जैसे चुनिंदा इन्फ्रास्ट्रक्चर क्षेत्रों में क्षमता बढ़ाने के लिए पर्याप्त निवेश किया है।[13] यह विशेष रूप से तेल और गैस की खोज और डाउनस्ट्रीम गतिविधियों में ऊर्जा क्षेत्र में बुनियादी ढ़ांचे की विशेषता और निवेश प्रदान करने में भारत की सहायता करने के लिए भी सहयोग कर रहा है। सिंगापुर की निजी क्षेत्र की कम्पनियों ने स्वास्थ्य, देखभाल, अचल सम्पत्ति और पर्यटन में निवेश किया है। इस क्षेत्र में भारतीय निवेश व्यापक रहा है– जिसमें स्टील, कपड़ा, रसायन और पेट्रोकेमिक्ल्स, सीमेंट, चीनी, फार्मास्यूटिकल्स और तेजी से बढ़ रहे महत्वपूर्ण सॉफ्टवेयर सेवाएँ और प्रोग्रामिंग शामिल हैं।[14] सॉफ्टवेयर और सेवाओं में भारत की ताकत फलस्वरूप पूर्वी एशिया और पूर्व एशियाई कंपनियों के हार्डवेयर और विनिर्माण कौशल को पूरक बनाती है, जिन्होंने भारत में अपने वैश्विक अनुसंधान और विकास केन्द्रों का पता लगाकर अनुसंधान और विकास सॉफ्टवेयर और डिजाइन में भारत की ताकत का फायदा उठाना शुरू कर दिया है। भारत के आर्थिक सुधारों और विदेशी निवेश परमिट पर नियमों के उदारीकरण के साथ, आसियान में भारतीय कम्पनियों की उपस्थिति बढ़ाने की संभावना है। पहले की अवधि के विपरीत, उनकी उपस्थिति आर्थिक दक्षता और लाभ प्रदत्ता मानदण्डों से प्रेरित होगी न कि भागने की इच्छा से। इस प्रकार हम कह सकते है कि निवेश के क्षेत्र में दोनों ओर से काफी सहयोगात्मक कार्य हुआ है, जिससे आर्थिक क्षेत्र में काफी सुधार हुआ है, और दोनों के संबंध में भी मजबूती आई है। आसियान–भारत सेवाओं में व्यापार और निवेश समझौता 2015 ई0 में लागू हुआ।[15] वर्षों से,

सेवा समझौते ने भारत और आसियान अर्थव्यवस्थाओं के बीच दोनों ओर से जनशक्ति और निवेश दोनों की आवाजाही के अवसर खोले हैं, आसियान अर्थव्यवस्थाओं के साथ भारत के सेवा व्यापार में वृद्धि हुई है। 2010 ई0 में 30 बिलियन यूएस डॉलर से बढ़कर 2016 ई0 में 45 बिलियन यूएस डॉलर हो गया और 2025 ई0 तक 100 बिलियन यूएस डॉलर तक पहुँचने की उम्मीद है। संक्षेप में, आसियान अर्थव्यवस्थाओं के साथ भारत का द्विपक्षीय व्यापार वर्तमान में 142 बिलियन यूएस डॉलर से अधिक होने का अनुमान है, जिसमें से 97 बिलियन यूएस डॉलर माल का और लगभग 45 बिलियन यूएस डॉलर सेवाओं का है,[16] जो 2025 ई0 तक 300 बिलियन यूएस डॉलर तक पहुँचने की उम्मीद है।

अप्रैल 2000 ई0 से जून 2019 ई0 के दौरान, आसियान अर्थव्यवस्थाओं से भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) इक्विटी अंतर्वाह 91 बिलियन यूएस डॉलर है। भारत में निवेश करने वाले आसियान देशों में, सिंगापुर अप्रैल 2000 ई0 से जून 2019 ई0 तक 88337 मिलियन यूएस डॉलर के संचयी एफडीआई इक्विटी प्रवाह के साथ सर्वोच्च स्थान पर है, इसके बाद मलेशिया 986 मिलियन यूएस डॉलर, इंडोनेशिया 629 मिलियन यूएस डॉलर, थाइलैंड 474 मिलियन यूएस डॉलर तथा फिलिपिंस 312 मिलियन यूएस डॉलर का स्थान है। भारत में कुल एफडीआई अंतर्वाह का 97 प्रतिशत सिंगापुर का है, जबकि कुल एफडीआई प्रवाह का शेष 3 प्रतिशत मलेशिया, इंडोनेशिया, थाइलैंड, फिलीपींस, कंबोडिया, म्यांमार, वियतनाम और ब्रुनेई के संयुक्त योगदान के कारण है।[17] दोनों क्षेत्रों के बीच आर्थिक सहयोग बढ़ाने के लिए, भारत और आसियान की कंपनियाँ संयुक्त उद्यम बनाने में बढ़ावा दे सकती हैं और विनिर्माण शुरू करने के लिए संस्थाएँ स्थापित कर सकती हैं। आसियान कम्पनियों को भारत के एमएसएमई क्षेत्र में अपना योगदान बढ़ाने के लिए कुछ सहायता और प्रोत्साहन दिया जा सकता है। कृषि और खाद्य प्रसंस्करण, आइटी/आईटीईएस, ई–कॉमर्स और फिनटेक, बुनियादी ढाँचे, स्वास्थ्य देखभाल, दवा मोटर वाहन, शिक्षा और कौशल विकास, पर्यटन जैसे क्षेत्रों के लिए आपसी सहयोग और अधिक बाजार पहुँच के माध्यम से भारत–आसियान व्यापार और निवेश को मजबूत करेगा।

पर्यटन

पर्यटन किसी भी देश के लिए सबसे महत्वपूर्ण उद्योगों में एक है और अगर यह अच्छी तरह से योजनाबद्ध कर क्रियान्वित किया जाये तो यह देश को विकास की ओर ले जाता है। पर्यटन उद्योग भी देश की जीडीपी में भारी योगदान देता है। पर्यटन विभिन्न प्रकार के हैं और उनमें से प्रत्येक को पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए प्रभावी ढंग से संबोधित करने की आवश्यकता है। इसमें भारत और आसियान देशों के पर्यटन उद्योगों को शामिल किया जा रहा है तथा दोनों देशों के पर्यटन से होने वाले लाभ तथा घाटे पर विचार किया गया है।

पर्यटन विश्राम, आनन्द, अनुभव और बेहतर स्वास्थ्य के लिए है। विभिन्न स्थानों पर जाने के अलग–अलग कारण हैं और इन कारणों से पर्यटन को कई प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है। वे सांस्कृतिक पर्यटन, चिकित्सा पर्यटन, साहसिक पर्यटन, वन्यजीव पर्यटन, तीर्थाटन पर्यटन, इकोटूरिज्य आदि है। भारत में पर्यटन ने देश की अर्थव्यवस्था में योगदान देने में प्रमुख भूमिका निभाई है और निकट भविष्य में इसका काफी योगदान होगा। पर्यटन उद्योग भारत के जीडीपी की दिशा में योगदान देने वाले शीर्ष दस उद्योगों में से एक है। पर्यटन ने 2015 ई0 में 8.31 लाख करोड़ और भारत के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में 6.3% वृद्धि किया है,[18] और 37.315 लाख नौकरियों का सृजन करने में मदद की है, जो कुल रोजगार का लगभग 8.7% है। भारत में चिकित्सा पर्यटन तेजी से बढ़ते क्षेत्रों में से एक है। स्वास्थ्य के लिए विदेश यात्रा उपचार की लागत को कम करने में मदद करती है और भारत उन देशों में से एक है, जो चिकित्सा पर्यटन को बढ़ावा दे रहा है। भारत ने 2006 ई0 में 1,50,000 विदेशियों को देखा जो ईलाज के लिए आए थे।[19] पर्यटन की संख्या 2005 ई0 में 3.92 लाख से बढ़कर 2015 ई0 में 8.03 लाख हो गई है, परन्तु ये बहुत ज्यादा नहीं है, क्योंकि विशाल आबादी, शांत समुद्र तटों, प्राकशतिक सुन्दरता, विविध संस्कृति और समृद्ध विरासत के बावजूद भारत अभी भी विदेशियों को आकर्षित करने के लिए संघर्ष कर रहा है। जबकि अन्य छोटे देशों की तुलना में भारत के पर्यटन उद्योग के आँकड़े अच्छे नहीं है। समृद्ध विरासत, संस्कशति और कला रूपों के लिए भारत को अत्यधिक उच्च दर्जा दिया गया है।

भारत में पर्यटकों की खराब संख्या के पीछे मुख्य कारण हैं जैसे– गरीबी, धोखा, सुरक्षा मुद्दा, अस्वच्छ स्थिति और भिक्षावृत्ति।[20] विदेशी भारत को अलग तरह से समझते है और वे भारत को गरीबी, राजनीतिक अस्थिरता, आतंकवाद, सांप्रदायिक दंगों, बेरोजगारी, अशिक्षा और भ्रष्टाचार से संबंधित करते है। भारत को मौजूदा नीतियों पर जाँच करके इस पर अंकुश लगाने के लिए आवश्यक कदम उठाने की आवश्यकता है, और सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि जिलों और राज्यों में कानून व्यवस्था दुरूस्त हो। जिससे पर्यटकों की संख्या बढ़ेगी और देश की आर्थिक स्थिति भी मजबुत होगी। ऐसे कई देश हैं जो सक्रिय रूप से चिकित्सा पर्यटन को बढ़ावा दे रहे हैं और जिसके परिणामस्वरूप पर्यटकों की संख्या में वृद्धि हुई है। उनमें से कुछ भारत, थाईलैंड, मलेशिया, सिंगापुर, बेल्जियम, क्यूबा, पोलैंड, हंगरी और कॉस्टारिका हैं। भारत कुछ ही वर्ष पहले चिकित्सा पर्यटन की दौड़ में शामिल हुआ है तथा ईलाज की कम लागत के कारण, अंग्रेजी बोलने वाले डॉक्टर तथा व्यक्तिगत सेवा के कारण भारत भी इस क्षेत्र में बहुत अच्छा कर रहा है। मुम्बई, चेन्नई एंव नई दिल्ली के अस्पतालों में पड़ोसी दक्षिण पूर्व एशियाई देशों के और खाड़ी देशों के मरीज आ रहे है। भारत ने अफ्रीका, यूरोप और उत्तरी अमेरिका के मरीजों को आकर्षित करने के लिए रणनीति तैयार करना शुरू

कर दिया है, ताकि वे कम लागत पर विश्व स्तरीय चिकित्सा सेवा प्रदाताओं के रूप में खुद को बढ़ावा दे सके।[21] भारत, मलेशिया और थाइलैंड जैसे देशों में चिकित्सा पर्यटन को बढ़ावा देने में अस्पताल की वेबसाईटें भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। ये वेबसाईट अस्पताल के अंतर्राष्ट्रीय प्रमाणन, अस्पताल द्वारा इस्तेमाल की जा रही नवीनतम तकनीक, उच्च योग्य और अनुभवी डॉक्टरों के बारे जानकारी देती है। उपभोक्ता मूल्य सूचकांक, साक्षरता दर, अंतर्राष्ट्रीय और घरेलू हवाई अड्डों की उपस्थिति, पर्यटक ऑपरेटरों की संख्या भारत में आने वाले पर्यटकों की संख्या में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।[22]

इसी प्रकार आसियान देशों में भी भारतीय पर्यटक काफी संख्या में जाते हैं। थाईलैंड वह देश है जिसमें अन्य आसियान देशों की तुलना में पर्यटकों की संख्या सबसे अधिक है। थाईलैंड ने 2015 ई0 में आसियान देशों में पर्यटकों की कुल संख्या का लगभग 27 प्रतिशत योगदान दिया है। इन विशाल आँकड़ों के पीछे कारण विदेशी, वन्यजीव, शानदार द्वीप, मनोरम थाइ–भोजन, अनूठी संस्कृति, सरकार की नीतियाँ और सबसे महत्वपूर्ण दोस्ताना लोग हैं।[23] मलेशिया थाईलैंड के बाद आसियान देशों के बीच पर्यटकों के लिए दूसरा सबसे पंसदीदा स्थान है। पर्यटन सिंगापुर में महत्वपूर्ण उद्योगों में से एक है। इसने राष्ट्र की जीडीपी की दिशा में लगातार उच्च दर पर योगदान दिया है। इसी प्रकार संस्कृति और प्रकृति के लिए पर्यटक इंडोनेशिया जाते है। इंडोनेशिया में पर्यटन उद्योग ने बड़ी मात्रा में राष्ट्र की जीडीपी की दिशा में योगदान करने में मदद की है। वियतनाम अपने समुद्र तटों, नदियों, बुद्धवादी पगोड़ा जैसे सांस्कृतिक स्थलों के लिए जाना जाता है।[24] इसी प्रकार बाकी आसियान देशों में भी पर्यटन उद्योग विकास कर रहा है और भारत के साथ संबंध भी विकसित हो रहा है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पर्यटक उद्योग देश के आर्थिक विकास के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण श्रोत है और इससे आपसी संबंध में भी मजबूती आयेगी। देखा जाये तो हाल के वर्षों में भारत और आसियान के आर्थिक संबंध काफी मजबूत हो रहे हैं।

भारत–आसियान कनेक्टिविटी

आसियान देशों के साथ कनेक्टिविटी का विकास करना भारत की 'एक्ट ईस्ट नीति' का एक अहम हिस्सा है। दक्षिणी चीन सागर में चीन द्वारा अपनाए जा रहे आक्रमक रवैये के साथ–साथ इस क्षेत्र में कृत्रिम द्वीपों का निर्माण और उन्हें सैन्य अड्डों में परिवर्तित करने की उसकी पहल को देखते हुए आसियान देशों के द्वारा इस क्षेत्र में कनेक्टिविटी व सुरक्षा के लिए भारत को एक बड़ी भूमिका निभाने की मांग कर रहे हैं। भारत की पिछली सरकार के द्वारा 'लुक ईस्ट' नीति को बढ़ावा देने के लिए 2010 ई0 में आसियान–भारत कनेक्टिविटी का खाका तैयार किया गया था। फिर इसे 'एक्ट ईस्ट' नीति के तहत् वर्त्तमान सरकार द्वारा जारी किया गया। भारत–आसियान

स्मृति शिखर सम्मेलन के दौरान, प्रधानमंत्री मोदी द्वारा आसिसान के साथ कनेक्टिविटी को बढ़ाने वाली कुछ निर्माण गतिविधियों पर एक विस्तृत अद्यतन रिपोर्ट प्रस्तुत करेंगे जो लम्बे समय से चल रही है। ऐसी ही एक परियोजना भारत–म्यांमार–थाईलैंड त्रिपक्षीय राजमार्ग है, जो मणिपुर के मोरेह से शुरू होती है और म्यांमार से होते हुए बैंकॉक में समाप्त हो जाती है। इस परियोजना के 2023 ई0 तक पूरा होने की उम्मीद है।[25]

भारत, थाईलैंड और म्यांमार मिलकर लगभग 1600 कि0मी0 लम्बा राजमार्ग बनाने पर काम कर रहे हैं। इसके बनने के बाद भारत का सम्पर्क सुदुर के आसियान देशों से हो जायेगा। इस मार्ग पर म्यांमार में दूसरे विश्व युद्ध के समक्ष बनाए गए लगभग सात दशक पुराने 73 पुलों की मरम्मत भारत की मदद से की जा रही है। सीमा सड़क संगठन ने जहाँ 272.8 लाख डॉलर में म्यांमार के तमु–कालेवा–कालेम्यो खण्ड में 160 कि0मी0 लम्बी सड़क को अपग्रेड किया है। भारत–म्यांमार–थाईलैंड के बीच बन रहे सड़क मार्ग को विस्तार कम्बोडिया–लाओस के रास्ते वियतनाम तक करने पर भी सहमति बनी है। इसके लिये 1370 कि0मी0 सड़क अलग से बनाने का प्रस्ताव है। भारत ने वियतनाम तक के इस प्रस्तावित 3200 कि0मी0 लम्बे राजमार्ग को 'ईस्ट वेस्ट' इकॉनोमिक कॉरीडोर' का नाम दिया गया है। 2008 ई0 से जारी कालादान परियोजना के तहत् कोलकाता बंदरगाह को म्यांमार के सितवे बंदरगाह से जोड़ा जाना है। इससे भारत और म्यांमार के बीच होने वाले व्यापार के खर्च में 40 प्रतिशत तक की कमी आने की संभावना है। इससे पूर्वोत्तर भारत के राज्यों के साथ ही आसियान के मुख्य द्वार म्यांमार तक भारत की पहुँच हो जाएगी। आसियान–भारत वायु सेना समझौते तथा समुद्री परिवहन समझौते के अधिक उदारीकरण से वायु और समुद्री सम्पर्क द्वारा आसियान–भारत सहयोग को बढ़ाया जा सकता है।[26]

एक्ट ईस्ट नीति के समक्ष चुनौतियाँ और संभावनाएँ

दक्षिण चीन सागर विवाद जो इस क्षेत्र में इस विवाद को सुलझाना बहुत ही चुनौतीपूर्ण कार्य है क्योंकि उत्तर–पूर्व राज्य भौगोलिक रूप से एक–दूसरे से जुड़ नहीं पाए हैं अतः क्षेत्रीय सुरक्षा–चीन की सक्रियता तथा अमेरिका व जापान का प्रभाव, चीन अपने चारों और शक्ति को बढ़ा रहा है। जिससे भारत को काफी चुनौतियों का सामना करना पड़ेगा यद्यपि दोनों पक्षों के बीच आर्थिक और व्यापार को इसकी वास्तविक क्षमता तक पहुँचाना भी एक प्रमुख चुनौति के रूप में सामने आता है यही वजह है कि बहुत सारे दक्षिण पूर्व एशियाई देशों में कमजोर शासन व्यवस्था है[27] इसके वावजूद भारत और आसियान के मध्य सेवा और व्यापार के क्षेत्र में अपार संभावनाएँ मौजूद है, जिन्हें इस नीति के माध्यम से पूरा किया जा सकता है। मोदी सरकार को 'एक्ट ईस्ट नीति' के अन्तर्गत, एशिया पेसिफिक देशों के साथ बढ़ते संबंधो को चीन की

संवेदनशीलता के मद्देनजर, जागरूक होकर आगे बढ़ाना चाहिए। भारत के विभिन्न राज्यों के स्तर पर भी आसियान देशों के साथ बातचीत होना समीचीन है जिससे न केवल निवेश में लाभ होगा बल्कि प्रवासी भारतीयों को भी राज्यों के विकास में शामिल किया जा सकेगा। इस नीति द्वारा भारत के उत्तर–पूर्वी राज्यों के भौगोलिक क्षेत्रों को बेहतर रूप से सड़क तथा रेल नेटवर्क द्वारा एक–दूसरे से जोड़ा जा सकता है। ये राज्य पूर्वी एशिया से जुड़ने में सहायक हो सकता है।[28]

निष्कर्ष

भारत की एक्ट ईस्ट पॉलिसी एशिया–प्रशांत क्षेत्र में मौजूद देशों के सहभागिता को बढ़ावा देने के उद्देश्य से लाई गई थी। इस नीति से पूर्व लूक ईस्ट की नीति को जब शुरू किया गया तो इसे एक आर्थिक पहल के तौर पर देखा गया था लेकिन अब इस नीति ने एक राजनीतिक, रणनीतिक और सांस्कृतिक अहमियत भी हासिल कर ली है जिसके तहत देशों के बीच बातचीत और आपसी सहयोग को बढ़ाने के लिए एक तंत्र की शुरूआत भी कर दी गई है। इस नीति से इनके संबंधों में काफी सुधार हुआ है भारत इन देशों के सामने खुद को मजबुत और भरोसेमंद साथी के तौर पर पेश कर रहा है। भाारत इन देशों के साथ न सिर्फ सैन्य सहयोग चाहता है बल्कि इस पुरे क्षेत्र को बड़े बाजार में तब्दील करने पर काम कर रहा हैं पिछले वर्ष 26 जनवरी 2018 ई0 के गणतंत्र दिवस की परेड में 10 आसियान देशों की भारत में एक साथ मौजुदगी इस दिशा में एक बड़ा कदम है। भारत समुद्री क्षेत्र में सहयोग और सुरक्षा के मुद्दे पर इन देशों के बीच व्यापार लगातार बढ़ रहा है भारत को उम्मीद है कि अगले कुछ वर्षों में इसे करीब दोगुना किया जा सकता है। व्यापार और सामरिक नजरिये से हिन्द प्रशांत इलाके के इस क्षेत्र की अहमियत ऐसे भी समझी जा सकती है कि यहां, चीन, इन्डोनेसिया, मलेशिया, फिलिपीन्स, सिंगापुर, ताइवान, थाईलैण्ड, कम्बोडिया, ब्रूनेई और विएतनाम जैसे देश स्थित है, इनमें से ज्यादातर के साथ भारत के पुराने सांस्कृतिक, व्यापारिक और सामरिक रिश्ते हैं। भारत से समुद्र के रास्ते में जाने वाले समान का 25% इसी इलाके से होकर गुजरता है। भारत इसी रास्ते अपने कुल समुद्री खाना के निर्यात का 14% जापान को निर्यात करता है। अगर चीन इस क्षेत्र को पुरी तरह अपने कब्जे में कर ले तो भारत के निर्यात ही नहीं आयात पर भी बुरा असर पड़ेगा। भारत से सामान भेजने या मंगवाने की लागत कई गुणा बढ़ जाएगी। इसके अलावा भारत इस इलाके में तेल और गैस के क्षेत्र में भारी निवेश कर चुका है। जाहिर है ऐसे हालात में आसियान देशों के साथ मजबुत रिश्ते भारत के लिए न सिर्फ नए रास्ते खोलने वाले हैं बल्कि चीन की चुनौती से निपटने में भी मददगार साबित होगें।

संदर्भ सूची

1. पुष्पेश पंत, *21वीं शताब्दी में अंतर्राष्ट्रीय संबंध,* मैकग्राहिल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2015 पृ0 VII 54

2. त्रिढीब चक्रवर्ती, *एक्सपेन्डिंग होरिजॉन ऑफ इन्डियाज साउथेस्ट एसिया पॉलिसी,* के. डब्ल्यू. पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2015, पृ0 210
3. पीयू घोष, *इन्टरनेशनल रिलेशन,* पी.एच.आई. लरनिंग पी.भी.टी.एल.टी.डी., नई दिल्ली, 2016, पृ0 245
4. जूलिटो डी विट्रियोलो, *आसियान–इंडिया पार्टनरशीप,* रूमेल दहिया, उदय भानू सिंह (सम्प0), *दिल्ली डायलॉग vii इंडिया–आसियान शेपिंग द पोस्ट –2015 एजेन्डा,* पेन्टागोन प्रेस, नई दिल्ली, 2015, पृ0 95
5. थोंखोलाल होकिप, *इंडियाज लूक ईस्ट पॉलिसी एण्ड द नोर्थईस्ट,* सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2015, पृ0 36
6. रूमेल दहिया, *इंडिया आसियान शापिंग द पोस्ट – 2015 एजेन्डा,* पेन्टागाँव प्रेस, नई दिल्ली, 2015, पृ0 133
7. वार्षिक रिपोर्ट, 2014–2015 *दक्षिण–पूर्व एशिया और प्रशांत,* विदेश मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2015, पृ0 VI
8. वार्षिक रिपोर्ट, 2015–2016, *दक्षिण–पूर्व एशिया और प्रशांत,* विदेश मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2016, पृ0 VII
9. फोरेन ट्रेड (आसियान)– एम कॉमर्स– मिनिस्ट्री ऑफ कॉमर्स एण्ड इंडस्ट्री, एचटीटीपीएसः / / कॉमर्स. जीओभी. इन झ डिविजन (30 / 06 / 2022)
10. वही
11. के वी केशवान, *इंडियाज 'एक्ट ईस्ट' पॉलिसी एण्ड रीजनल कॉपरेशन,* 14 फरवरी 2020 एचटीटीपीएस : / / डब्ल्यू डब्ल्यूडब्ल्यू ओआरएफ ऑनलाईन ओआरजी >(23 / 01 / 2021)
12 अनिल सिगडेल, *इंडिया इन द एरा ऑफ चाइनाज बेल्ट एण्ड रोड इनिशिएटिव,* लेक्सिंगटन बूक, न्यूयॉर्क, 2020, पृ0 30
13. तोंगखोलाल हाओकिपो, *इंडियाज लूक ईस्ट पॉलिसी एण्ड द नॉथइस्ट,* सेज पब्लिकेशन, 2015, पश0 47
14. संजया बारू, *स्ट्रेटीजिक कॉन्सिक्वेन्स ऑफ इंडियाज इकोनोमिक परफोंमन्स,* रॉलेज पब्लिशर्स, न्यू दिल्ली, 2006, पृ0 71–72
15. तोंगखोलाल हाओकिपो, पूर्वोद्धृत, पृ0 48
16. संजया बारू, पूर्वोद्धृत, पृ0 73
17. के वी केशवान, *इंडियाज 'एक्ट ईस्ट' पॉलिसी एण्ड रीजनल कॉपरेशन,* 14 फरवरी 2020, पूर्वोद्धश्त
18. तोंगखोलाल हाओकिपो, पूर्वोद्धृत, पृ0 48
19. स्नेहा पाठक, *मेडिकल टुरिज्म इन इंडिया,* बूक्स क्लिनिक पब्लिशिंग, बिलासपुर, 2019, पृ0– 20–22
20. आनन्द बेथापुदी, *रोल ऑफ टुरिज्म इंडस्ट्री इन इंडियन इकोनोमी,* बिजया बारू, जयप्रकाश नारायण जी (सम्पा0), *टुरिज्म इन इंडिया,* जेनोम एकेडमिक पब्लिशिंग, हैदराबाद, 2014, पृ 40–45
21. जयप्रकाश नारायण ए. रवि, *मेडिकल टुरिज्म इन इंडियाः ए न्यू बिजनेश ओप्पोर्तुयिटी,* बिजया बाऊ, जयप्रकाश नारायण, पूर्वोद्धृत, पृ0 4–7
22. वेमना पगीदीपला, *टुरिज्म इन्फोंमेशन सेन्टर एट स्ट्रेटजिक लोकेशन्स ऑफ टूरिज्म इन्ट्रेस्ट–ए बिजनेश मॉडल अण्डर पब्लिक प्राइवेट पार्टनशीप,* वही, पृ0– 76–78

23. टुरिज्म इंडस्ट्री इन इंडिया– एफडीआई, इनवेस्टमेन्ट, मार्केट शेयर, एचटीटीपीएसः / / डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू. इनवेस्ट इंडिया. जीओभी. इन (5 / 7 / 2022)

24. अनिता मेधेकर, हरप्रीत कौर, *इवेल्यूएटिंग ट्रेड एण्ड इकोनोमिक रिलेशन्स विटवीन इंडिया एण्ड साउथेस्ट एशिया,* आईजीआई ग्लोबल पब्लिशर्स, पेंसिल्वेनिया, 2021,पृ0 145

25. पंकज के झा, *इंडियाज डिफेन्स डिप्लोमेसी इन साउथेस्ट एशिया : एक्सप्लोरिंग न्यू एवेन्यू,* एम मयिलवेगनन (सम्पा0), पूर्वोद्धृत, पृ0 124–125

26. प्रवीर दे, *एक्ट ईस्ट पॉलिसी एण्ड आसियान–इंडिया कनेक्टिविटी,* रूमेल दहिया (सम्प0), *दिल्ली डॉयलॉग VII इंडिया–आसियान,* पेन्टागन प्रेस, नई दिल्ली, 2015, पृ0 162

27. काच थी हुए, *फ्यूचर ऑफ आसियान एण्ड इंडिया–आसियान रिलेशनस,* पूर्वोद्धृत, पृ0 245

28. डेविड ब्रूस्टर, *इंडियाज डिफेन्स स्ट्रेटजी एण्ड द इंडिया–आसियान रिलेशंशिप,* अजया कुमार दास, (सम्प0),*इंडिया–आसियान डिफेन्स रिलेशन्स,* आर0एस0आई0एस0 प्रेस, सिंगापुर, 2013, पृ0 140–141

पर्यावरण एवं स्वच्छता सम्बंधी वैश्विक तथा गाँधीय दृष्टि

हेमराज कुमार कुशवाहा*

सारांश

20वीं सदी का आरंभ दुनियाभर में पर्यावरण एवं स्वच्छता को लेकर जागरूकता से हुई थी। प्रत्येक आंदोलन के अलग राजनीतिक विचार और सक्रियता थी, तथापि इन सभी आंदोलनों को आपस में जोड़ने वाली कड़ी अहिंसा और सत्याग्रह का गाँधीवादी दृष्टिकोण ही था। 1909 में जब **हिंद स्वराज** प्रकाश में आया तो उसे विद्वानों ने पश्चिमी पूर्वी सभ्यता के बीच विमर्श के रूप में स्वीकार किया। दरअसल पूर्व और पश्चिम के बीच का यह द्वंद या सभ्यता दृष्टि प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण को दर्शाता है। पर्यावरण हेतु स्वच्छता आंदोलन भारत में कुरकुरमुत्ते की तरह तेजी से बढ़ रहे है। परन्तु अभी तक कुछ ही आंदोलनों पर व्यवस्थित और वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन किया गया है। इसमें से कुछ है। **'चिपको आंदोलन'** के नेता **चाँदी प्रसाद भट्ट और सुंदरलाल बहुगुणा या फिर नर्मदा बचाओं आंदोलन के नेता बाबा आमटे और मेघा पाटेकर** सभी गांधी के ऋण को स्वीकार करते है। आज पूरे विश्व में हो रहे आंदोलन की रणनीति गांधीवादी विचारधारा से प्रेरित है। सन् 1895 में बिट्रिश सरकार दक्षिण अफ्रिका में भारतीयों और एशियाई व्यापारियों से उनके स्थानों को गंदा रखने के आधार पर भेदभाव किया था एवं भारतीयों को निम्न वर्ग के व्यक्तियों के रूप में तुलना किया थां एतदर्थ महात्मा गांधी ने भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान इस विषय पर स्पष्टतः कहा था, **'स्वतंत्रता में अधिक महत्वपूर्ण स्वच्छता है।'** उनका प्रसिद्ध कथन **'पृथ्वी के पास सभी की जरूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त संसाधन है, लेकिन हर किसी के लालच को नहीं'** दुनिया भर के पर्यावरण आंदोलनों के लिये एक उपयोगी नारा है।

कुंजी शब्दः– पर्यावरणीय विनाश, भोगवादी संस्कृति, होमोसेपिएंस (बुद्धिमान मानव), औद्योगिकीकरण, चिपको आन्दोलन, महाभारत, गीता, बसुधैव कुटुंबकम् और बहुजन हिंताय।

भूमिका

1960 और 1970 के दशक के प्रारंभ में व्यापक बेरोजगारी, परिस्थितिकीय क्षरण तथा पर्यावरण आंदोलन और महिला आन्दोलन प्रमुख है।[1] हाल के दशकों में इतिहास की **एक नवीनतम शाखा पर्यावरणीय इतिहास शोधार्थियों के बीच तेजी से लोकप्रिय हो रहा है। एक प्रमुख विषय है– पर्यावरण एवं स्वच्छता आन्दोलन।** पिछले तीन चार दशकों में भारत में पर्यावरण अंदोलन बहुत बड़ी संख्या में हुई है। ये देश की आजादी के बाद अपनाए गए

*छात्र, विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची

आर्थिक विकास के मॉडल पर सवालिया निशान लगाते रहे है। गाँधी जी पर्यावरण प्रेमी थे और प्रारंभ से ही पर्यावरण एवं स्वच्छता को लेकर जागरूक थे। उन्होंने शुरूआत में ही यह महसूस किया था कि आधुनिक शहरी औद्योगिक सभ्यता में ही पर्यावरण के विनाश के बीज निहित है।[2] गाँधी जी अपने लेख **'टु हेल्थ'** में साफ हवा की जरूरत पर रोशनी डाली है। उन्होंने कहा था कि शरीर को 3 प्रकार के प्राकृतिक पोषण की आवश्यकता है। हवा, पानी और भोजन। लेकिन साफ हवा सबसे अधिक आवश्यक है।[3]

भारत में पर्यावरण आंदोलन पर गाँधी दर्शन की छाप दिखती है। इस ओर कई विद्वानों एवं इतिहासकारों ने ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास किया है। महात्मा गाँधी जी के जीवन में पर्यावरनीय एवं स्वच्छता आंदोलन पर विशेष प्रभाव पड़ता है। **'चिपको आन्दोलन'** से नर्मदा बचाओ आन्दोलन तक पर्यावरणीय कार्यकर्त्ता अहिंसक प्रतिरोध की गांधीवादी तकनीक पर बहुत अधिक निर्भर है। भारत में हो रहे पर्यावरण एवं स्वच्छता आंदोलन कहीं न कहीं गांधी जी के विचारधारा से जुड़ाव रखते ही है। **रामचंद्र गुहा द्वारा 'चिपको आंदोलन'[4] और अमिता बविष्कर द्वारा 'नर्मदा बचाओ' आंदोलन पर लिखी रचनाओं ने विश्व भर में पर्यावरण आंदोलन के रूप में प्रसिद्धि दिलाने में अहम भूमिका निभाई है।** अमिता बविष्कर ने बताया है कि किस प्रकार भारतीय राज्य द्वार विकास की जो नीति अपनाई गई है, वह पर्यावरणीय क्षति के लिए जिम्मेवार है। महात्मा गाँधी को प्रारंभिक पर्यावरणविद् के रूप में देखा गया है।[5] रामचंद्र गुहा जिन्होंने पर्यावरण आंदोलन पर बहुत गहन अध्ययन किया है वे मानते है कि जल, जंगल और जमीन पर अधिकार के लिए आदिवासियों के आंदोलन माओवादियों के नेतृत्व में किये जा रहे है। औधोगिकीकरण के बगैर विकास असंभव है, लेकिन गांधी जी ने 1909 ई0 में ही अपनी पुस्तक 'हिंद स्वराज' के माध्यम से इस अंध विकास के खतरों से हमें सचेत कर दिया था। पर्यावरणविद् सुंदरलाल बहुगुना ने कहा है कि **भोगवादी संस्कृति** के बढ़ते प्रभाव में मानव का अस्तित्व खतरे में पड़ता जा रहा है।[6] 'हिंद स्वराज' के पूर्व सखराम गणेश देउसकर की पुस्तक 'देशेर कथा' की रचना 1904 ई0 में हुई थी इस पुस्तक में अंग्रेज विद्वानों के आधार पर यह सिद्ध करने की कोशिश की गई है कि भारत के पर्यावरणीय विनाश से अंग्रेजों की औधोगिक सभ्यता का विकास हुआ है। ऐसे ही तथ्य दादाभाई नौरोजी की पुस्तक **पोवर्टी एण्ड अन ब्रिटिश रूल इन इंडिया** में वर्णन किया गया है कि अंग्रेजों के धनहरण से भारत केवल गरीब ही नहीं हुआ है बल्कि उसका ज्ञान और अनुभव भी नष्ट हुआ है।[7]

प्रस्तुत आलेख में राष्ट्रीय स्तर पर चल रहे पर्यावरण एवं स्वच्छता से संबंधित आंदोलनों की रणनीति गांधी जी की विचारधारा से कहाँ तक प्रेरित है इनकी चर्चा की गई है। सबसे पहले भारत के दो प्रसिद्ध पर्यावरण आंदोलनों 'चिपको आंदोलन' और 'नर्मदा बचाओं' आंदोलन की चर्चा करते हुए भारत के पर्यावरण आंदोलन को समझने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत आलेख में कुछ प्रश्नों पर विचार किया गया है, जैसे कुछ पर्यावरण एवं स्वच्छता आंदोलनों के विश्व स्तर पर प्रसिद्धि के क्या कारण है, ये आंदोलन गांधीवादी विचारधारा से कहाँ तक प्रेरित हैं और आंदोलनों की रणनीति में गांधीवादी विचारधारा की छाप कहाँ तक दिखती है? प्रस्तुत आलेख के प्रथम भग में राष्ट्रीय परिपेक्ष्य में पर्यापरण आंदोलनों की चर्चा की गई है एवं दूसरे भाग में गांधी जी के स्वच्छता संबंधी आन्दोलनों के विषय में कहा गया है एवं तीसरे भाग में भारत एवं विश्वभर में पर्यावरण एवं स्वच्छता संबंधित आंदोलनों के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए इन आंदोलनों में अपनाई गई रणनीति की तुलना गांधीवादी विचारधारा को निष्कर्ष के रूप में की गई है।

पर्यावरण सम्बन्धी वैश्विक तथा गाँधीय दृष्टि

जब हम पारिस्थितिकी, पर्यावरण और प्रकृति का विचार करते हैं तो सहज ही भौतिक, जैविक और सांस्कृतिक पर्यावरण के अंतरर्संबंधों पर विचार करना आवश्यक हो जाता है। जीव जब अन्य जीवों के साथ अभिक्रिया करता है तो जैव पर्यायवरण का निर्माण होता है। जीवित प्राणी न केवल जीवों के साथ, बल्कि परिवेश से भी अभिक्रिया करता है। यह अजैविक पर्यावरण प्रकाश, ताप, जल और मृदा के साथ अभिक्रिया का परिणाम है। इस प्रकार जीव और उसका परिवेश, जो परस्पर एक–दूसरे पर निर्भर होता है, मिलकर एक तंत्र या इकाई बनाता है, को **'परिवेशिकी'** कहा जाता है।

पृथ्वी पर मौजूद जीव–जंतु, पौधे और अजैविक तत्त्वों को समाहित कर उनके बीच परस्पर अभिक्रिया कर उन तत्त्वों का उत्पादन करता है, जिनका विनिमय उस बास से जैविकी और तत्त्वों के बीच होता है, **को परिवेशिकी, पारिस्थितिकी और साधारणतया पर्यावरण कहते हैं।** जितने भी जीवधारी हैं, उनके अध्ययन से लगता है कि उनमें आपसी संबंध है और उनका उद्‌भव प्राचीन सरल व साधारणों जीवों से हुआ है। **होमोंसेपिएंस** (बुद्धिमान मानव) तक के विकास–यात्रा में जीवों के बीच एकता का पता चलता है। विकास को जैविक प्रक्रिया माना गया है। विकास के अनेक मत प्रचलित हैं। **चाहे डार्विन का प्राकृतिक वरण का सिद्धांत (थ्योरी ऑफ नेचुरल सेलेक्शन) हो, नवडार बिनवाद हो, लैमार्क का मैमार्कवाद या नव लैमार्कवाद, चाहे ह्यगो डी ब्रीज का उत्परिवर्तन सिद्धांत (म्यूटेशन थ्योरी) हो, चाहे ओसबार्न, हरबर्ट स्पेंसर, मैक्डूगल, मोर्गन, हक्सले आदि के सिद्धांत के विकासवाद को वातायन मिला;** लेकिन विज्ञान और संस्कृति के संबंधो पर भी विचार शुरू हुआ।[8] जब हम गाँधी के पर्यावरण और प्रकृति संबंधी विचारों को समझने की कोशिश करते हैं तो हमें गाँधी के सभ्यता संबंधी दृष्टिकोण के अंतर्गत विकास और पर्यावरण, गाँव और शहर, खासकर गाँधी के अहिंसा संबंधी विचार को समझने की जरूरत होती है। अस्तित्वमूलक

एकता के विचार को गाँधी के चिंतन का प्रस्थान बिंदु माना जा सकता है, जो वैज्ञानिक नियम के रूप में अभिव्यक्त हुआ है। विकास के इस सूत्र से मौकापरस्त मानव में परमुखी वृत्ति का ह्रास और स्वमुखी वृत्ति का विकास हुआ। यों तो भारत व पूर्व की विचार परंपरा **'वसुधैव कुटुंबकम्'** और **'बहुजन हिताय'** की रही है। पौर्वात्य परंपरा कभी स्वमुखी या आत्मकेंद्री नहीं रही है, जबकि स्वमुखी व आत्मकेंद्री विकासवाद से प्रेरित पाश्चात्य भौतिकवादी विचारध ाारा का परिणाम है।

साफ–साफ और सीधे तौर पर देखने में गाँधी के विचारों में पर्यावरण, प्रकृति आदि शब्द न दिखते हों, लेकिन बैरिस्टरी के अध्ययन के दरमियान उनका पहला लेख, जो **'वेजिटेरियन'** में प्रकाशित हुआ, वह गाँधी के पर्यावरणीय दृष्टि को स्पष्ट करने के लिए काफी है। 7 फरवरी, 1812 के अपने प्रथम लेख **'भारतीय अन्नाहारी'** में वे स्पष्ट करते हैं कि भारत के हिंदू गाय को पूजनीय मानते हैं।

गाँधी की चिंतन-परम्परा में भारतीय धर्म दर्शन

गाँधी की चिंतन–परंपरा में भारतीय धर्म–दर्शन का गहरा असर दिखता है। भारतीय परंपरा में जीवन के प्रारंभ से मानव की यात्रा में 84 लाख योनियों (Species) के बारे में कहा गया है। अनेक आचार्यों ने योनिज, अयोनिज तथा जलचर, थलचर, नभचर, चरक ने जरायुज, अंडज, स्वदेज और उद्भिज आदि रूपों में वर्गीकृत किया गया है। वैदिककाल से ही भारत में प्रकृति के निरीक्षण–परीक्षण एवं विश्लेषण की प्रवृत्ति रही है। **'महाभारत', 'विष्णु पुराण', 'मत्स्यपुराण', शुक्रनीति, 'वृहत संहिता पराशर', चरक, सुश्रुत, उद्यन आदि** द्वारा वनस्पति, उसकी उत्पत्ति, उसके अंग, क्रिया, उसके प्रकार उपयोग आदि का वर्णन किया गया है। पौधों की संवेदनशीलता का हमारा ज्ञान अत्यंत प्राचीन है। **'महाभारत'** के शांति पर्व के 184 वें हुए अध्ययन में महर्षि भरद्वाज व भृगु का संवाद है, जिसमें भृगु कहते हैं – **"हे मुने, यद्यपि वृद्वा ठोस जान पड़ते हैं तो भी उनमें आकाश है, उसमें स्पर्श ज्ञान का होना भी सिद्ध है। वे सुनते हैं, दिखते हैं, सूँघते हैं। वृक्ष में रसनेंद्रिय भी हैं। वे अचेतन नहीं हैं।**[9]

प्रकृति के प्रति पूर्वी तथा पश्चिमी दृष्टि

लेकिन 1909 ई0 में जब 'हिंद स्वराज' प्रकाश में आई तो उसे विद्वानों ने पश्चिमी व पूर्वी सभ्यता के बीच विमर्श के रूप में स्वीकार किया। दरअसल पूर्व और पश्चिम के बीच का यह द्वंद्व या सभ्यता दृष्टि प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण को दर्शाता है। गाँधी भारतीयों को यह बताने के लिए चिंतित थे कि उनके लिए आधुनिक सभ्यता साम्राज्यवाद से बड़ी चुनौती खड़ी कर रही

है। उपनिवेशवाद आधुनिक सभ्यता की उपज है, इसलिए वे कहते हैं कि अंग्रेज हमारी गुलामी के लिए जिम्मेदार नहीं हैं, बल्कि हम स्वंय है। हमने आधुनिक सभ्यता के सामने अपने आपको समर्पित कर दिया है। स्वैच्छिक सादगी और गरीबी का सौंदर्य भारतीय संस्कृति में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। आधुनिक सभ्यता के पैरोकारों ने बड़े–बड़े दावे किए। अभाव और गरीबी से मुक्ति का मोहक सपना दिखाया। औद्योगिक क्रांति के घोड़े पर चढ़कर आधुनिक सभ्यता जहाँ पहुँची है, उसने यह साफ कर दिया है कि एक ओर अभाव और गरीबी बढ़ी है, विषमता की खाई चौड़ी हुई है। वहीं दूसरी ओर पर्यावरण के असंतुलन ने मानव सहित संपूर्ण जैव–जगत् के लिए अस्तिव का संकट पैदा कर दिया है। एलविन टॉफ्लर वर्तमान सभ्यता को अंतर्विरोध बढ़ाने वाला, गॉलवेथ निरर्थक समानों के उत्पादन की सभ्यता तथा शुमाकर इसे शांति का नाश करने वाली बताते हैं। इस सभ्यता से पूँजी का केंद्रीकरण हुआ है, लेकिन श्रम का समाजीकरण नहीं हुआ, गाँधी कहते है कि पूर्वी सभ्सता आस्तिकतवादी है, जबकि पश्चिमी सभ्यता का झुकाव अनीति को दृढ़ करने की ओर है, नास्तिकवादी है। पश्चिमी सभ्यता के ये दोष यूरोप की आधुनिक सभ्यता का है। वह सभ्यता असभ्यता है। **एडवर्ड कारपेंटर** ने सभ्यता को एक प्रकार का रोग कहा है। गाँधी जी कहते हैं कि हम उसी सभ्यता की मोह में फँसते जा रहे हैं। दरअसल मनुष्य जो स्वप्न देखता है, उसे निद्रा के वश में रहने पर सच ही मान लेता है। आधुनिक सभ्यता की निशानी को गाँधी ने निम्नलिखित संदर्भों में देखा है– भौतिक खोज और शारीरिक सुख, शरीर का श्रृंगार, अत्याधुनिक मारक हथियार, तीव्रगति के वाहन, पैसे और सुख का लालच, रोग एवं अस्पताल की भरमार, यह सब सभ्यता की निशानी मानी जाती है। यह अधर्म है, यह नाशकारी एवं नाशवान है। गाँधी भारतीय सभ्यता को संसार की सर्वोत्तत सभ्यता मानते हैं। गाँधी की दृष्टि में आधुनिक और प्राचीन सभ्यता के बीच संघर्ष का प्रतीक ही अंग्रेजी राज है।

'हिंद स्वराज' में गाँधी ने सभ्यता के प्रतीकों के प्राकृतिक विनाश का स्वागत किया था (रेल, अस्पताल आदि), क्योंकि यह शुद्ध व उच्च सभ्यता की निशानी नहीं हैं। दक्षिण अफ्रीका के अनुभवों से उन्होंने समझ लिया था कि आधुनिक सभ्यता ही साम्राज्यवाद का मूल कारण है। लेनिन साम्राज्यवाद को पूँजीवाद की उपज मानते हैं। वहीं गाँधी साम्राज्यवाद को आधुनिकता से जोड़ते हैं। गाँधी ने 1896 ई0 में क्रिसमस के दिन तथा 1908 ई0 में जोहान्सबर्ग में इस विषय पर व्याख्यान दिया था।[10]

'1889 में सिविलाइजेशन : इटस कोर्स क्योर' पुस्तक में कारपेंटर भी स्वीकार करते हैं कि पूरी मानव जाति इस सभ्यतारूपी बीमारी से त्रस्त एवं ग्रस्त है। उन्होंने माना है कि इस सभ्यता से मानव जाति बहुत जल्द खत्म हो जाएगी। **'गीता'** और **'ईशोपनिषद्'** का प्रभाव गाँधी पर गहरा पड़ा है। जो ईश्वर को सारे जगत् का संचालक मानता है और जीवन को उसका आधार

बताता है, इसलिए उसके नाम से त्याग को जायज मानता है और आवश्यकतानुसार भोग की स्वीकृति देता है। **'हिंद स्वराज' के पूर्व सखाराम गणेश देउसकर की पुस्तक 'देशेर कथा' 1904 ई0 में प्रकाशित हुई।** इस पुस्तक में अंग्रेज विद्वानों के आधार पर यह सिद्ध करने की कोशिश की गई है कि भारत के पर्यावरणीय विनाश से अंग्रेजों की औद्योगिक सभ्यता का विकास हुआ है। मिस्टर डिग्वी के हवाले से उन्होंने बताया है कि खेती की जमीन में वृद्धि हुई, लेकिन उपज कम होती गई। उन्नीसवीं सदी में कुल 18 बार अकाल पड़ा, जिससे करोड़ों लोग मरे और पालतू पशुओं की संख्या लगातार कम होती गई। ऐसे ही तथ्य **दादाभाई नैरोजी की पुस्तक पॉवर्टी एण्ड अनब्रिटिश रूल इन इंडिया** में भी उद्धृत किया है[6] जिसके आधार पर यह सिद्ध किया गया है कि अंग्रेजों के धनहरण से भारत केवल गरीब ही नहीं हुआ है, बल्कि उसका ज्ञान और अनुभव भी विनष्ट हो गया है।[11]

दूसरी ओर ईसाई, यूनानी और रोमन परंपराओं में बताया गया है कि ईश्वर ने मानव को अपनी आकृति देकर कहा कि जाओ और अपनी जनसंख्या बनाने में सफल हो, प्रकृति पर अपनी सत्ता कायम करो। इसी विचार को संवर्धित किया। पशु–पक्षी मनुष्य के भोज्य बन गए। चमड़े और हड्डियों का भी उपयोग होने लगा। जंगल कटे, पहाड़ तोड़े गए, बीहड़ों को धीरे–धीरे समाप्त किया जाने लगा। रत्नगर्भा प्रकृति का अप्रकृतिक दोहन शुरू हुआ। 16वीं और 19वीं शताब्दी में इंग्लैंड में बाजार की अर्थव्यवस्था फैली, जिससे किसानों और खेतों के बीच पारंपरिक रिश्ते टूट गए। European Ecology in Transition नामक लेख में कोरोलिन मरचेंट ने यहाँ की जमींदारी व्यवस्था और जमीन के शोषण का वर्णन किया है। इस कारण किसान विद्रोह और गृहयुद्ध भी हुए, लेकिन विकास के नाम पर बाजारीकरण का दौर प्रारंभ हो गया। यूरोप की इसी सभ्यता ने विश्व के अन्य देशों को भी शोषण का शिकार बनाया। औपनिवेशिक काल में लूट की अर्थव्यवस्था ने पर्यावरण की समस्या के सभी मापदंडों को तोड़ डाला। भारत का गाँव जिन सामानों को स्थानीय स्तर पर सिर्फ अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बनाता था, बल्कि अपने पड़ोसी देशों में हाथ के बने हुए सामान का निर्यात भी करता था। वे धीरे–धीरे बड़े उद्योगों द्वारा निर्मित होने लगे। भारत की लूट से इंग्लिस्तान ने आश्चर्यजनक रूप से औद्योगिक तंत्र में उन्नति की। **रिचर्डस लॉर्ड वेलेसली** और **हेनरी गूगर** ने विस्तार से भारत के ग्रामीण उद्योगों के विनाश और अंग्रेजों के अत्याचार को रेखांकित किया है।

जीव तथा अजीव सभी में देवत्व की भारतीय संस्कृति

शारडींगर, हाइजनवर्ग आदि वैज्ञानिकों ने विज्ञान एवं आत्मज्ञान के बीच समन्वय बनाने का प्रयास किया है। **भारतीय धर्म और संस्कृति में पुरूष औश्र प्रकृति, भौतिकवाद एवं अध्यात्मवाद का अनुपम सामंजस्य हुआ है। यहाँ मनुष्यों में, पशु–पक्षियों, वनस्पतियों**

एवं जड़ पदार्थों में पूज्य भाव पाया जाता है। यह तत्त्वमीमांसा और वैज्ञानिकता पर आधारित है। यहाँ चर–अचर भौतिक और अभौतिक का भेद समाप्त हो जाता है। **'ऋग्वेद'** की देवमीमांसा में वायु, जल, अग्नि, आकाश, सूर्य, चंद्र तारिकाएँ, नक्षत्र आदि प्राकृतिक जगत् के सारे तत्त्वों में देवतत्त्व आरोपति करने का भाव प्राकृतिक संरक्षण का आध्यात्मिक आधार है। भारतीय दृष्टि में प्रकृति को माता माना गया और उसकी सुरक्षा को धर्म कहा गया है। धार्मिक परंपरा में दशावतार का वर्णन है। वृक्ष एवं पर्वत की पूजा कर भारतीय धर्म ने पर्यावरण की सुरक्षा का पदार्थ पाठ सिखाया है। साथ ही देव–देवी के वाहनों में गणेश को चूहा, लक्ष्मी को उल्लू, सरस्वती को हंस, विष्णु को गरूड़ आदि देकर पशु संरक्षण का अव्यक्त विधान किया है। उसी तरह नागपंचमी में नाग की पूजा, कूप और तालाब बनाकर जल–संरक्षण को धर्म बनाना आदि कई उदाहरण हैं। इस प्रकार भारतीय धर्म परंपरा में व्यक्त रूप से विज्ञान को जोड़कर ज्ञान–संप्रेषण की समवाय पद्धति का उपयोग प्राकृतिक सरंक्षण के लिए किया गया है। इस संदर्भ में कुछ प्रसिद्ध मंत्र उल्लेखनीय हैं– **"ऊँ धौ शान्तिः! अन्तरिक्ष शान्ति। पृथ्वी शानितः आपः शान्तिः। औषध्यो शान्तिः। वनस्पत्यः शान्तिः। विश्वेदेवा शान्तिः। ब्रह्मा शान्तिः। शांति देव शान्तिः। सामाशान्ति रोध।**[12]

विज्ञान तथा आत्मज्ञान

विनोबा अध्यात्म और विज्ञान को एक रूप देते हैं। एक सृष्टि का बाह्य पहलू है तो दूसरा आंतरिक, इसलिए वे कहते हैं कि विज्ञान और आत्मज्ञान के मिलन से ही धरती पर स्वर्ग आएगा। विज्ञान नीति निरपेक्ष है, **न वह नैतिक है, न अनैतिक।** इस अंग का काफी विस्तार हुआ है, यानी विज्ञान ने अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया है। वैसे ही आत्मा अनंत गुणों का विकास होना चाहिए। विनोबा मनुष्यरूपी पक्षी के दो पंख आत्मज्ञान और विज्ञान को बताते हैं। आज की समस्या विज्ञान के एकांगी विकास के कारण पैदा हुई है। आत्मज्ञान नियंत्रण की विचार बताता है। विज्ञान गति देता है और आत्मज्ञान दिशासूचक है। इस प्रकार विज्ञान पाँव है और आत्मज्ञान आँ। सृष्टि की शक्तियों का भाव होना, उनका ज्ञान होना और काबू में आना अच्छी बात है, लेकिन उनका उपयोग बाँटवारा, नियोजन और उपभोग कैसे करें, यह आज मनुष्य जानता नहीं है या जानता है तो गलत जानता है। न जानना और गलत जानन, दोनों कारणों से वह दुःखी है। आत्मज्ञान को विज्ञान के आगे चलना होगा, विज्ञान तो उसका अनुगामी होगा। अध्यात्म को भी विस्तार देना होगा, विज्ञान जितना बढ़ेगा, आत्मज्ञान को उठाना ही विस्तार मिलना चाहिए। दोनों ही सत्य की खोज करते है, ज्ञान की खोज करते हैं। इन दोनों के मिलन से विश्व–ज्ञान बनता है। विज्ञान और आत्मज्ञान दोनों के ही हमले मन पर हैं। **उपनिषदों में कहा गया है, 'प्राणों ब्रहोति' मनों ब्रहोति, विज्ञान ब्रहोति।**[13]

पर्यावरणीय प्रश्न

पर्यावरण प्रदूषण को लोग प्रगति की निशानी मानते है। ब्राजील के प्रतिनिधिमंडल ने यहाँ तक कह डाला कि धुँआ तो प्रगति की निशानी है। **ब्रिटेन के मार्ग्रेट थेचर सरकार** के पर्यावरण मंत्री ने 1972 ई. के संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन में कहा था कि पश्चिम में पर्यावरण संबंधी कोई समस्या नहीं है, वह मुख्यतः तीसरी दुनिया के देशों की ही समस्या है। दूसरी ओर तीसरी दुनिया के लोगों का यह लगता है कि पर्यावरण की बात पश्चिमी षड़यंत्र है। तीसरी दुनिया के देश मानते हैं कि विकसित देशों ने अपने विकास के लिए उनका पर्यावरण बिगाड़ा है। विकासशील देशों को सिर्फ अपने उद्योगों के लिए ही नहीं, बल्कि पश्चिमी दुनिया के उद्योगों के लिए भी कच्चा माल आपूर्ति करने का बोध उठाना पड़ा रहा है। दूसरी ओर उनके यहाँ औद्योगिक और एटमी कचरे को खपाने तथा तेजाबी बारिश का खतरा है। वायुमंडल में ताप संतुलन की समस्रूा हो गई है। ग्रीन हाउस प्रभाव से ग्लेशियर पिघलने के कारण समुद्र का जलस्तर बढ़ रहा है। औद्योगीकरण से कार्बन डाइ ऑक्साइड की मात्रा बढ़ रही है, जिससे एग्रो को सिस्टम प्रभावित हो रहा है।

वस्तुतः उपभोक्तावादी विलासी जीवन–संस्कृति एवं दोषपूर्ण विकास नीति के कारण प्राकृतिक संसाधनों–जंगल, जल एवं खनिज–संपदा का तेजी से ह्रास हुआ पहाड़ नंगे हो गए, जंगल कट गए। जंगलों के कटने से भूमि का क्षरण हुआ। दोषपूर्ण सिंचाई–योजनाओं एवं पानी के व्यवस्था, रासायनिक खादें और कीटनाशकों के उपयोग, खनिज संपदा के दोहन आदि ने धरती की भारी नुकसान पहुँचाया। बड़े बांध बनाने की अंधी और अविवेक पूर्ण होड़ के कारण जलस्त्रोत को भारी नुकसान पहुँचा है। कारखानों से निकलने वाले जहरीले तत्व से नदी, तालाब, भूमि आदि प्रदूषित हुई है। भारत की स्वतंत्रता के बाद भारत के निर्माताओं का स्पष्ट मत था कि जब तक उत्पादन नहीं बढ़ेगा, उद्योगों में काफी धन नहीं लगाया जाएगा, तब तक राष्ट्र की आय नहीं बढ़ेगी। औद्योगिकीकरण के बगैर विकास असंभव है, लेकिन गांधीजी ने 1909 ई. में ही अपनी पुस्तिका 'हिंद स्वराज' के माध्यम से इस अंधे विकास के खतरों से हमें सचेत कर दिया था।[14]

खेती के प्रमुख आधार जल, जंगल और जमीन आज प्रदूषण के शिकार हो चुके हैं। तीन–चौथाई उपलब्ध जल में से एक प्रतिशत जल का ही हम उपयोग कर पाते हैं। सबसे अधिक जल का उपयोग खेती के लिए ही होता है। पेयजल के अधिकांश स्त्रोत प्रदूषित हो चुके हैं। पूरे देश की अधिकांश नदियों को कल–कारखानों ने प्रदूषित कर दिया है। गोमती, गंगा, ताप्ती, दोमोदर आदि नदियाँ विषैली हो गई हैं। दूसरी ओर, सिंचाई और बाढ़ नियंत्रण के नाम पर किए गए प्रयासों का परिणाम भी उलटा ही हुआ है। तटबंध बनाने के बाद भी बाढ़–क्षेत्र बढ़ता जा रहा है। विश्व की 60 प्रतिशत विपदा भारत में ही होती है। लगभग 10

मिलियन हेक्टेयर जमीन प्रतिवर्ष बाढ़ से प्रभावित हो रही है। यह भी अनुमान किया गया है कि विश्व में बाढ़ से मरनेवालों में हर पाँचवाँ व्यक्ति भारत का होता है। बाढ़ के कारण लाखों लोग प्रतिवर्ष विस्थापित होते हैं। भूमिगत जल का स्तर निरंतर गिर रहा है। जंगलों की कटाई से भू–क्षरण बढ़ रहा है। नदियाँ उथली हो गई हैं। नतीजन बाढ़ और सुखा हमारे लिए स्थायी विपदा बन गए हैं। ग्लेशियर अदृश्य होते जा रहे है। पर्यावरण प्रदूषण के लिए मुख्य रूप से जनसंख्या वृद्धि, प्राकृतिक संसाधनों का दोहन, कल–कारखानों का विकास, वाहनों की वृद्धि और आणविक विस्फोट को जिम्मेदार माना जाता है। **पर्यावरणविद् सुंदरलाल बहुगुणा ने कहा है कि "भोगवादी संस्कृति के बढ़ते प्रभाव से मानव का अस्तित्व खतरे में पड़ता जा रहा है।** यदि समय रहते इस पर ध्यान नहीं दिया गया तो इसका असामयिक अंत निश्चित है।"[15] पर्यावरण संरक्षण के लिए सकार के कई कानून बनाए हैं। देश में पर्यावरण से संबंधित 200 से अधिक कानून मौजूद है। 42 वें संशोधन के तहत संविधान में पर्यावरण संबंधी मुद्दों को शामिल किया गया। नीति निर्देशक तत्वों में अनुच्छेद–47(अ) जोड़ा गया, जिसके तहत राज्य सूची से इसे समवर्ती में कर दिया गया।

पांडुरंग हेगड़े, जो 'चिपको आंदोलन' के नेता हैं, ने कहा है कि सरकार पर्यावरण आंदोलन को मदद देने की बजाय अपने विशेषज्ञों के जरिए इसके खिलाफ काम करती है। वस्तुतः संकट जितना गहरा हुआ है, समाधान के उपाय भी उतने दुरूह होते चले जा रहे हैं।[16] पर्यावरण के प्रति लोगों की चिंता बढ़ी है। मानवीय आधारों पर पर्यावरण के सवालों का विश्लेषण किया जाने लगा है। विश्व के अलग–अलग भागों में जागरूक नागरिक पर्यावरण का सवाल खरे कर रहे हैं। परिस्थिति अनुकूल हुई है।[17] **पर्यावरणविद् अनुपम मिश्र की पुस्तक 'राजस्थान की रजत बूदें'** और **'आज भी खरे हैं तालाब'** ने लोगों को जाग्रत् किया है। कई रचनात्मक आंदोलन गांधीय आंदोलन का ही विस्तार है। पर्यावरण की समस्या के जितने भी समाधान सुझाए जा रहे हैं,[18] उनपर गांधी विचार की छाप स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। यदि पर्यावरण की समस्या के मूल में भोगवादी संस्कृति है तो उसका विकल्प निश्चित रूप से भोगवाद–विरोधी संस्कृति ही हो सकती है और गांधी ने सदैव भोगवादी संस्कृति की भर्त्सना की थी। गांधी ने कहा था– "प्रकृति के पास उतना सबकुछ है, जिससे वह मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके, लेकिन एक भी व्यक्ति के लोभ को पूरा करने की क्षमता प्रकृति के पास नहीं है।" उन्होंने कहा, "मनुष्य की वृत्तियाँ चंचल हैं। उसका मन बेकार की दौड़–धूप किया करता है। उसका शरीर जैसे–जैसे ज्यादा दिया जाए, वैसे–वैसे ज्यादा माँगता है। ज्यादा लेकर भी वह सुखी नहीं होता। भोग भोगने से भोग की इच्छा बढ़ती जाती है।" गांधी गाँवों को स्वावलंबी बनाना चाहते थे। उन्होंने कहा था, "अगर हमें अहिंसा की दृष्टि से काम करना हो तो इसके सिवा मैं उसका कोई हल नहीं देखता।" गांधी ने भारत को पश्चिमी औद्योगीकरण के शाप से बचाना चाहते थे।[19]

भारतीय परंपरा में नाशकारी होड़ को जगह नहीं दी गई है। हाथ–पैरों, का इस्तेमाल करने में सच्चा सुख माना गया है। गांधीजी ने कहा था कि "यंत्रों के कारण शहर बनते हैं, पर शहर खड़े करना बेकार की झंझट है। उनमें लोग सुखी नहीं होंगे। गरीब अमीरों से लूटे जाएँगे।" उन्होंने स्वदेशी का विचार दिया। स्वदेशी व्रत अपना कर शारीरिक श्रम को प्रतिष्ठा दी जा सकती है। गांधी शारीरिक श्रम को अनिवार्य कर जीवन–संग्राम के बजाय परस्पर–सेवा की होड़ पैदा करना चाहते थे। उनका मानना था कि इससे पशु धर्म के स्थान पर मानव धर्म कायम हो जाएगा।

भारतीय दर्शन में जीवों के प्रति प्रेम के धार्मिक नियम का आधार ईश्वर पर विश्वास है। ईश्वर ने जंतुओं को मनुष्य के विनाश के लिए नहीं रचा है। गांधी ने कहा है कि "शेर, साँप, दूसरे जहरीले जानवर और रेंगने वाले जानवर हमारे सजातीय हें तथा हमारी ही तरह ईश्वर की सृष्टि होने के नाते उनको भी जीवित रहने का उतना ही अधिकार है।" गाँधी प्रेम के जीवन और अहिंसा के समाज पर जोर देते थे। उन्होंने हिंदुस्तान की पारंपरिक ईश्वरीय और मानवीय सभ्यता के आधार पर पर्यावरण संरक्षण का सिद्धांत दिया, जो प्राकृतिक जीवन–पद्धति से अलग नहीं है। गांधी विकास के विरोधी नहीं है, बल्कि वे विकास को आत्मज्ञान की दृष्टि देना चाहते हैं। समुचित तकनीक की दृष्टि में इसे संपूर्ण रूप से देखा जा सकता है। हजारों वर्ष पूर्व महर्षि कणाद ने सर्वांगीण उन्नति की व्याख्या करते हुए कहा था, **'यतोभ्युदयनि : श्रेयस सिद्धिः स धर्मः** जिस माध्यम से अभ्युदय अर्थात् भौतिक दृष्टि से तथा निःश्रेयस, यानी आध्यात्मिक दृष्टि से सभी प्रकार की उन्नति प्राप्त होती है, उसे धर्म कहते है।'[20]

गांधी जी की स्वच्छता सम्बंधी दृष्टि

स्वच्छता का संबंध साफ–सफाई से है। यह आभ्यंतर और बाह्य दो प्रकार की होती है। अभ्यंतर स्वच्छता का संबंध व्यक्ति के आध्यात्मिक एवं मानसिक आचार–व्यवहार से है। बाह्य स्वच्छता घर–द्वार, पास–पड़ोस और पर्यावरण की है। आज यह व्यक्ति स्तर पर, सामाजिक स्तर पर और राष्ट्र के स्तर पर एक व्यापक चर्चा और कार्य का विषय बन चुकी है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के लिए भी स्वच्छता एक महत्वपूर्ण सामाजिक मुद्दा था। उन्होंने किसी भी सभ्य और विकसित मानव–समाज के लिए इसके उच्च मानदंड की आवश्यकता को समझा। सन् 1895 में ब्रिटिश सरकार ने दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों और एशियाई व्यापारियों से उनके स्थानों को गंदा रखने के आधार पर भेदभाव किया था। एतदर्थ **महात्मा गांधी ने भारतीय स्वतंत्रता–आंदोलन के दौरान इस विषय पर स्पष्ट कहा था कि स्वतंत्रता से अधिक महत्वपूर्ण स्वच्छता है।**

भारत में गांधीजी की स्वच्छता के संदर्भ में सार्वजनिक रूप से पहला भाषण 15 फरवरी,

1916 में मिशनरी–सम्मेलन के दौरान दिया था। इनहोंने वहाँ कहा था– देशों भाषाओं के माध्यम से शिक्षा की सभी शाखाओं में जो निर्देश दिए गए है, मैं स्पष्ट कहुँगा कि उन्हें आश्चर्यजनक रूप से समूह कहा जा सकता है। गाँव की स्वच्छता के सवाल को बहुत पहले हल कर लिया जाना चाहिए था।"[21] लोक–सेवक–संघ के सविधान मसौदे में उन्होंने कार्यकर्त्ताओं के संबंध में जो लिखा था, वह इस प्रकार है, "कार्यकर्ता को गांव के स्वच्छता और सफाई के बारे में जागरूक करना चाहिए और गांव की स्वच्छता और सफाई के बारे में जागरूक करना चाहिए और गांव में फैलानेवाली बीमारियों को रोकने के लिए सभी जरूरी कदम उठाने चाहिए।"[22]

गांधीजी सन् 1915 में जब दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे तो उन्होंने गोपालकृष्ण गोखले की सलाह पर भारत–यात्रा शुरू की। इसी क्रम में वे पहले कविगुरू रवींद्रनाथ टैगोर से मिलने कोलकाता गए और फिर महात्मा मुंशीराम से मिलने हरिद्वार आए। **गांधीजी ने अपनी हस्तलिखित डायरी में कलकत्ता और हरिद्वार में मैला साफ करने के लिए गड्ढे खोदने और मल को स्वयं मिट्टी से ढकने का उल्लेख किया है। डायरी में उन्होंने लिखा है कि "ऋषिकेश और लक्ष्मण झूले के प्राकृतिक दृश्य मुझे बहुत पसंद आए।** परंतु दूसरी ओर मनुष्य की कृति को वहाँ देख चित्त को शांति न मिली। हरिद्वार की तरह ऋषिकेश में भी लोग रास्तों और गंगा के सुंदर किनारों को गंदा कर डालते थे। गंगा की पवित्रता बिगाड़ते उन्हें कुछ संकोच न होता था। लोग दिशा–जंगल जानेवाले आम जगह और रास्तों पर ही बैठ जाते थे, यह देखकर मेरे चित्र को बढ़ी चोट पहुँची।"[23]

गाँधीजी रेलवे के तृतीय श्रेणी के डिब्बे में बैठकर पूरे देश की यात्रा करते थे। वे भारतीय रेलवे के तीसरी श्रेणी के डिब्बे की गंदगी से स्वब्ध और भयभीत थे। 15 सितंबर, 1917 को सबका ध्यान आकृष्ट करते हुए उन्होंने लिखा, "इस तरह की संकट की स्थिति में तो यात्री परिवहन को बंद कर देना चाहिए, लेकिन जिस तरह की गंदगी और स्थिति इन डिब्बों में है, उसे जारी नहीं रहने दिया जा सकता, क्योंकि वह हमारे स्वास्थ्य और नैतिकता को प्रभावित करती है। निश्चित तौर पर तीसरी श्रेणी के यात्री को जीवन की बुनियादी जरूरतें हासिल करने का अधिकार तो है। तीसरे दर्जे के यात्री की उपेक्षा कर हम लाखों लोगों को व्यवस्था, स्वच्छता शालीन जीवन की शिक्षा देने, सादगी और स्वच्छता की आदतें विकसित करने का बेहतरीन मौका गाँव है। "[24]

गाँधीजी ने धार्मिक स्थलों में फैली गंदगी की ओर भी ध्यान दिलाया था। 3 नवंबर 1917 को गुजरात–राजनीतिक सम्मेलन में उन्होंने कहा था, "पवित्र तीर्थ–स्थान डाकोर जी वहाँ से बहुत दूर नहीं है। मैं वहाँ गया था। वहाँ की पवित्रता की कोई सीमा नहीं है। मैं स्वयं को वैष्णव–उक्त मानता हूँ इसलिए मैं डाकोरजी की स्थिति की विशेष रूप से आलोचना कर

सकता हूँ। उस स्थान पर गंदगी की ऐसी स्थिति है कि स्वच्छ वातावरण में रहने वाला कोई व्यक्ति वहाँ 24 घंटे तक भी नहीं ठहर सकता। तीर्थ–यात्रियों ने वहाँ टैंकरों और गलियों को प्रदूषित कर दिया है।[25]

इसी तरह **'यंग इंडिया'** में 3 फरवरी, 1927 को उन्होने बिहार के पवित्र शहर गया की गंदगी के बारे में भी लिखा और यह स्पष्ट किया कि उनकी हिन्दू आत्मा गया के गंदे नालों में फैली गंदगी और बदबू के खिलाफ बगावत करती है।" महात्मा गाँधी कहा करते थे कि आरोग्य रहने के लिए स्वच्छता जरूरी है, पर सफाई का मतलब नहाना भर नहीं है। नहाने का अर्थ है, शरीर का मैल साफ करके त्वचा के छिद्रों को खोलना। इसमें बच्चों और बड़ों दोनों में लापरवाही दिखाई देती है। सफाई को भगवान् की पूजा से भी अधिक महत्व देनेवाले गांधीजी ने अपने बचपन में ही भारतीयों में स्वच्छता के प्रति उदासीनता को महसूस कर लिया था। **एक बार एक अँग्रेज ने महात्मा गांधी से पूछा, "यदि आपको एक दिन के लिए भारत का बड़ा लाट (वायसराय) बना दिया जाए तो आप क्या करेंगे?" गांधीजी ने कहा, "राजभवन के पास जो गंदी बस्ती है, मैं उसे साफ करूँगा।" अँग्रेज ने फिर पूछा, "मान लीजिए कि आपको एक और दिन उस पद पर रहने दिया जाए तब?" गांधीजी ने फिर कहा, "दूसरे दिन भी वही करूँगा।** जब तक आप लोग अपने हाथ में झाड़ू और बाल्टी नहीं लेंगे, तब तक आप अपने नगरों को साफ नहीं रख सकते।"[26]

निष्कर्ष

संक्षेप में कहें तो गांधी का जीवन राजनीतिक गतिविधियों के तूफान में था, मगर उन्होंने सामाजिक परिवर्तन के एजेंडे को कभी भी अपने ध्यान से ओझल नहीं होने दिया। उनके लिए राष्ट्रीय स्वतंत्रता–प्राप्त करना मात्र आधी कहानी थी। वे इसके साथ–साथ जाति और पेशे पर आधारित संस्थागत सामाजिक विभेद से कलुषित व्यवस्था को सुधारना चाहते थे। उन्हें अस्पृश्यता में एक ऐसा भयानक 'न्यूरो–सोशल ट्यूमर' दिखता था, जो मानव–सभ्यता के जीवन–तत्त्वों का नाश कर सकता है। महात्मा गाँधी के लिए स्वच्छता–व्यवस्था और अस्पृश्यता–उन्मूलन एक समग्र मूल्य, सुचिंतित रणनीति और जीवनभर चलनेवाले मिशन थे।

गांधी विकास के विरोधी नहीं है, बल्कि वे विकासवाद को आत्मज्ञान की दृष्टि देना चाहते हैं। समुचित तकनीक की दृष्टि में इसे संपूर्ण रूप से देखा जा सकता है। **हजारों वर्ष पूर्व महर्षि कणाद ने सर्वांगीण उन्नति की व्याख्या करते हुए कहा था, 'यतोभ्युदयनि : श्रेयस सिद्धिः स धर्मः** जिस माध्यम से अभ्युदय अर्थात् भौतिक दृष्टि से तथा निःश्रेयस, यानी आध्यात्मिक दृष्टि से सभी प्रकार की उन्नति प्राप्त होती है, उसे धर्म कहते है।'

संदर्भ सूची

1. सुरेश सोनी, ***भारत में विज्ञान की उज्जवल परंपरा***, अर्चना प्रकाशन, भोपाल, 2005, पृ0 136
2. मनोज कुमार, ***गाँधी की पर्यावरण दृष्टि***, साहित्य अमृत (मासिक पत्रिका), प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020, पृ0 126
3. ***सम्पूर्ण गांधी वांग्यमय,*** सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, खण्ड–19, पृ0 57
4. रामचंद्र गुहा, ***द अनक्वायट वुड्स : इकॉलोजिकल चेंजेज एण्ड पीजेंट रेजिस्टेंट्स इन हिमलया,*** ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1989, पृ0 132–179
5. अमिता बविष्कर, ***इन इ बेली ऑफ द रिवर : ट्राइबल कंफ्लिक्ट ऑवर डेवलपमेंट इन द नर्मदा वैली,*** नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2004, पृ0 222
6. रामचंद्र गुहा, ***"आदिवासी नक्सलाइट एण्ड इंडियन डेमोक्रेसी", इकॉनोमिक एण्ड पॉलीटिकल वीकली, मुम्बई,*** 2007 भाग–42, पृ0 32
7. रामचंद्र गुहा, ***महात्मा गांधी एण्ड इन्वायरमेंटल मूवमेंट इन इंडिया,*** **अर्ने कलांद और गियार्ड पियर्सन (सं0),** ***इन्वायरमेंटल मूवमेंट्स इन एशिया में उपलब्ध, रूले, न्यूयॉर्क,*** 2013, पृ0 65
8. गीतोंजय साहू, ***पीपल पार्टिसिपेशन इन इन्वायरमेंटल प्रोटेक्शन : ए केस स्टडी ऑफ पंटोरू, इंस्टीच्यूट फॉर सोशल एण्ड इकॉनोमिक चेंज,*** बेंगलुरू, 2007, पृ0 07
9. सुरेश सोनी, पूर्वोद्धत, पृ0 136–139
10. ***सम्पूर्ण गांधी वांग्यमय,*** पूर्वोद्धत, पृ0 244
11. सखराम गणेश देउसकर, ***देश की बात***, नेशनल बुक्स ट्रस्ट ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, 2006, पृ0 105
12. सुंदरलाल, ***भारत में अंग्रेजी राज,*** द्वितीय भाग, प्रकाशन विभाग, 2000, चतुर्थ, पृ0 126
13. विनोबा साहित्य, ***साहित्य और आत्मज्ञान–विज्ञान***, गांधी हरिटेज पोर्ट्रल, खण्ड 12, पृ0 473
14. मोहनदास करमचंद गांधी, ***हिन्द स्वराज,*** नवजीवन पब्लिकेशन हाउस, अहमदाबाद, 1938, पृ0 94
15. सुंदरलाल, पूर्वोद्धत, पृ0 126
16. रामचंद गुहा, ***द अनक्वायट वुड्स : इकॉलोजिकल चेंजेज एण्ड पीजेंट रेजिस्टेंट्स इन हिमलया,*** , पूर्वोद्धत, पृ0 153
17. अमिता बविष्कर, पूर्वाद्धत, पृ0 22

18. अनुपम मिश्र, ***राजस्थान की रजत बूदें,*** पर्यावरण कक्ष, गाँधी शांति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, 1995, पृ0 52
19. रामचंद्र गुहा, ***इन्वायरमेंटलिज्म : ए ग्लॉबल हिस्ट्री, नई दिल्ली,*** 2014**,** पृ0 28–34
20. सुरेश सोनी, पूवोद्धत, पृ0 12
21. ***सम्पूर्ण गांधी वांग्यमय,*** पूर्वाद्धत, खण्ड–13, पृ0 222
22. वही, खण्ड–10, पृ0 528
23. वही, खण्ड–19, पृ0 217
24. वही, खण्ड–14, पृ0 57
25. वही, खण्ड–54, पृ0 104

औपनिवेशिक भूमि बंदोबस्त एवं जनजातीय विस्थापन : छोटानागपुर के विशेष संदर्भ में, 1880 ई.–1908 ई.

महेश ठाकुर*

सारांश

भारतीय उपमहाद्वीप के संदर्भ में जनजातीय विस्थापन, विद्वानों के बीच एक लंबे समय से गंभीर चर्चा का विषय रहा है। इन चर्चाओं में जनजातियों के अपनी मातृभूमि से विकर्षण के अनेक कारकों एवं सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है। प्रस्तुत आलेख उन तमाम परिस्थितियों पर केंद्रित है, जो औपनिवेशिक भूमि कानूनों के द्वारा छोटानागपुर के क्षेत्र में सृजित हुई हैं। छोटानागपुर में आरोपित भूमि कानूनों ने स्थानीय जनजातियों के स्थायित्व पर प्रश्न चिन्ह लगाते हुए उन्हें पलायन के लिए विवश किया। ये कानून उनके सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन के कारक बने और 1880 ई० से 1908 ई० के बीच जनजातीय विस्थापन के साक्षी रहे। यह आलेख उन सभी भूमि कानूनों की विवेचना उस सीमा तक करता है, जिसके तहत छोटानागपुर के आदिवासियों को उनकी पारंपरिक भूमि अधिकारों से वंचित कर दिया गया और वे अपने घर व जमीन को छोड़कर भूमिहीन मजदूरों के रूप में असम से लेकर अंडमान तक पलायन करने को विवश हो गए। इसके अलावा जनजातीय विस्थापन के मौसमी तथा स्थायी स्वरूपों की चर्चा इस आलेख की प्रमुख विषय–वस्तु होगी।

मुख्य संकेतक : खूंटकट्टी भूमि, भुइँहरी भुमि, पडहा, पट्टी, काश्तकारी.

भूमिका

औपनिवेशिक काल में छोटानागपुर का पठार तत्कालीन बिहार राज्य के दक्षिणी जनजातीय प्रदेश के रूप में विद्यमान था। अंग्रेजी सत्ता की स्थापना के पश्चात् प्रशासनिक सुविधाओं के मद्देनजर छोटानागपुर डिवीजन की स्थापना की गई, जिसमें पाँच जिलों राँची, हजारीबाग, पलामू, मानभूम तथा सिंहभूम को शामिल किया गया, जो बिहार एवं बंगाल के अपने निटवर्ती क्षेत्रों की तुलना में 300 से 600 मीटर ऊँचा (समुद्रतल से) एक पठारी प्रदेश था।[1] इसकी भौगोलिक पृष्ठभूमि इसे अन्य क्षेत्रों से विशेष बनाती थी। यद्यपि छोटानागपुर के क्षेत्र में जनजातीय विस्थापन कोई नई घटना नहीं थी। अस्थायी अथवा मौसमी विस्थापन के साक्ष्य मध्यकाल से ही मिलते हैं, जहाँ "धांगर" के रूप में जनजातीय कृषक मजदूरों का बंगाल तथा निकटवर्ती प्रदेशों में आवागमन स्पष्ट

*शोधार्थी यू०जी०सी० नेट / जे०आर०एफ०

रूप से दिखाई देता है। ये धांगर बंगाल, बिहार, मध्यप्रदेश आदि राज्यों में विभिन्न कृषि कार्यों के लिए मजदूरों के रूप में जाते थे।[2] परंतु औपनिवेशिक सत्ता की स्थापना के बाद इस प्रक्रिया में तीव्रता आई।

औपनिवेशिक छोटानागपुर में भूमि बंदोबस्त

1765 ई० में बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा की दीवानी अधिकार प्राप्त करने के पश्चात् राजस्व की वसूली के लिए ईस्ट इंडिया कंपनी ने भूमि मालगुजारी की दर को निश्चित किया और लगान निर्धारित कर दिए। बिहार के दक्षिणी प्रांत के रूप में छोटानागपुर का जनजातीय प्रदेश भी कंपनी के नियंत्रण में आ गया था। चूँकि भूमि से प्राप्त लगान सरकार की आय का एकमात्र स्रोत था अतः छोटानागपुर के क्षेत्र में भी अंग्रेजी हुकूमत ने विभिन्न भूमि कानूनों का आरोपण आरंभ कर दिया।[3] अंग्रेजी सत्ता के आरंभिक वर्षों में एक सीमा तक मुगलों के द्वारा स्थापित भूमि कानूनों का ही इस क्षेत्र में भी संपोषण किया गया, जिसमें दहशाला व्यवस्था, पंचसाला व्यवस्था तथा वार्षिक भूमि बंदोबस्त जैसे कानून सामने आए। इस दौरान वारेन हेस्टिंग्स ने 1772 ई० में कलकत्ता में राजस्व बोर्ड (बोर्ड ऑफ रेवेन्यू) की स्थापना की तथा नीलामी पद्धति से अथवा बोली लगाकर राजस्व वसूली के अधिकार जमींदारों के बीच वितरित किया। छोटानागपुर के जनजातियों के सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन का इतिहास सम्भवतः इसी समय आरंभ हुआ। इस तथ्य की पुष्टि करते हुए इतिहासकार जे०सी० झा अपनी पुस्तक 'द ट्राइबल रिवोल्ट ऑफ छोटानागपुर 1831–32' में कहते हैं कि छोटानागपुर के आदिवासी निश्चित लगान व्यवस्था के अभ्यस्त नहीं थे परंतु नीलामी पद्धति के तहत वसूली अधिकार प्राप्त कर इन गैर–आदिवासी जमींदारों ने जबरन लगान की वसूली की तथा इसके लिए उन्होंने जनजातियों की भूमि को अधिग्रहित करने के भी प्रयास किए।[4]

छोटानागपुर क्षेत्र में जनजातीय भूमि–संबंध अपने पारंपरिक रूप से सामुदायिक स्वामित्व प्रणाली पर आधारित था। लॉर्ड कार्नवालिस के द्वारा लागू स्थायी बंदोबस्त, 1793 ई० की प्रणाली ने इस भूमि संबंध को आघात पहुँचाया। इस संदर्भ में रणजीत गुहा का मानना है कि कर वसूली की इस दोआमी व्यवस्था ने जमींदारों को असीमित शक्तियाँ प्रदान कर दी, जिसने जनजातीय शोषण के नए स्वरूप का सूत्रपात किया। इससे जनजाति अपने पारंपरिक खूंटकट्टी तथा भुइँहरी आदि भूमि अधिकारों से वंचित हो गए।[5] यही आर्थिक असंतोष विभिन्न जनजातीय विद्रोहों का मूल कारण भी रहा। जनजातीय विद्रोहों की तीव्रता को देखते हुए अंग्रेजी हुकूमत के द्वारा 1793 ई० के विनियमन VIII के तहत एक व्यवस्था की गई जिसमें जमींदारों तथा जनजातीय रैयतों के बीच पट्टा और कबूलियत की नींव रखी गई।[6] वास्तव में पारंपरिक रूप से आदिवासी समाज में जमीन की पैमाइश कराने तथा उनके दस्तावेजीकरण करने का कोई प्रचलन विद्यमान नहीं था, क्योंकि

यह एक अशिक्षित समाज का संपोषण करते थे। दिक्कूओं ने ही औपनिवेशिक भूमि कानूनों के मार्फत इस क्षेत्र में भूमि पैमाइश के मार्ग को अग्रसर किया था। जल, जंगल, व जमीन जो आदिवासियों की सामुदायिक अस्तित्व का प्रतीक थीं, उसे इन भू–बन्दोबस्तियों के कारण क्रय–विक्रय की वस्तु बना दिया गया। 1793 ई० के इस विनियमन के तहत पट्टा के माध्यम से भूमि अधिकारों के सामुदायिक स्वरूप का ह्रास कर उसे व्यक्तिगत स्वामित्व के अंतर्गत शामिल कर लिया गया। इस परिवर्तन को आदिवासियों ने सरलतापूर्वक स्वीकार नहीं किया और जमींदारों, दिक्कूओं, स्थानीय राजाओं और विचौलियों के साथ निरंतर संघर्ष करते रहे। आदिवासियों के इस संघर्ष को जमींदारों के द्वारा 1799 ई० विनियमन VII के तहत प्रदत्त पुलिस अधिकारों के माध्यम से दमन कर दिया गया और पट्टा व कबूलियत की व्यवस्थाओं को बलपूर्वक आदिवासियों पर आरोपित कर दिया गया।[7] जमींदारों व दिक्कुओं में व्याप्त भ्रष्टाचार ने पट्टे के माध्यम से जनजातियों को उनकी भूमि से बेदखली की प्रक्रिया को आरंभ कर दिया जिससे वे छोटानागपुर से पलायन करने को विवश हुए।

भूमि से बेदखली तथा विस्थापन

औपनिवेशिक भूमि कानूनों ने जहाँ एक ओर छोटानागपुर में विद्यमान गैर–जनजातीय जमींदारों को राजस्व वसूली से संबंधित शक्तियाँ प्रदान की वहीं दूसरी ओर इन कानूनों ने आदिवासियों को उनके पारंपरिक भूमि अधिकारों से वंचित किया जिसके कारण आदिवासियों का शोषण अपने चरम पर पहुँच गया तथा शांतिप्रिय आदिवासी आंदोलित व आक्रोशित होने लगे। इनके आक्रोश का मूल कारण उनके पारंपरिक भूमि अधिकार का क्षीण होना तथा भूमि से बेदखली रही थी। इसी भूमि से बेदखली का एक प्रतिकारक आंदोलन सरदारी लड़ाई (1858 ई० –1881 ई०) के रूप में भी सामने आया, जो अपने प्रथम चरण में पूर्णतया एक भूमि आंदोलन रहा था।[8] इसके तहत आदिवासी सरदार जमींदारों से भूमि वापसी की माँग कर रहे थे। इस आंदोलन की तीव्रता ने सरकार को भूमि सर्वेक्षण करने के लिए बाध्य किया। परिणामस्वरूप, छोटानागपुर भुधृत्ति अधिनियम, 1869 ई० सामने आया।[9] पीटर टेटे अपनी पुस्तक में कहते हैं कि जमींदारों को इस अधिनियम से होने वाली भूमि सम्बंधी हानि का पूर्वानुमान हो चुका था अतः उन्होंने आदिवासियों के बीच यह अफवाह फैलाई कि भूमि सर्वेक्षण की आड़ में सरकार उनकी वास्तविक भूमि स्वामित्व की जाँच कर रही है ताकि समस्त भूमि पर कर का बोझ बढ़ाया जा सके। इस अफवाह से भयभीत आदिवासियों ने अपनी सम्पूर्ण भूमि का ब्यौरा प्रस्तुत नहीं किया अतः उनके अधिकार में रहे भूमि का एक बड़ा भाग अघोषित रह गया, जिनपर जमींदारों ने अपने स्वामित्व की घोषणा कर दी।[10] इस प्रकार भुइँहरी सर्वेक्षण होने के बावजूद आदिवासियों को अपनी भूमि से बेदखल होना पड़ा। इसका परिणाम यह हुआ कि अधिकांश आदिवासी या तो अपनी ही भूमि पर मजदूर बन गए या उनका विस्थापन

छोटानागपुर के क्षेत्र से अन्यत्र हो गया। इसके बावजूद जनजातीय विस्थापन की प्रक्रिया यहाँ समाप्त नहीं हुई बल्कि इस अधिनियम के दस वर्षों के बाद पारित छोटानागपुर लैंडलॉर्ड एण्ड टेनेंट प्रोसिडियोर एक्ट, 1879 ई० की असफलता ने इस प्रक्रिया को तीव्रता प्रदान की। 1879 ई० का अधिनियम जमींदारों तथा रैयतों के बीच के सम्बंधों, मुंडा जनजाति के खूंटकट्टी अधिकारों तथा भूमि स्वामित्व से संबंधित जनजातियों के अधिकारों को परिभाषित करने में असफल रहा। इसकी असफलता ने जमींदारों तथा विभिन्न साहूकारों व ठेकेदारों के माध्यम से आदिवासियों के शोषण की गतिविधियों को गति प्रदान कर दी जो वास्तव में जनजातीय विस्थापन का मूल कारण बना।[11]

बेदखली तथा विस्थापनः जनजातीय दुर्दशा के मुख्य कारण

छोटानागपुर में भूमि कानूनों के कारण विस्थापन की समस्या केवल भुइहरों के बीच ही नहीं बल्कि आदिवासी खूंटकट्टीदारों के बीच भी समान रूप से विद्यमान रही थी। आदिवासी अपनी सम्पूर्ण आर्थिक व्यवस्था के लिए भूमि पर आश्रित थे। अनिल कुमार कहते हैं कि छोटानागपुर की भूमि की उर्वरता निकटवर्ती अन्य क्षेत्रों की तुलना में कम थी। इसके बावजूद इन भूमि कानूनों के माध्यम से जो मालगुजारी की दर निर्धारित की जाती थी वह आदिवासियों पर कर का बोझ बढ़ा देती थी, जिसके लिए उन्हें साहूकारों से ऋण लेना आवश्यक होता था। इस प्रकार के ऋण 'बाईबुल वफ़ा' कहलाते थे, जो वास्तव में भूमि के एवज में प्रदत्त होते थे।[12] ऋण न चुकाने की स्थिति में आदिवासी भूमि पर साहूकार का कब्जा हो जाता था। अरविंद प्रसाद वर्मा ने इसे आदिवासियों के आर्थिक पतन का कारण माना है। ऋण चुकाने के लिए आदिवासियों को अपनी जमीन से हाथ धोना पड़ता था। परिणामस्वरूप, वे भूमिहीन मजदूर बन जाते थे या उनका विस्थापन अन्य क्षेत्रों में हो जाता था। इस समय तक अनेक ऐसे मामले सामने आए जिसमें जनजातीय भूमि का हस्तांतरण गैर–जनजातियों के बीच हो जाता था। अरविंद प्रसाद वर्मा बताते हैं कि यह परिस्थिति सरकार की आय को भी बाधित करती थी अतः विवश होकर सरकार ने अवैध भूमि हस्तांतरण पर प्रतिबंध लगाते हुए छोटानागपुर काश्तकारी अधिनियम, 1908 ई० पारित किया।[13]

औपनिवेशिक भूमि कानूनों का निर्माण यद्यपि अंग्रेजी हुकूमत की आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति से प्रेरित रहा था, परंतु उनके कुछ नकारात्मक परिणाम भी सामने आए जिन्होंने आदिवासियों की सामाजिक–आर्थिक तानेबाने को बिखेर दिया और जनजातीय विस्थापन की समस्या को तीव्र कर दिया। छोटानागपुर में जनजातियों के विस्थापन से संबंधित सांख्यकीय आँकड़ों को विभिन्न जनसंख्या रिपोर्टों में उद्धृत परिशिष्टों से प्राप्त किया जा सकता है जो इस प्रकार हैं–

तालिका 1

वर्ष/जिला	वास्तविक जनसंख्या	विस्थापित जनसंख्या	प्राक्रतिक जनसंख्या	प्रतिज़त विस्थापन
राँची				
1891	1,128,885	246,022	1,374,907	17.89
1901	1,187,925	275,251	1,463,176	18.81
1911	1,387,516	305,301	1,692,817	18.03
हजारीबाग				
1891	1,164,321	113,622	1,277,943	08.89
1901	1,177,961	150,356	1,328,317	11.31
1911	1,288,609	146,541	1,435,150	10.21
पलामू				
1891	596,770	29,043	625,813	04.64
1901	619,600	32,210	651,810	04.94
1911	687,267	37,481	724,748	05.17
मानभूम				
1891	1,193,328	118,893	1,312,221	09.06
1901	1,301,364	135,972	1,437,336	09.46
1911	1,547,576	115,492	1,660,068	06.95
सिंहभूम				
1891	544,464	43,525	587,989	07.40
1901	613,579	63,820	677,399	09.42
1911	694,394	105,634	800,028	13.20
कुल छोटानागपुर डिवीजन				
1891	4,627,768	551,105	5,178,873	10.64
1901	4,900,429	657,609	5,558,038	11.83
1911	5,605,362	710,449	6,312,811	11.25

प्राकृतिक जनसंख्या = वास्तविक जनसंख्या + विस्थापित जनसंख्या।

स्रोत–: (क) सी0एच0 गारबेट, रिपोर्ट ऑन द सेंसस ऑफ बंगाल, जिल्द V, 1891, बंगाल सेक्रेटेरिएट प्रेस, कलकत्ता, 1892, पृ0 570–587.

(ख) ई0ए0 गैट, सेंसस ऑफ इंडिया, बंगाल प्रोविंस, वॉल्यूम VI, 1901, भाग 1, परिशिष्ट 1, बंगाल सेक्रेटेरिएट प्रेस, कलकत्ता, 1902, पृ0 475.

(ग) एल0 एस0 एस0 ओ0 मेले, सेंसस ऑफ इंडिया : बंगाल एण्ड उड़ीसा, जिल्द VII, 1911. बंगाल सेक्रेटेरिएट प्रेस, कलकत्ता,1902, पृ0 482–489.

तालिका 1, 1891 ई० से लेकर 1911 ई० के बीच छोटानागपुर डिवीजन में शामिल पाँच जिलों के जनजातीय विस्थापन के आँकड़े प्रस्तुत करता है। 1871–72 ई० में सर्वप्रथम भारत में जनगणना रिपोर्ट सामने आई,[14] परंतु आरंभिक जनगणनाओं में आदिवासियों के परिप्रेक्ष्य में आंकड़ों का प्रस्तुतिकरण नगण्य ही रहा अथवा उन्हें सम्मिलित रूप से बंगाल प्रेसिडेंसी के अंतर्गत शामिल कर लिया गया। परिणामस्वरूप, इस दौरान जनजातीय विस्थापन से सम्बंधित आँकड़े केवल सरकारी दस्तावेजों में ही प्राप्य हैं। चूँकि भारत में जनगणना डिसेनियल पद्धति पर आधारित रहा है अतः वार्षिक आधार पर जनजातीय विस्थापन की दर, चाहे वह स्थायी हो अथवा अस्थायी, का आंकलन नहीं किया जा सका है।

प्रस्तुत तालिका में प्राकृतिक जनसंख्या छोटानागपुर के क्षेत्र में जन्में सभी जनजातियों का घोतक है जबकि विस्थापित जनसंख्या के आंकड़े छोटानागपुर में जन्में उन आदिवासियों की संख्या को बताते हैं जिनकी गणना अन्यत्र की गई अर्थात उनका विस्थापन इस क्षेत्र से हुआ था। विस्थापन के पश्चात् शेष जनसंख्या की गणना वास्तविक जनसंख्या के रूप में की गई है। औपनिवेशिककालीन भूमि कानूनों ने जिन परिस्थितियों को उत्पन्न किया, उससे छोटानागपुर के लोगों ने अपने भूमि अधिकार खो दिए और उन्हें विस्थापन का शिकार होना पड़ा। छोटानागपुर में जनजातीय विस्थापन की दर को देखा जाए तो राँची से औसतन 18 प्रतिशत की दर से प्रत्येक जनगणना में सर्वाधिक विस्थापन प्रदर्शित होता है। इसके बाद क्रमशः हजारीबाग, मानभूम, सिंहभूम और पलामू का स्थान है। इस प्रकार राँची और हजारीबाग में जनजातीय विस्थापन शीर्ष पर रहा। 1890 के दशक में हजारीबाग में खान–खदान के प्रादुर्भाव के कारण जनजातियों के बड़े वर्ग को भूमिहीन मजदूर के रूप में रोजगार प्राप्त हुआ अतः इस दशक में इस क्षेत्र से विस्थापन की दर में भी गिरावट आई और 1891 ई० की जनगणना में विस्थापन की दर 8.89 प्रतिशत दर्ज की गई।[15] छोटानागपुर में खान–खदानों की स्थापना भी वास्तव में औपनिवेशिक भूमि कानूनों का ही परिणाम रहा था। इसकी स्थापना के पश्चात् सरकार को आय का एक नया स्रोत प्राप्त हो गया था, परंतु इसने भी आदिवासियों की भूमि से बेदखली के मार्ग को अग्रसर किया और आदिवासी अपनी ही जमीन पर मजदूरी करने को विवश हुए। सरकार के साथ–साथ

अन्य पूँजीपतियों का वर्चस्व इन खान–खदानों पर हो गया और जनजातियों को इसका कोई लाभ प्राप्त नहीं हुआ। यही वजह रही कि आगामी जनगणनाओं में पुनः हजारीबाग में विस्थापन की दर में क्रमशः 11.31 प्रतिशत तथा 10.31 प्रतिशत वृद्धि हुई।[16] इसी प्रकार राँची में विस्थापन की दर इस अध्ययन काल के दौरान औसतन 18.24 प्रतिशत, मानभूम में 8.49 प्रतिशत, सिंहभूम में 10 प्रतिशत और पलामू में विस्थापन की दर औसतन 5 प्रतिशत प्रदर्शित हुई। यद्यपि पलामू तथा मानभूम में विस्थापन की दर राँची तथा हजारीबाग की तुलना में कम दिखाई देती हैं किंतु इस क्षेत्र में सापेक्ष विस्थापन की दर राँची व हजारीबाग से कम नहीं थी। सापेक्ष विस्थापन से तात्पर्य जनसंख्या वृद्धि के अनुपात में विस्थापन की दर से है। यदि तत्कालीन छोटानागपुर डिवीजन के अंतर्गत विस्थापन दर की गणना की जाए तो छोटानागपुर में 1891 ई० की जनगणना में यह 10. 64 प्रतिशत रही थी जो 1901 ई० में बढ़कर 11.83 प्रतिशत हो गई एवं 1911 ई० की जनगणना रिपोर्ट में यह दर 11.25 प्रतिशत दर्ज की गई।[17] इस प्रकार छोटानागपुर डिवीजन में जनजातीय विस्थापन की औसत दर 11.24 प्रतिशत रही थी।

निष्कर्षतः

छोटानागपुर में अंग्रेजी औपनिवेशिक सत्ता की स्थापना के पश्चात् भूमि तथा कृषि उत्पादन सरकार की आय का प्रमुख स्रोत थी। अपनी आर्थिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सरकार ने अनेक भूमि कानूनों का सूत्रपात किया। इन भूमि कानूनों ने आदिवासियों की सामूहिकता पर प्रश्न–चिन्ह लगाते हुए जमीन को खरीद–बिक्री की वस्तु बना दिया। जमींदारों, साहूकारों, ठेकेदारों, जिन्हें आदिवासियों ने सम्मिलित रूप से दिक्कू कहा, के द्वारा जनजातियों से उनकी भूमि का हरण कर लिया गया। भूमि, जो जनजातियों की सम्पूर्ण जीवनशैली का आधार था, से बेदखली के पश्चात् जनजातियों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति दयनीय होती चली गई। आदिवासियों की इस परिस्थिति का परिचायक उनके बीच व्याप्त विस्थापन की समस्या थी। वास्तव में इस समस्या के मूल में औपनिवेशिक भूमि बंदोबस्ती कानून ही रहे थे। इन भूमि कानूनों के द्वारा जनजातीय विस्थापन के मार्ग प्रशस्त किए गए। जनजातियों को उनकी पारंपरिक भूमि अधिकारों से वंचित कर अवैध रूप से भूमि के हस्तांतरण ने उन्हें विस्थापित होने पर विवश किया। छोटानागपुर में जनजातीय विस्थापन आज भी एक गंभीर समस्या है। वर्तमान परिदृश्य में विस्थापन के आयाम में बदलाव अवश्य हुए हैं, जिसे विकासवादी कार्यक्रमों से जोड़कर प्रदर्शित किया जाता है। परंतु आज भी आदिवासी इसके खिलाफ संघर्षरत हैं। चाहे वह नेतरहाट के फायरिंग रेंज निर्माण का मामला हो या राज्य में औद्योगिक विकास के नाम पर किया गया विस्थापन, सभी के केंद्र में औपनिवेशिक भूमि कानून ही रहे हैं। छोटानागपुर के जनजातियों के बीच इस समस्या के समाधान के लिए जिस प्रकार की वैकल्पिक व्यवस्थाओं की आवश्यकता है उसके लिए व्यक्ति, समाज, राज्य व सरकार आपेक्षित हैं।

संदर्भ सूची

1. जेम्स सदरलैंड कॉटन, *इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इंडिया, वोल्युम XXI*, फोरगोटेन बुक्स पब्लिकेशन, ऑक्सफोर्ड, 1908, पृ० 197.
2. डब्लू०डब्लू० हंटर, *एनल्स ऑफ रूरल बंगाल,* लेपोल्ड्ट एंड होल्ट पब्लिकेशन, न्यूयॉर्क, 1868, पृ० 226–227.
3. बी०एच० बाडेन पॉवेल, *लैंड सिस्टम ऑफ ब्रिटिश इंडिया भाग 1*, क्लोरेडॉन प्रेस, ऑक्सफोर्ड, 1987, पृ० 103.
4. जे०सी० झा, *द ट्राइबल रिवोल्ट ऑफ छोटानागपुर 1831–1832*, काशी प्रसाद जायसवाल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पटना, 1987, पृ० 46.
5. रणजीत गुहा, *ए रूल ऑफ प्रोपर्टी फ़ॉर बंगाल*, मार्टिन एण्ड कम्पनी, ओस्लो, 1963, पृ० 89–97.
6. जे० रीड़, *फाइनल रिपोर्ट ऑफ द सर्वे एण्ड सेटलमेंट्स ऑपरेशंस इन द डिस्ट्रिक्ट ऑफ राँची 1902–1910*, बंगाल सेक्रेटेरिएट बुक डिपो, कलकत्ता, 1912, पारा 36, पृ० 16.
7. बी०एच० बाडेन पॉवेल, *लैंड रेवेन्यू सिस्टम एण्ड लैंड टेन्योर्स ऑफ ब्रिटिश इंडिया*, सुपरिटेंडेंट ऑफ गवर्नमेंट प्रिंटिंग प्रेस, कलकत्ता, 1882, पृ० 185–186.
8. एस०पी० सिन्हा, *कॉन्फ्लिक्ट एण्ड टेंशन इन ट्राइबल सोसायटी*, कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, 1993, पृ० 225–239.
9. जे० रीड़, पूर्वोद्धृत, पारा 85, पृ० 37–38.
10. पीटर टेटे, *ए मिशनरी सोशल वर्कर इन इंडिया जे०बी० हॉफमैन द छोटानागपुर टेनेंसी एक्ट एण्ड कैथोलिक कॉपरेटिव्स 1893–1928*, सत्य भारती, राँची, 1986, पृ०16.
11. रश्मि कात्यायन, *झारखंड लैंड मैनुअल वॉल्यूम II*, क्राउन पब्लिकेशन्स, राँची, 2015, पृ०11–23.
12. अनिल कुमार, *झारखंड में मुडाओं का आर्थिक इतिहास*, जानकी प्रकाशन, पटना, 2002, पृ० 103.
13. अरविंद प्रसाद वर्मा, *डेवलोपमेन्ट ऑफ लैंड रेवेन्यू एडमिनिस्ट्रेशन*, जिन्दराम पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 1980, पृ० 109.
14. एन० कुमार, *बिहार डिस्ट्रिक्ट गजेटियर राँची*, गजेटियर ब्रांच रेवेन्यू डिपार्टमेंट गवर्नमेंट ऑफ बिहार, पटना, 1971, पृ० 249.
15. सी0एच0 गारबेट, *रिपोर्ट ऑन द सेंसस ऑफ बंगाल, जिल्द V, 1891*, बंगाल सेक्रेटेरिएट प्रेस, कलकत्ता, 1892, पृ0 570–587.
16. ई0ए0 गैट, *सेंसस ऑफ इंडिया, बंगाल प्रोविंस, वॉल्यूम VI, 1901, भाग 1, परिशिष्ट 1*, बंगाल सेक्रेटेरिएट प्रेस, कलकत्ता,1902, पृ0 475.
17. एल0 एस0 एस0 ओ0 मेले, *सेंसस ऑफ इंडिया : बंगाल एण्ड उड़ीसा, जिल्द VII, 1911,* बंगाल सेक्रेटेरिएट प्रेस, कलकत्ता,1902, पृ0 482–489.

भारत छोड़ो आंदोलन में झारखण्ड की भूमिका

मसकलन तोपनो*

सारांश

1942 ई० का भारत छोड़ो आन्दोलन भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष के इतिहास में एक युगांतकारी घटना थी। इस आन्दोलन के दौरान संभवतः पूरे देश की जनता स्वतः स्फूर्त ही सड़कों पर विद्रोह के लिए उतर आई थी। इस समय झारखण्ड का प्रदेश बिहार के दक्षिणी जिलों के रूप मे ही अस्तित्व में था। इस समय बिहार के इन दक्षिणी जिलों में राष्ट्रीय आन्दोलन के समानांतर एक और आन्दोलन पृथक झारखण्ड राज्य के लिए चल रहा था। प्रस्तुत आलेख यह तर्क रखता है कि जब राष्ट्रीय स्तर पर भारत छोड़ो आन्दोलन का आरंभ हुआ तो झारखण्ड में रहनेवाले लोगों ने मुख्य धारा के स्वतंत्रता संग्राम आन्दोलन में अपनी सक्रिय भागीदारी दी थी। इनकी भागीदारी हिंसक और अहिंसक दोनों रूपों में थी। इस आन्दोलन में गांधीजी के सबसे बड़े अनुयायी कहे जाने वाले टाना भगतों नें भी पहली बार हिंसक रूप अपनाया था।

कुँजी शब्द : टाना भगत, राष्ट्रवाद, पृथक्कतावादी आंदोलन

सन् 1942 ई० के भारत छोड़ो आन्दोलन को अगस्त क्रांति के नाम से भी जाना जाता है। 9 अगस्त को सुबह जब भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के सारे प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार किया गया तब 10 अगस्त 1942 ई० को पूरे देश की जनता सड़कों पर विरोध प्रदर्शन के लिए सड़कों पर निकल आयी। इनका विरोध हिंसक और अहिंसक दोनों रूप में था। 9 अगस्त को काँग्रेसी नेताओं की गिरफ्तारी की वजह उस समय देश में चल रहे तात्कालिक राजनीतिक हालात थे। 1942 ई० तक द्वितीय विश्व युद्ध अपनी चरम पर था। 1939 ई० में ही ब्रिटेन इस युद्ध में शामिल हो गया था और ब्रिटेन का उपनिवेश होने के कारण भारतीयों की इच्छा के विरुद्ध भारत को भी इस युद्ध में शामिल कर लिया गया। इस बात से भारतीय नेताओं और भारतीय जनता दोनों में काफी आक्रोश था। ऐसी स्थिति में 1942 ई० तक जापान भारत के पूर्वी सीमा तक पहुँच चुका था, ब्रिटिश सरकार कि हालत काफी खराब थी। ऐसा लग रहा था जैसे ब्रिटेन और उसके सहयोगी देशों की द्वितीय विश्वयुद्ध में हार होने वाली है। दक्षिण पूर्व एशिया से भी ब्रिटेन पीछे हट चुका था और भारत में बर्मा से असम को आनेवाली रेलगाड़ियां घायल सिपाहियों से भरी होती थी। ऐसी स्थिति में भारतीयों को यह गंभीर शंका थी कि कहीं

*शोधार्थी, यू.जी.सी.नेट जे.आर.एफ, विश्वविद्यालय,इतिहास विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची

फासीवादी ताकतों नें भारत पर आक्रमण कर दिया तो ब्रिटिश सेना भारतीयों को छोड़कर भाग जायेंगे और भारतीय कुछ भी नहीं कर पायेंगे क्योंकि भारतीय सेना ब्रिटिश सरकार के नियंत्रण में ही है। वहीं दूसरी ओर भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन भी अपने चरम पर थी। भारतीयों को यह विश्वास हो चुका था कि देर सबेर आज नहीं तो कल भारत को स्वतंत्र कर ही दिया जाएगा। ऐसी स्थिति में परिस्थितियों को देखते हुये भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की कार्यकारी समिति नें मुंबई में 7 और 8 अगस्त 1942 ई० को भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रस्ताव पास किया।[1] इसी दिन गांधीजी नें भी अपना प्रसिद्ध "करो या मरो" का नारा दिया। "एक मंत्र है छोटा सा मंत्र जो मै आपको देता हूँ। उसे आप अपने हृदय में अंकित कर सकते हैं और अपनी सांस–सांस द्वारा व्यक्त कर सकते हैं वह मंत्र है 'करो या मरो' या तो हम भारत को आजाद कराएंगे या इस कोशिश में अपनी जान दे देंगे,अपनी गुलामी का स्थायित्व देखने के लिए हम जिंदा नहीं रहेंगे।"[2]

इसके दूसरे दिन ही 9 अगस्त 1942 ई० को भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के सभी प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। अचानक हुये इस गिरफ्तारी से सम्पूर्ण देश में हड़कंप मच गया। भारतीय जनता नेतृत्व विहीन हो गई थी लेकिन फिर भी 10 अगस्त 1942 ई० से देश कि विभिन्न राज्यों में लोग सड़कों पर विरोध के लिए उतर आए और जुलूस, हड़ताल एवं आंदोलनों का दौर आरंभ हो गया। ऐसी स्थिति में झारखण्ड का यह प्रदेश जो कि 1942 ई० में बिहार राज्य के दक्षिणी जिलों जिनमें हजारीबाग,राँची, संथाल परगना, पलामू, सिंहभूम तथा मानभूम के रूप में अवस्थित था में भी आंदोलनों का दौर आरंभ हो गया ।

इन आंदोलनों के विषय में कुछ पुस्तकों जिनमें के०के० दत्त कि 'बिहार में स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास –भाग 3' गोविंद सहाय कि पुस्तक 'सन बयालीस का विद्रोह' एवं विनीता दामोदरन कि पुस्तक 'ब्रोकेन प्रोमिसेस' उल्लेखित है। इन पुस्तकों में बिहार के जिलों के संदर्भ में ही 1942 में घटित तात्कालिक घटनाक्रमों का उल्लेख मिल पाता है। इन पुस्तकों में इस क्षेत्र में होने वाले विद्रोहात्मक घटनाओं का विश्लेषण का अभाव पता चलता है।

1942 ई० में भारत छोड़ो आन्दोलन जब देश में फैली तब दक्षिणी बिहार के इन जिलों में एक और आन्दोलन पृथक झारखण्ड राज्य के लिए भी चल रहा था। 1939 ई० में ही इस आन्दोलन का नेतृत्व जयपाल सिंह मुंडा के हाथ मे आ गया था जिसके कारण 1942 ई० तक इन जिलों में पृथक राज्य के लिये आन्दोलन भी काफी तेजी से चल रही थी। वहीं दूसरी ओर 1940 ई० में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस का अधिवेशन मौलाना अबुल कलम आजाद की अध्यक्षता में राँची के समीप रामगढ़ में आयोजित किया गया। ऐसे में कुछ प्रश्नों का आना स्वाभाविक है, जैसे – इन क्षेत्रों के लोगों की भारत छोड़ो आन्दोलन में भागीदारी कैसी थी? भारत छोड़ो आन्दोलन में टाना भगतों की भूमिका कैसी थी? राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रमुख नेताओं का एवं काँग्रेस का इन क्षेत्र के लोगों पर कितना प्रभाव था?

उपरोक्त सभी प्रश्नों का उत्तर तत्कालीन बिहार के दक्षिणी जिलों के रूप में इस क्षेत्र के लोगों की भूमिका को जिलेवार विवरणों के माध्यम से जानने का प्रया स किया जाएगा ।

हजारीबाग जिला

हजारीबाग जिला प्रारंभ से ही कॉंग्रेस के प्रभाव में था। यहां कॉंग्रेस के प्रमुख नेताओं का आगमन हमेशा लगा रहता था। हजारीबाग का संत कोलंबस विश्वविद्यालय एवं छात्रावास काफी समय से क्रांतिकारियों और राष्ट्रवादियों का ठिकाना था। गांधी जी का भी हजारीबाग में दो बार आगमन हुआ था। पहली बार 1925 ई. में संत कोलंबस महाविद्यालय छात्रों के बीच एवं दूसरी बार 1934 ई- में हजारीबाग के ग्रामीण क्षेत्रों का दौरा किया था।[3] 1942 ई- तक बिहार प्रांत के कई प्रमुख नेता संत कोलंबस महाविद्यालय के छात्र थे। हजारीबाग में केंद्रीय कारावास होने की वजह से भी कई राष्ट्रवादियों एवं क्रांतिकारियों को कारावास में लाया जाता था जिनके विचारों का प्रभाव भी हजारीबाग की जनता पर अवश्य ही पड़ा था। हजारीबाग के प्रमुख क्रांतिकारियों में राम विनोद सिंह का नाम सबसे प्रमुख है। राम विनोद सिंह को हजारीबाग का जतिन बाधा के नाम से भी संबोधित किया जाता था।[4] गांधी जी के द्वारा जब असहयोग आंदोलन किया गया था। तब भी हजारीबाग जिले के लोगों ने इसमें भाग लिया था। असहयोग आंदोलन के दौरान हजारीबाग में डॉक्टर राजेंद्र प्रसाद, मजहर उल हक, मोतीलाल नेहरू, जैसे नेताओं का भी आगमन हुआ उन्होंने यहां के लोगों को संबोधित भी किया।[5] इस प्रकार हजारीबाग जिला राष्ट्रीय आंदोलन में अपनी भागीदारी हमेशा से ही निभा रहा था।

सन् 1942 ई. का आंदोलन हजारीबाग में 11 अगस्त से प्रारंभ हुआ। इस जिले के प्रमुख कॉंग्रेसी नेताओं को भी गिरफ्तार कर लिया गया था। 11 अगस्त के दिन श्रीमती सरस्वती देवी के नेतृत्व में हजारीबाग शहर में जुलूस निकाला गया। 12 अगस्त को राष्ट्रीय झंडा लिए बड़ी संख्या में संत कोलंबस विश्वविद्यालय के छात्र सड़कों पर निकल आए उनके साथ अनेक स्कूली छात्र भी जुलूस में शामिल हो गए। इसके पश्चात् लगभग हर दिन हजारीबाग में छात्रों के द्वारा जुलूस निकाला जाने लगा। पुलिस उन्हें तितर–बितर करने का प्रयास करती रही। 18 अगस्त तक जुलूस हिंसक स्वरूप धारण करने लगा। इसी दिन कचहरी तथा सरकारी भवनों में तोड़फोड़ की घटनाएं भी घटीं। कोडरमा में आंदोलन ने उग्र रूप ले लिया था। कोडरमा के लोगों ने कोडरमा स्टेशन पर आग लगा दिया। साथ ही डाकघर के कागजात एवं शराब की दुकानों को भी आग के हवाले कर दिया। कोडरमा में 1942 के आंदोलन की स्थिति का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि वहां के उपायुक्त और पुलिस अधीक्षक हजारीबाग ने उच्च अधिकारियों को गिरिडीह, बराकर पुल, बेरमो, हजारीबाग रेलवे स्टेशन और चतरा में अधिक सैनिकों को भेजने का अनुरोध किया।[6]

पलामू

पलामू में भी जिला कॉंग्रेस कमेटी का गठन 1919 ई. में ही हो चुका था। कॉंग्रेस समिति के कार्यकर्ता 1942 ई. के पूर्व से ही पलामू जिला के विभिन्न क्षेत्रों पर कॉंग्रेस के कार्यों का प्रसार एवं प्रचार कर रहे थे। 1942 ई. से पूर्व पलामू जिला के विभिन्न क्षेत्रों में कांग्रेस की कम से कम 60 सषएं हुई थी।[7] 15 फरवरी को ही अनुग्रह नारायण सिंह का पलामू में स्वयं सेवक दल के उद्घाटन के लिए आगमन हुआ था। 12 अप्रैल को श्री कृष्ण सिंह का भी आगमन पलामू जिला में हुआ था। पलामू के आदिवासी भी राष्ट्रीय आंदोलन के प्रति काफी जागरूक थे। पलामू में आदिवासियों के प्रमुख नेता भागीरथ सिंह थे। इसने कॉंग्रेस के नेताओं के साथ मिलकर आदिवासियों को संगठित करने का कार्य किया। वास्तव में पलामू के नेताओं ने भारत छोड़ो आंदोलन की पूरी तैयारी कर ली थी। पलामू में भी कॉंग्रेसी नेताओं की गिरफ्तारी हुई। इस गिरफ्तारी के विरोध में डाल्टेनगंज में हड़ताल हुई। इस हड़ताल में मुसलमानों ने भी भाग लिया था।[8] इसके पश्चात पलामू में 11 अगस्त से नगरों में जुलूस के साथ आंदोलन का आरंभ हुआ। छात्र मजदूर एवं अन्य जनता भी सड़कों पर उतर कर विरोध प्रदर्शन करने में लगे थे। गढ़वा, हुसैनाबाद में भी सड़कों पर छात्रों का प्रदर्शन एवं हड़तालें हुई। चैनपुर में राष्ट्रीय झंडा लिए जुलूस निकाला गया। महुआडांड में थाना और शराब की दुकानों पर आक्रमण का प्रयास किया गया।[9]

सिंहभूम

1942 ई. तक सिंहभूम का जमशेदपुर नगर एक औद्योगिक नगर के रूप में विकसित हो चुका था। औद्योगिक नगर होने के कारण जमशेदपुर में देश के अन्य भागों से भी लोगों का राजनीतिक और आर्थिक दृष्टिकोण से यहॉ आगमन होता रहता था। गांधी जी को भी जमशेदपुर शहर से काफी लगाव था इसी कारण गांधी जी ने भी अपने जीवन काल में तीन बार जमशेदपुर शहर का दौरा किया था।[9] पहली बार 1925 ई. में, दूसरी बार 1934 ई. में एवं तीसरी बार 1940 ई. में जमशेदपुर का दौरा किया। जमशेदपुर शहर हमेशा से ही राष्ट्रवादी एवं क्रांतिकारियों का ठिकाना रहा था। मोतीलाल नेहरू, चितरंजन दास, सुभाष चंद्र बोस जैसे नेताओं का भी आगमन जमशेदपुर में होता रहता था। बंगाल से सटे होने के कारण राष्ट्रीय आंदोलन के आरंभिक चरण क्रांतिकारियों का सुरक्षित ठिकाना था। 1937 ई. में चुनाव प्रचार हेतु पंडित जवाहरलाल नेहरु भी सिंहभूम के चाईबासा आए थे। सिंहभूम जिले से कई लोगों भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस से जुड़े थे जिनमें रसिका मानकी, विश्वनाथ मुंधडा, देवेन्द्र सामन्त, जे० कनौजिया, भोलाराम खत्री, चंद्रमोहन मानकी इत्यादि लोगों का नाम उल्लेखनीय है। इसीलिए 1942 ई. के अगस्त महीने में जब कॉंग्रेसी नेताओं की गिरफ्तारी की खबर सिंहभूम में पहुंची तो 9 अगस्त की शाम को टाटा वकर्स यूनियन ने जमशेदपुर में एक जनसभा बुलाई। जनसभा में यह निर्णय लिया गया कि 10 अगस्त

को जमशेदपुर नगर में हड़ताल किया जाए। 10 अगस्त को जमशेदपुर नगर में हड़ताल रहीं, सभी दुकाने बंद रही, भंगी काम पर नहीं गए। टिस्को में भी 10 अगस्त को हड़ताल किया गया।[10] इसी के साथ ही सिंहभूम में हड़तालों का सिलसिला आरंभ हो गया। यहां पर मजदूरों तथा विद्यार्थियों ने भी हड़ताल में अपना पूरा सहयोग दिया सिंहभूम में आंदोलन के समर्थन में कई इश्तेहार बांटे गए। इस इश्तेहारों में मजदुरों से हड़ताल जारी रखने हेतु अपील की जाती थी इन इश्तेहारों के कुछ अंश इस प्रकार होते थे "स्वराज बहुत दूर नहीं है आपकी हड़ताल ने इसे हमारे बहुत समीप ला दिया है। यदि आप कुछ काल और हड़ताल पर डटे रहे तो शीघ्र ही उन्हे महात्मा गांधी के सम्मुख घुटने टेकना पड़ेगा और शांति के लिए याचना करनी होगी।[11] "

सिंहभूम के अन्य क्षेत्रों में कुछ हिंसक घटनाएं हुई जैसे 24 सितंबर को चाईबासा, खरसावां एवं 22 सितंबर को चाईबासा महूलसाई में रेलवे तार को क्षतिग्रस्त किया गया। 22 सितंबर को चाईबासा नगर पालिका क्षेत्र के तीन स्थानों पर रेल एवं तार को छतिग्रस्त किया गया।[11] इस प्रकार सिंहभूम के कुछ हिंसक घटनाओं को छोड़ दे तो प्रायः पूरे सिंहभूम में 1942 ई. की क्रांति का स्वरूप अहिंसक बना रहा। सिंहभूम के मजदूरों की हड़ताल देखकर टी० एम० शाह को टिप्पणी करनी पड़ी–'हड़ताल इतनी स्वाभाविक तथा शांतिपूर्ण थी कि अमेरिकन और अन्य विदेशी सैनिकों को इसकी भूरी भूरी प्रशंसा करनी पडी और यह कहना पड़ा कि इस तरीके की हड़ताल की हम अपने देश के मजदूरों से भी आशा नहीं कर सकते।[12]'

मानभूम

मानभूम जिला में काँग्रेस के कार्यकर्ता 1942 ई. के पूर्व से ही सक्रिय थे। इस जिले में काँग्रेस की लोकप्रियता बढ़ाने का श्रेय काँग्रेस के नेता श्री अतुल्य चंद्र घोष को जाता है। इन्होंने ही मानभूम जिला के लोगों को काँग्रेस से जोड़ने में अहम भूमिका निभाई थी। मानभूम जिले में भी राष्ट्रीय नेताओं का आगमन हमेशा से होता रहा था। बाबू राजेंद्र प्रसाद, जवाहरलाल नेहरु, सुभाष चंद्र बोस जैसे राष्ट्रीय नेताओं का मानभूम के धनबाद एवं झरिया क्षेत्र आगमन होता रहता था। 1942 ई. में आंदोलन आरंभ हुआ तो इस क्षेत्र के संथाल और महतो जाति के लोग तीर, भालों से लैस होकर युद्ध के लिए आ खड़े हुए लेकिन अतुल बाबू के आग्रह पर वे हिंसा का इरादा त्याग दिए और अहिंसक रूप में हड़ताल एवं सरकारी दफ्तरों पर झंडे लगाकर अपने आक्रोश का प्रदर्शन किया।[13] लेकिन देश के अन्य भागों से ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतीयों के दमन की खबर पाकर यहाँ के लोग भी हिंसक हो उठे। कई जगहों पर उन्होंने सरकारी दफ्तरों को जलाया, थानों पर हमला किया, पुलों को तोड़ा। इसके प्रतिक्रिया स्वरूप पुलिस ने दमन चक्र चलाया और कई स्थानों पर पुलिस ने लोगों पर गोलीबारी की। जिन स्थानों पर पुलिस द्वारा गोलियां चलाई गईं उनमें जरगाँव, मानवमार और कतरासगढ़, तीन स्थान सबसे प्रमुख है।[14]

राँची

राँची जिला टाना भगतों का केंद्र था टाना भगत गांधी जी के प्रमुख अनुयायियों में गिने जाते हैं। ये लोग गांधी जी की ही तरह टोपी और खादी का वस्त्र धारण करते हैं। इसके अतिरिक्त राँची में काँग्रेस के राष्ट्रीय नेताओं का भी आगमन हमेशा होता रहा है। गांधीजी भी चंपारण आंदोलन के सिलसिले में पहली बार राँची आए थे। वही मौलाना अबुल कलाम आजाद तो 1916 ई.से लेकर 1920 ई. तक के लंबे समय तक राँची में थे। विद्रोह के पूर्व शाम को ही बिहार सरकार नें राँची जिला के प्रमुख नेताओं को नजरबंद कर लिया था जिनमे नारायण चंद्र लहिरी, ठेबले उरॉव, प्रतुल मित्र और जादु गोपाल मित्र, चमरा भगत इत्यादि प्रमुख थे।[15] इस प्रकार राँची राष्ट्रीय आंदोलन के आरंभिक दिनों से आंदोलन के केंद्र में था। क्रांति की खबर सुनने के पश्चात् राँची में 17 अगस्त को एक बड़ा जुलूस निकला गया, जिसे पुलिस ने तितर बितर कर दिया। इसके बाद राँची के ही ओरमांझी, टाटीसिलवे और नामकुम के पास तार काट दिये गये। टाना भगत भी काफी बड़ी संख्या में इकट्ठा हुये और वे राँची सदर, मांडर, कुडू, और बेड़ो के पुलिस थानों में छापेमारी करने पहुँच गये।[16] 12 अगस्त को राँची जिला स्कूल और कॉलेज के छात्र अपनी कक्षाओं से बाहर निकल आए और दूसरे छात्रों को भी अपनी कक्षाओं को त्यागने के लिए अनुरोध करने लगे।[17] 18 अगस्त को टाना भगतों द्वारा विशुनपुर थाना को जला दिया गया।[18] इसके साथ ही राँची जिले के अन्य जगहों पर जुलूस प्रदर्शन किया गया। 20 अगस्त को सोनाहातू, 22 अगस्त को इटकी में कुछ हिंसक प्रदर्शन हुए थे। 24 अगस्त को बरमो में डाकघर लूट लिया गया। 25, 26 अगस्त को राँची पुरुलिया रेलवे स्टेशन तथा कोचजारा में तार काट दिए गए। 20 अगस्त को बाल कृष्ण हाई स्कूल के कागजात जला दिए गए। इस प्रकार राँची जिले से नवंबर दिसंबर के महीने तक कुछ हिंसक घटनाएं होती रही।

संताल परगना

संथाल परगना भी 1942 ईस्वी के पूर्व से ही राष्ट्रीय आंदोलन का केंद्र था। यहां के संथाल जनजाति के लोग भी स्वतंत्रता आंदोलन के प्रति जागरूक थे। संथाल जनजातियों की राजनीतिक चेतना से सरदार वल्लभ भाई पटेल और राजेन्द्र प्रसाद जैसे राष्ट्रीय नेता भी प्रभावित थे। संथालों की सभाओं में सरदार वल्लभ भाई पटेल और राजेन्द्र प्रसाद जैसे नेता भी भाग लेने आते थे।[19] गांधीजी भी 1925 ई० में पहली बार संताल परगना के देवघर में आए थे।[20] संथाल परगना जिला में 1942 ई- में जैसे ही कांग्रेसी नेताओं की गिरफ्तारी की खबर पहुंची वैसे ही यहॉ के लोग भी राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल होने लगे।लोग सड़कों पर उतर पड़े। मधुपुर, जसीडीह, देवघर आदि जगहों पर कई सारे सरकारी भवनों को क्षतिग्रस्त किया गया।[21] 17 अगस्त को दुमका के धोरमारा स्कूल के छात्रों एवं अन्य लोगों के द्वारा जुलूस निकाला गया। इसके पश्चात

देवघर में बालेश्वर राय के नेतृत्व में सभी सरकारी भवनों पर राष्ट्रीय झंडा फहराया गया। संथाल परगना जिला में हिंसक घटनाएं देखने को मिली मिली जिसमें कई जगहों पर संचार के तार काट दिये गये। रेल की पटरियाँ उखाड़ दी गई, पेट्रोल पंप, शराब की दुकान, डाकघर इत्यादि पर आक्रमण किए गये। धीरे–धीरे संताल परगना में आंदोलन ने हिंसक रूप धारण कर लिया। 26 अगस्त 1942 ई. को देवघर में पुलिस द्वारा गोलीबारी की गई।[22] गोलीबारी में कई लोग घायल हुए और कई लोगों की मृत्यु हुई। वहीं दुमका में 28 अगस्त 1942 ई. को जुलूस के दौरान हरिहर की पत्नी बिरजी पुलिस की गोली से शहीद हो गई। 28 अगस्त को ही सारठ थाना पर आक्रमण करके थाने में आग लगा दिया गया, थाने से आंदोलनकारी कुछ बंदूको को अपने साथ उठा ले गए थे। राजमहल में रहने वाले पहड़िया लोगों नें भी 1942 ई. के क्रांति में बड़ी संख्या में भाग लिया। गोड्डा, महागामा, पोरैयाहाट, साहेबगंज, पाकुड, जामतारा आदि क्षेत्रों में आंदोलन ने हिंसक रूप ग्रहण कर लिया था।

भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान हुये नुकसान का अनुमान निम्नलिखित आंकड़ों से लगाया जा सकता है -

जिला	नजरबंद	गिरफ्तार	दण्डित	शहीद	घायल	समुहिक जुर्माना
हजारीबाग	32	13310	7001	533	666	1,77,200
रांची	12	394	196	—	—	60001
मानभूम	—	—	—	385	16	34,640
सिंहभूम	25	175	272	—	—	2164
पलामू	8	—	300	—	1286	3400
संथाल परगना	—	600	—	26	—	50,000

स्रोत– सर गोविंद सहाय की पुस्तक *'सन बयालीस का विद्रोह'*

निष्कर्ष

उपरोक्त जिलेवार विवरणों एवं आंकड़ों को देखकर सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि झारखण्ड के इस क्षेत्र में भारत छोड़ो आन्दोलन का स्वरूप काफी विस्तृत था। झारखण्ड में कई स्थानों पर यह आन्दोलन अहिंसक रूप में था तो कई स्थानों में आन्दोलन का स्वरूप हिंसक भी हो गया था। लेकिन हिंसा का स्वरूप भी सरकारी संपतियों के नुकसान तक ही सीमित था। यहाँ एक और बात उल्लेखनीय है कि गांधी जी के सबसे बड़े अनुयायी कहे जाने वाले टाना भगतों नें भी पहली बार भारत छोड़ो आन्दोलन में ही हिंसक प्रदर्शन किया था। इस प्रकार

उपरोक्त विवरणों को देखकर यह पता चलता है कि यहाँ के लोगों में राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति काफी जागरूकता थी। जबकि इस समय इन क्षेत्रों में राष्ट्रीय आन्दोलन के समानांतर एक और आन्दोलन पृथक राज्य के लिए भी चल रहा था। साथ ही साथ, झारखण्ड के इस क्षेत्र को तत्कालीन समय में जंगलों पहाड़ों वाला ग्रामीण क्षेत्र के रूप में जाना जाता था, लेकिन इसके वावजूद इस क्षेत्र के लोगों में भारत के अन्य क्षेत्रों के लोगों की तुलना में राष्ट्रवाद की भावना कहीं से कम नहीं थी।

संदर्भ सूची

1. जवाहरलाल नेहरू, *हिंदुस्तान की कहानी,* सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020, पृ0–553,
2. विपिन चन्द्र, *भारत का स्वतंत्रता संघर्ष,* हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1990, पृ0–414
3. अनुज कुमार सिन्हा, *महात्मा गांधी की झारखंड यात्रा,* प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृ0–97
4. बी, वीरोत्तम, *झारखंड इतिहास एवं संस्कृति,* बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, 202 पुर्नर्मुद्रित पृष्ठ –356
5. वही, पृ0–361
6. के. के. दत्त, *बिहार में स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास,* भाग–3, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना 1999, पृ0–76
7. वही, पृ0–71
8. वही, पृ0–81
9. सुशीला मिश्रा, *हिस्ट्री ऑफ दि फ्रिडम मूवमेंट इन छोटानागपुर(1885–1947),*काशी प्रसाद जायसवाल रिसर्च इंस्टिट्यूट, पटना, 1990, पृ0–109
10. अनुज कुमार सिन्हा, पूर्वोद्धृत, पृ0–77
11. विनिता दामोदरन, *ब्रोकेन प्रोमिसेस,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1992 पृ0– 240
12. के. के. दत्त, पूर्वोद्धृत, पृ0–202
13. वही, पृ0–202
14. गोविंद सहाय, *सन् बयालीस का विद्रोह,* नवयुग साहित्य सदन, इंदौर, 1946, पृ0–114
15. वही, पृ0–143
16. जवहारलाल वर्मा, *दि कुईट् इंडिया मूवमेंट इन बिहार एण्ड झारखण्ड,* जानकी प्रकाशन पटना, 2012, पृ0– 156
17. वही, पृ0–157
18. वही, पृ0–157
19. के. के. दत्त, पूर्वोद्धृत, पृ0–168
20. वी, वीरोत्तम, पूर्वोद्धृत पृ0–367
21. पी० सी० राय चौधरी, *बिहार डिस्ट्रिक गजेटियर–संताल परगना,* सुपरिटेंडेंट सेक्रेटेरियट प्रेस, बिहार, पटना, 1965, पृ0–122
22. वही, पृ0–123
23. *रिपोर्ट ऑन दि सिविल डिस्ट्रबेंन्स इन बिहार 1942,* सुपरिटेंडेंट गर्वमैंट प्रिंटिंग बिहार,पटना,1944, पारा 2, पृ0– 10

छोटानागपुर में अंग्रेजी साम्राज्यवादी नीतियाँ एवं ईसाई मिशनरियों की भूमिका : एक सिंहावलोकन, 1845 - 1947 ई.

सनी संतोष टोप्पो*

साम्राज्यवाद के सिद्धांत मूल रूप से शोषण के सिद्धांतों पर आधारित होते हैं। 17वीं से 18वीं शताब्दी के बीच अंग्रेजी साम्राज्यवाद ने लगभग सम्पूर्ण भारतवर्ष को अपनी गिरफ्त में ले लिया। अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विस्तार से छोटानागपुर का क्षेत्र भी अछूता न रहा तथा बिहार के दक्षिणी जनजातीय प्रदेश के रूप में इसका समावेश भी साम्राज्यवादी सत्ता के अधीन हो गया। छोटानागपुर के क्षेत्र में अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विस्तार में ईसाई मिशनरियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इन्होंने अंग्रेजी हुकूमत की नीतियों को सुचारू रूप से लागू करने में सरकार का सहयोग किया। यह योगदान ईस्ट इंडिया कंपनी से लेकर 1858 ई० में सत्ता का हस्तांतरण ब्रिटिश क्राउन के अधीन होने तक यथावत बना रहा। इसके लिए ईसाई मिशनरियों ने शिक्षा, स्वास्थ्य, भूमि, वित्तीय सहायता आदि जैसे तत्त्वों को धर्मांतरण के उपकरणों के रूप में उपयोग किया। अंग्रेजी साम्राज्यवादी नीतियों ने छोटानागपुर के जनजातीय सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक व्यवस्थाओं, जिनका सरोकार उनकी परंपरागत व सामुदायिक मापदंडों से था, की जडें खोद दी। यद्यपि 1765 ई० में दीवानी अधिकार प्राप्त करने के बाद ही छोटानागपुर के क्षेत्र में भी साम्राज्यवाद का प्रसार आरम्भ हो गया था। ईसाई मिशनरियों के इस क्षेत्र में आगमन ने इस प्रक्रिया को और तीव्र कर दिया। प्रस्तुत आलेख ईसाई मिशनरियों के द्वारा अपनाए गए उन तमाम उपकरणों की समीक्षा करेगी जिनका प्रयोग मिशनरियों ने साम्राज्यवादी नीतियों के इस क्षेत्र में प्रसार के लिए किया।

मुख्य संकेतक : साम्राज्यवाद, जमीन बचाइस योजना, धानगोला व्यवस्था, धर्मांतरण

भूमिका

1765 ई० में ईस्ट इंडिया कंपनी को बंगाल,बिहार व उडीसा की दीवानी प्राप्त होने के पश्चात छोटानागपुर भी बिहार के दक्षिणी क्षेत्र के रूप में अंग्रेजी सत्ता के अधीन हो गया।[1] छोटानागपुर का क्षेत्र प्राचीन काल से ही एक जनजातीय बहुल प्रदेश रहा है। आरंभ से ही इस क्षेत्र में बाह्य संस्कृतियों का आगमन जारी रहा। प्राचीन काल में गैर–जनजातीय हिन्दुओं के रूप में तथा मध्यकाल में मुसलमानों की संस्कृति से इनकी समागम्यता देखी जा सकती है।[2] अंग्रेजी सता के अधीन होने के पश्चात ईसाईयत से इनकी तारतम्यता से प्राचीन व पारंपरिक आदिवासी संस्कर्षति को एक नवीन आयाम प्राप्त हुआ। इन संस्कृतियों के साथ जनजातियों के संबंध में इर्ष्या व प्रेम

* षोधार्थी, स्नातकोत्तर इतिहास विभाग, विनोबा भावे विष्वविद्यालय, हजारीबाग, झारखण्ड

का मिला–जुला रूप दिखाई दिया। छोटानागपुर में ईसाइयत का आगमन कहीं न कहीं अंग्रेजी आर्थिक साम्राज्यवाद के पक्ष में ही हुआ था। प्रसिद्ध साम्राज्यवादी इतिहासकार लेविस नैमियर कहते हैं कि 'साम्राज्यवाद एक दषष्टिकोण है, जिसके अनुसार कोई महत्वकांक्षी राष्ट्र अपनी शक्ति तथागौरव को बढ़ाने के लिए अन्य देशों के प्राकृतिक और मानवीय संसाधनों पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लेता है। यह हस्तक्षेप राजनीति,आर्थिक,सांस्कषतिक या अन्य किसी प्रकार का भी हो सकता है'।[3] अंग्रेजी हुकूमत के द्वारा इस प्रकार का हस्तक्षेप छोटानागपुर के क्षेत्र में भी देखा गया, जिसमें ईसाई मिशनरियों ने महती भूमिका निभाई।

18वीं शताब्दी के मध्य का समय वास्तव में ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति के प्रवाह का समय रहा था। इस क्रांति ने ब्रिटेन के उद्योगों के उत्पादन पद्धतियों में परिवर्तन ला दिया। औद्योगिक क्रांति के अति–उत्पादन और कम खपत वाले आर्थिक परिणामों से निपटने की आवश्यकता से प्रेरित होकर ब्रिटेन ने साम्राज्य निर्माण की एक आक्रामक योजना बनाई। 18वीं से 19वीं शताब्दी के दौरान केवल विदेशी व्यापारिक बस्तियों को स्थापित करने के बजाए नए साम्राज्यवादियों ने अपने लाभ के लिए स्थानीय औपनिवेशिक सरकारों पर नियंत्रण स्थापित करने का प्रयास किया।[4]1870 ई० और 1914 ई० के बीच औद्योगिक क्रांति के दूसरे चरण के दौरान औद्योगिक उत्पादन, प्रौद्योगिकी और परिवहन में तेजी से प्रगति ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद एवं अर्थव्यवस्था को बढ़ावा दिया। इस प्रकार औद्योगिक क्रांति की मूल आवश्यकता के रूप में ब्रिटिश साम्राज्यवाद का विकास छोटानागपुर में हुआ।[5]

छोटानागपुर में ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीतियों के प्रवेश ने जनजातियों के परंपरागत विधि–विधानों, रीति–रिवाजों एवं अन्य सामाजिक,आर्थिक,राजनीतिक,पारंपरिक व्यवस्थाओं पर कुठाराघात किया।परिणामस्वरूप, जनजातियों के बीच सरकार के खिलाफ असंतोष की भावना का संचार हुआ और वे विद्रोह के लिए विवश हुए।[6] दूसरे शब्दों में कहें तो अंग्रेजी सत्ता की स्थापना के साथ ही जनजातियों ने उनका विरोध आरंभ कर दिया था। सरकार इन विद्रोहों के खिलाफ अनेक दमनकारी नीतियों को अपना रही थी,परंतु जनजातियों के बीच उत्पन्न रोष को समाप्त करने में पूर्णतया विफल रही थी। इन विद्रोहों में चूआर विद्रोह (1766–1767 ई०), कोल विद्रोह(1831–1832 ई०) आदि प्रमुख रहे, जिन्होंने अंग्रेजी हुकूमत को आदिवासी खिलाफत के नकारात्मक पहलुओं से परिचित कराया। छोटानागपुर में ईसाई मिशनरियों का आगमन इसी कालक्रम में हुआ था। वास्तव में 1813 ई० के चार्टर अधिनियम के माध्यम से ईसाई मिशनरियों के आगमन को सुनिश्चित कर दिया गया। इससे भारत में धर्म प्रचार करने की अनुमति इसाई मिशनरियों को प्राप्त हो गई। छोटानागपुर में ईसाई मिशनरियों का आगमन 1845 ई० में हुआ।[7] फादर कोन्सटेंट लीवन्स से लेकर फादर जे०बी० हॉफमैन तक ईसाई मिशनरियों ने धर्म प्रचार की जिस परंपरा की शुरुआत की वह भारतीय स्वतंत्रता तक विद्यमान रही। ईसाई मिशनरियों ने छोटानागपुर के जनजातियों के बीच रहकर उनकी सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक

व्यवस्थाओं का अध्ययन किया। वास्तव में ईस्ट इंडिया कंपनी के छोटानागपुर के क्षेत्र में आने के पश्चात ही इस क्षेत्र में साम्राज्यवाद का प्रसार प्रारंभ हो गया था, किंतु एक व्यापारिक कंपनी के द्वारा प्रसारित यह एक आर्थिक साम्राज्यवाद के रूप में ही सामने आया था जिसके तहत सरकार ने जनजातियों के विभिन्न आर्थिक संसाधनों (मूलतः भूमि) पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया था। यही वजह थी कि 19वीं शताब्दी के मध्य का यह समय वास्तव में जनजातीय विद्रोहों का समय था जिसमें ईसाई मिशनरियों ने धर्मांतरण के माध्यम से सरकार की सहायता की तथा जनजातीय आक्रोश को शांत करने का यथासंभव प्रयास किया।[8]

ईसाई मिशनरियों के प्रारंभिक उद्देश्य

एक विदेशी व्यापारिक कंपनी (ईस्ट इंडिया कम्पनी) का कालांतर में शासक वर्ग के रूप में सामने आना एक युगांतरकारी घटना रही थी, लिहाज़ा उनको जनजातियों के पारंपरिक रीति–रिवाजों तथा विधि–विधानों का समुचित ज्ञान होना असंभव था। इसके बावजूद एक व्यापारिक कम्पनी से जनकल्याण की नीतियों की अपेक्षा नहीं की जा सकती थी। कम्पनी ने अपने आर्थिक उद्देश्यों तथा औद्योगिक क्रांति की माँग की पूर्ति करने हेतु जिन नियमादेशों को लागू किया उसने जनजातियों के बीच असंतोष की भावना का संचार किया तथा अशिक्षित ग्रामीण जनजातीय समुदाय विभिन्न विद्रोहों की साक्षी बने। इस परिस्थिति में ईसाई मिशनरी उनके बीच शिक्षा, चिकित्सा व स्वास्थ्य के साथ–साथ विभिन्न आर्थिक कार्यक्रमों के साथ उपस्थित हुए। इस प्रकार इन विद्रोहों को शांत करने में ईसाई मिशनरियों ने सरकार की अप्रत्यक्ष रूप से सहायता की तथा इस क्षेत्र में साम्राज्यवादी नीतियों को बढ़ावा दिया।[9]

अंग्रेजी हुकूमत को छोटानागपुर जैसे जनजातीय प्रदेश में स्थायित्व प्रदान करना ईसाई मिशनरियों के आरंभिक उद्देश्यों में से एक रहे थे। ईसाइयत का छोटानागपुर में प्रवेश के पूर्व जनजातीय धर्म प्राचीन सरना धर्म के रूप में विद्यमान था। जबकि अंग्रेजी शासक वर्ग ईसाइयत के अनुयायी थे। इस प्रकार जनजातियों के बीच ईसाइयत का प्रचार अंग्रेजी सत्ता केस्थायित्व में एक महत्वपूर्ण अवयव का कार्य कर सकता था। जिसमें शासक व शोषित दोनों ही समान धर्म के धर्मावलंबी होते। भारी संख्या में ईसाई मिशनरियों ने जनजातियों के बीच धर्मांतरण का कार्य किया ताकि धर्म के मार्ग से ही अंग्रेजी सत्ता के प्रति जनजातीय में श्रद्धा व विश्वास उत्पन्न किया जा सके। इससे जनजातीय प्रदेश में अंग्रेजी हुकूमत की नीतियों को सरलता से स्थापित किया जा सकता था,साथ ही जनजातीय विरोधों को शांत करने में सहूलियत हो सकती थी। इस प्रकार ईसाई मिशनरियों ने अंग्रेजी सरकार को स्थायी स्वरूप प्रदान करने के लिए धर्म के मार्ग का चयन किया।[10]

ईसाई मिशनरियों ने छोटानागपुर में धर्म प्रचार के माध्यम से एक ऐसे वर्ग को उत्पन्न करने का प्रयास किया जो अंग्रेजी सत्ता के स्थायित्व की कामना करते थे। इन्होंने सरकार के सहयोग में कार्य किया। ईसाई धर्म में दीक्षित होने के पश्चात उन्होंने सरकार का समर्थन करना आरंभ

किया, उनकी नीतियों को क्रियान्वित करने का हर सम्भव प्रयास किया। छोटानागपुर में ईसाइयत के प्रचार का यह एक महत्वपूर्ण उद्देश्य सामने आता है जिसके तहत मिशनरियों ने जनजातियों के बीच ही,जो एक लंबे समय तक विदेशी सत्ताके खिलाफ क्रियाशील रहे थे, एक ऐसे वर्ग को अपने पक्ष में कर लिया जो अंग्रेजी सत्ता तथा उनकी साम्राज्यवादी नीतियों में श्रद्धा रखते थे तथा सरकार के विकास में ही अपना विकास देखते थे। यही वर्ग कालांतर में विभिन्न चर्चों के साथ जुड़कर जनजातियों के हित में अनेक विकासवादी कार्य करते दिखाई दिया। इन्हें अंग्रेजी सरकार का सहयोग भी प्राप्त हुआ।[11]

विदेशी ईसाइयों का मिशनरियों के रूप में ईसाइयत का प्रसार करना उनके उद्देश्यों में शामिल था। यद्यपि धर्म प्रचार के प्रारंभिक उद्देश्य आर्थिक लाभ से प्रेरित रहे थे,इसके बावजूद भारी संख्या में जनजातियों ने ईसाइयत को अपनाया। यद्यपि छोटानागपुर में जनजातियों के द्वारा ईसाइयत को अपनाने के अनेक कारण रहे थे परंतु ज्यादातर जनजातियों ने ईसाई धर्म को इसलिए अपनाया था क्योंकि ईसाई मिशनरियों के द्वारा जनजातियों के बीच विभिन्न आर्थिक कार्यक्रम भी चलाए जा रहे थे। जनजातियों को विश्वास हो चुका था कि भले ही नवीन ईसाई धर्म के मार्ग पर मोक्ष की प्राप्ति न हो,जो कि किसी भी धर्म का मूल उद्देश्य होता है,परंतु इस धर्म को अपनाकर आर्थिक अधिकारों की प्राप्ति अवश्य हो जाएगी। इस प्रकार जनजातियों का झुकाव ईसाइयत की ओर हुआ, जिसका लाभ मिशनरियों ने अपने पक्ष में उठाया और धर्म परिवर्तन कराए। यही कारण है कि ईसाई मिशनरियों ने धर्म स्वीकार करने के एवज में ही जनजातियों को आर्थिक लाभ प्रदान किया तथा सरकार से भी उनके पारंपरिक आर्थिक अधिकारों की माँग प्रस्तुत की।[12]

साम्राज्यवाद में सहयोग तथा धर्मांतरण के लिए मिशनरियों द्वारा अपनाए गए उपाय

यह कहना अनुचित नहीं होगा कि ईसाई मिशनरियों ने अंग्रेजी हुकूमत के द्वारा अपनाई जाने वाली साम्राज्यवादी नीतियों को छोटानागपुर में आरोपित करने के उद्देश्य से धर्मांतरण का मार्ग चुना। दूसरे शब्दों में कहें तो ईसाइयत के प्रसार को वास्तव में साम्राज्यवादी सिद्धान्तों के प्रतिपादन एवं नियमन के लिए एक अविकारी मार्ग के रूप में अपनाया गया। इसके लिए उन्होंने निम्नलिखित उपकरणों का उपयोग किया।

ईसाई मिशनरियों ने छोटानागपुर के जनजातियों के बीच रहकर उनकी परिस्थितियों का अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि जनजातियों के बीच शिक्षा का पूर्णतः अभाव है। इस प्रकार उन्होंने ईसाइयत अपनाने के एवज में शिक्षाके क्षेत्र में कार्य किया। उन्होंने स्थानीय विद्यालयों की स्थापना की। आरंभिक दौर में उन्होंने छोटानागपुर के राँची,दिघिया तथा मांडर को शिक्षा का केंद्र बनाया जिसके विवरण इस प्रकार हैं –

इलाके का नाम	विद्यालयों की संख्या	विद्यार्थियों की संख्या
राँची	16	497
दिघिया	12	261
मांडर	23	420
कुल	51	1178

स्रोत :– एल० वान हॉक : ए रिपोर्ट ऑन द वर्किंग ऑफ कैथोलिक प्राइमरी स्कूल्स इन छोटानागपुर।

ईसाई मिशनरियों के द्वारा स्थापित आरंभिक प्राथमिक विद्यालयों में अंग्रेजी,गणित तथा भूगोल के अलावा धार्मिक शिक्षा को प्रमुख पाठ्यक्रमों में निहित किया गया था। यह विद्यालय जनजातियों के बीच शिक्षा के प्रसार को बढ़ावा देते हुए उन्हें सरकार की ओर श्रद्धा का संचार करने के साथ–साथ उनके बीच ईसाई धर्म के प्रवाह को भी बढ़ावा दिया।[13]

आरंभिक ईसाई मिशनरियों के द्वारा जनजातियों के बीच स्वास्थ्य एवं चिकित्सा को भी बढ़ावा दिया गया। तत्कालीन छोटानागपुर का क्षेत्र अधिकांशतः वन प्रदेश के रूप में विद्यामान रहा था। ग्रामीण जनता आर्थिक रूप से पीड़ित थी। स्वास्थ्य के क्षेत्र में उनकी दशा दयनीय थी। किसी भी बीमारी का इलाज नहीं था। बीमार व्यक्ति को विधाता के हाथ ही सौंप दिया जाता था। कुछ देशी नुस्खों अथवा वैद्य के द्वारा इलाज किया जाता था किंतु वे पूर्णतः समर्थ नहीं होते थे अतः चिकित्सा के लिए अंधविश्वासों का सहारा लिया जाता था और ओझा–मति के पास झाड़–फूँक के लिए ले जाया जाता था। अशिक्षित जनजातियों को न तो शारीरिक शिक्षा का ज्ञान था और न ही आयुर्वेदिक औषधियों का, अतः जनजातियों के बीच मृत्यु दर का अधिक होना स्वाभाविक था। ईसाई मिशनरियों ने इस स्थिति में स्वास्थ्य सेवाओं पर काम करना आवश्यक समझा और विभिन्न चिकित्सा केंद्रों की स्थापना की। जहाँ एक ओर जनजातीय शासक वर्गों तथा अंग्रेजी हुकूमत का ध्यानाकर्षण इस ओर सूक्ष्म था वहीं मिशनरियों ने स्वास्थ्य सेवाओं को इस क्षेत्र में बढ़ावा देते हुए अपने उद्देश्यों की पूर्ति के संदर्भ में इसे एक आवश्यक मार्ग के रूप में देखा। मांडर का होली फैमिली अस्पताल इसका जीवंत उदाहरण है।[14]

जनजातीय अर्थव्यवस्था वास्तव में भूमि पर आधारित भरण– पोषण की अर्थव्यवस्था का उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। अधिकांश जनजातीय समुदाय कृषक थे। औपनिवेशिक काल में विभिन्न भूमि कानूनों के कारण जनजातियों की भूमि का हस्तांतरण गैर–जनजातीय समुदायों के बीच हो रहा था। भूमि से बेदखली के कारण आदिवासियों की आर्थिक स्थिति दयनीय हो गई थी। जिसके कारण उनमें सरकार के प्रति असंतोष की भावना का संचार हुआ परिणामस्वरूप छोटानागपुर के क्षेत्र में विभिन्न जनजातीय विद्रोह भी सामने आए। ईसाई मिशनरियों ने इस स्थिति

का लाभ अपने पक्ष में उठाया और जनजातियों के बीच आर्थिक सुविधाएं मुहैया कराने की योजना बनाई। इसी संदर्भ में "जमीन बचाइस योजना"[15] का उल्लेख किया जा सकता है। इसके तहत ईसाइयत अपनाने के एवज में ईसाई मिशनरियों के द्वारा जनजातीय भूमि को हस्तांतरण से बचाने के प्रयास सामने आए। फादर कॉन्स्टेंट लीवन्स ने भी जमीन संबंधी मामलों को सरकार तक पहुँचाने के लिए जनजातियों को ईसाई धर्म स्वीकार करने की शर्त रखी थी। इसके अलावा "ध ाानगोला व्यवस्था"[16] भी जनजातियों के बीच आर्थिक सुविधाओं के संचार के एक प्रयास के रूप में सामने आता है। जिसके तहत ईसाई मिशनरियों ने खाद्यान्न की उपलब्धता को बढ़ावा दिया और जनजातियों के पक्षधर बने।

उपसंहार

'छोटानागपुर के क्षेत्र में ईसाई मिशनरियों के आगमन के पश्चात इन्होंने जनजातीय सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिणिक एवं चिकित्सा व्यवस्थाओं के माध्यम से आदिवासियों की दैनिक परिस्थितियों में परिवर्तन लाए', इस कथन से इनकार नहीं किया जा सकता। परंतु उनके द्वारा किये गए योगदान का उद्देश्य कहीं न कहीं अंग्रेजी हुकूमत के उद्देश्यों से प्रेरित रहा था। यही कारण हैं कि ईसाई मिशनरियों के माध्यम से सरकार की पहुँच उन दूरस्थ जनजातीय प्रदेशों में भी हो गई जहाँ पूर्ववर्त्ती मुगल शासकों के द्वारा कोई विशेष कार्य नहीं किये जा सके थे। ईसाई मिशनरियों ने शिक्षा, स्वास्थ्य एवं चिकित्सा के साथ–साथ आर्थिक परिस्थितियों के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। इससे जनजातियों के बीच उनकी पैठ सुदृढ़ हुई और उन्होंने धर्मान्तरण के माध्यम से सरकार की साम्राज्यवादी नीतियों को स्थायित्व प्रदान करने में सहयोग किया।

संदर्भ

1. एलेक्सएक्का : ***मांडर मिशन की धरोहर,शतवर्षीय स्मारिका 1898 – 1998***, कैथोलिक चर्च, मांडर राँची, 1999, पृ० 17–20.
2. बी०विरोत्तम :***झारखंड : इतिहास एवं संस्कृति***, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2016, पुर्नमुद्रण, पृ० 117–120.
3. लेविस नेपियरः ***इम्पीरिअलिज्म एवं कोलोनियलिज्म***, मार्टिन एण्ड स्मिथ कम्पनी, लंदन, 1992,पृ० 12.
4. पीटर पोनेट : ***रिपोर्ट ऑफ सोशल–इकोनॉमिक सर्वे ऑफ राँची आर्कडायोसिस***, सेंट जेवियर इंस्टिट्यूट ऑफ सोशल सर्विस,राँची, 1986, पृ० 89.
5. जॉन रेय : ***इकोनॉमिक हिस्ट्रीऑफ ब्रिटेन,*** इकोनॉमिक रिसर्च एंड डिवेलपमेंट सेंटर, लंदन, 1946, पृ० 6.
6. जे०बी० हॉफमैन : ***इनसाइक्लोपीडिया मुण्डारिका***, भाग 10, ज्ञान प्रकाशन, नई दिल्ली, 1936, भाग 10, पृ० 2398.

7. सी०एफ०एंड्रीयूज : ***हैंडबुक ऑफ इंग्लिश चर्च एक्सपैंशन इन नार्थ इंडिया***, ए०आर० मोबरे एण्ड कम्पनी लिमिटेड, लंदन, 1908, पृ० 37.
8. वही,पृ० 136–145.
9. जे० हॉब्सन : ***कॉरेस्पॉन्डेंस इन इंडिया बिटविन द कंट्री पॉवर्स एण्ड द ईस्ट इंडिया कम्पनी सर्वैंट्स***,खंड 5, बंगाल सेक्रेटेरिएट प्रेस, कलकत्ता, 1786, पृ० 39.
10. एच०जोशन : ***द मिशन ऑफ वेस्ट बंगाल ओर द आर्कडायोसिस ऑफ कलकत्ता***, बेल्जियम प्रोविंस सोसायटी ऑफ जीसस, राँची, 1993, पृ० 132.
11. ***प्रोसीडिंग्स ऑफ द कॉन्फ्रेंस हेल्ड इन राँची ऑन 17–18 अक्टूबर***, 1987, ***इन छोटानागपुर मिशन राँची.***
12. फादर डेववॉन : ***द क्रिस्टियन फेथ इन द डॉक्टरीनल डॉक्यूमेंटेशन ऑफ द कैथोलिक चर्च***, आर० सी० सोसाइटी प्रकाशन, बैंगलोर,1981,पृ० 123.
13. एल०वान हॉक : ***ए रिपोर्ट ऑन द वर्किंग ऑफ कैथोलिक प्राइमरी स्कूल्स इन छोटानागपुर, रिपार्ट संख्या 16,*** मिशनरीज सोसइटी प्रकाशन, मांडर, 1997, पृ० 49.
14. वान ह्युवाकः ***ए नाट न द विलेज हेल्थ इन मांडर पारिस***, कैथोलिक सोसायटी, राँची, 1910, पृ० 1–5.
15. एच० वान हॉक, निष्कलंका, ***छोटानागपुर : आदिवासियों को बसाने की योजना***, भाग XXIV, संत जॉन्स प्रकाशन, राँची, 5 मई 1944, पृ० 58.
16. डे म्यूल्डरः ***द जमीन बचाइस सभा ऑफ छोटानागपुर***, ***इन आवरफील्ड ईयर 20,न० 5***, राँची, सितम्बर, 1944, पृ० 145–146.

राजमहल की मूल आदिम जनजाति पहाड़िया : एक ऐतिहासिक अवलोकनः 1765–1947 ई.

संदीप कुमार*

सारांश

पहाड़िया जनजाति संताल परगना के राजमहल की प्राचीनतम जनजातियों में से एक है। आज पहाड़िया जनजाति के अंतर्गत सौरिया पहाड़िया और माल पहाड़िया को रखा गया है। पहाड़िया जनजाति राजमहल की मूल आदिम जनजाति है। ऐतरेय ब्राह्मण, यूनानी यात्री मेगास्थनीज के विवरणों, चीनी यात्री फाह्यान एवं व्हेनसांग के भारत संबंधी आलेखों तथा यूरोपीय यात्रियों के सर्वेक्षणों में राजमहल के मूल आदिम जनजाति के रूप में पहाड़िया जनजाति का उल्लेख है। ब्रिटिश प्रशासन का प्रारंभ इस क्षेत्र में माल पहाड़िया के उपद्रव, लूट की घटनाओं के परिणामस्वरूप राजमहल के पहाड़ी क्षेत्र में उत्पन्न अशांति पर नियंत्रण की स्थापना के प्रयत्नों के रूप में हुआ। ब्रिटिश काल में "जंगल तराई" के नाम से विख्यात संथाल परगना का पहाड़ी, जंगली और घाटियों से भरा दुर्गम क्षेत्र मुगल काल से भारत के प्रशासनिक इतिहास का एक महत्वपूर्ण केंद्र रहा है। राजमहल के पहाड़िया जनजातीय आंदोलन की पृष्ठभूमि में उन पर थोपी गई बाहरी सत्ता के विरोध में संघर्ष की समर्थता मुख्य रूप से उत्तरदायी रही है। पहाड़िया जनजातीय आंदोलन के केंद्र में भूमि समस्या, प्राचीन जनजातीय सामाजिक मूल्यों की पुनः स्थापना, जनजातीय शोषण इत्यादि की घटनाएं सन्निहित थी। भारत की सर्वप्रथम जनजाति पहाड़िया ही थी जिसने अपने प्रारंभिक दिनों में औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध वीरतापूर्ण प्रतिरोध की पेशकश की। परिणामस्वरूप आगे चलकर लोगों में औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध राष्ट्रीयता की भावना का विकास हुआ। 20 वीं सदी तक पहाड़ियों की राजनीतिक भूमिका में काफी परिवर्तन आ गए थे। इस प्रकार ब्रिटिश नीति में परिवर्तन के बावजूद 1765–1947 ईस्वी स्वतंत्रता आंदोलन तक में बहुत से पहाड़िया क्रांतिकारियों, नेताओं तथा लोगों ने अपना बहुमूल्य योगदान दिया।

कुंजी शब्द : अगम्य, अभेद्य पहाड़िया भूमि, ब्रिटिश कूटनीति, जमींदारी, दामिन–ई–कोह, हिल असेंबली

भूमिका

पहाड़िया संताल परगना की प्राचीनतम जनजातियों में से एक है।[1] तुर्क–अफगान शासन काल से ही इस क्षेत्र का इतिहास "राजमहल" के आर्थिक और सामाजिक महत्व के इर्द–गिर्द घूमता रहा है। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार संताल परगना "सुहय" के नाम से जाना जाता था।[2]

*एम. फिल., शोधार्थी विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची

प्रारंभिक काल में इस क्षेत्र पर मालेर अथवा सौरिया पहाड़िया जनजातियों का शासन था।[3] यूनानी यात्री मेगास्थनीज, चीनी यात्री फाहियान तथा ह्वेनसांग के भारत यात्रा संबंधी आलेखों में पहाड़िया जनजाति का उल्लेख मिलता है।[4] चंद्रगुप्त मौर्य के काल [302 ई.पु.] में आए यूनानी यात्री मेगास्थनीज़ ने अपने भारत भ्रमण के दौरान राजमहल पहाड़ियों के अधोभाग में रहने वाली जंगली आदिम जातियों का उल्लेख "मल्ली" के रूप में किया है, जो अब अपने को मालेर या सौरिया पहाड़िया कहा करते हैं।[5] मेगास्थनीज के अनुसार मंदार पहाड़ के निकट राजमहल पहाड़ियों में जो वर्तमान में झारखंड राज्य के साहिबगंज जिले में अवस्थित है, में पहाड़िया जनजाति का निवास स्थान था। कालांतर में पहाड़िया जनजाति तीन शाखाओं 1. सौरिया पहाड़िया, 2. माल पहाड़िया, 3. कुमारभाग पहाड़िया में विभक्त हो गई।[6] माल पहाड़िया मुख्य रूप से बांसलोई नदी के दक्षिण में निवास करती है, जबकि कुमारभाग पहाड़िया इस नदी के उत्तरी तट पर बसी हुई है। सौरिया पहाड़िया का मुख्य संकेंद्रण इस नदी के उत्तर में अवस्थित राजमहल की पहाड़ियों पर है।[7]

माल पहाड़िया मुख्यतः संताल परगना में रहते हैं।[8] भौगोलिक दृष्टि से उनका निवास स्थान बहुत उपयुक्त नहीं है। माल पहाड़िया द्रविड़ परिवार की जनजाति है।[9] प्रजातीय दृष्टि से इन्हें प्रोटो–ऑस्ट्रेलायड समूह में रखा गया है। बुचानन हैमिल्टन ने माल पहाड़िया का संबंध मालेर [सौरिया पहाड़िया] से बताया है[10] किंतु डाल्टन महोदय का विचार है कि माल पहाड़िया राजमहल के पहाड़ी लोगों से बिल्कुल अलग है।[11] बॉल महोदय ने भी इसका समर्थन करते हुए कहा है कि माल पहाड़िया राजमहल हिल के असल पहाड़िया से आकृति, रीति रिवाज और भाषा के दृष्टिकोण से बिल्कुल अलग है। किंतु आज पहाड़िया जनजाति के अंतर्गत सौरिया पहाड़िया और माल पहाड़िया को रखा गया है। माल पहाड़िया की भाषा माल्टो है जो द्रविड परिवार की मानी जाती है।[12]

सौरिया पहाड़िया मुख्य रूप से संताल परगना प्रमंडल के साहिबगंज, पाकुड़, गोड्डा, दुमका तथा जामताड़ा जिलों में निवास करती है। इस जनजाति के कुछ आबादी बिहार के सहरसा, कटिहार तथा भागलपुर जिले में भी पाई जाती है।[13] संताल परगना के दामिन–ई–कोह [पहाड़ का आंचल] के उत्तरी भाग, जिसका अधिकांश हिस्सा राजमहल की पहाड़ियों से आच्छादित है, में इस जनजाति का मुख्य संकेंद्रण है।[14] राजमहल पहाड़ियों की गोद में निवास करने वाली सौरिया पहाड़िया जनजाति को इस क्षेत्र का आदि निवासी माना जाता है।[15] चंद्रगुप्त मौर्य के समय [302 ईसा पूर्व] में मेगास्थनीज ने अपने भारत भ्रमण के दौरान राजमहल पहाड़ियों के अधोभाग में रहने वाली जंगली आदिम जातियों का उल्लेख "मल्ली या सौरि" के रूप में किया है।[16] तुर्क अफगान काल एवं मुगल काल में भी पहाड़िया जनजातियों का उल्लेख मिलता है। सर्वप्रथम जब ब्रिटिश भारत आए तो उन्हें भी इन आदिम पहाड़िया जनजातियों का विरोध सहना पड़ा।

प्रस्तुत आलेख का उद्देश्य ब्रिटिश काल में पहाड़िया जनजाति की ऐतिहासिक भूमिका का अवलोकन करना है। यह कई बिंदुओं पर प्रकाश डालेगा कि उनके विद्रोह का स्वरूप क्या था। साथ ही यह देखने का प्रयास होगा कि किस प्रकार अंग्रेजों ने आरंभ में "दामिन–ई–कोह" का गठन कर पहाड़िया जनजातियों के बीच शांति तथा अमन–चैन स्थापित कर उन्हें अपना सहयोगी बना लिया। ब्रिटिश नीति में परिवर्तन के साथ आगे चलकर पहाड़िया जनजाति की राजनैतिक भूमिका 20 वीं सदी तक क्या रही यह भी जानने का प्रयास होगा।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

पहाड़िया समाज की एक पौराणिक कथा के अनुसार ईश्वर ने सर्वप्रथम पृथ्वी पर सात भाइयों को पैदा किया और स्वर्ग से इन्हें राजमहल की पहाड़ियों में भेज दिया।[17] पहाड़िया अपने को इन्हीं सात भाइयों के अग्रज की संतान मानते हैं। पहाड़ी अगम्य और अभेद्य होने के कारण पहाड़िया बाहरी आक्रमणों से सुरक्षित रहे तथा भाग्यवश प्रकृति इन्हें यथाकाल साधारण जीवन यापन के लिए आवश्यक वस्तुएं उपलब्ध करा देती थी।[18] इसका एक दुष्परिणाम भी हुआ कि इनमें लूटने खसोटने की प्रवृत्ति उत्पन्न होने लगी। वे बहुत ही कम परिश्रम करते और राजमहल की पहाड़ियों को अपनी पैतृक संपत्ति समझने लगे। प्रारंभ में उन्होंने हिंदू महाजनों, घूसखोरों और मुगल शासकों का विरोध किया। अंग्रेजो के खिलाफ भी अनवरत रूप से संघर्ष करते रहे।[19] पहाड़िया जनजाति कई शताब्दियों तक अपने पड़ोसियों से अलग रही। अंग्रेजों के आगमन से पूर्व तक भौगोलिक पृथकता के कारण पहाड़िया जनजाति अपनी स्वतंत्रता को कायम रख सकी थी। उन्हें अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए राजपूत काल, मुगल काल तथा ब्रिटिश काल में विदेशी ताकतों से संघर्ष करना पड़ा था। राजमहल की पहाड़ियों के निवासी कभी भी मुगलों के अधिकार में नहीं रहे। वृहत पहाड़ी भू–भाग होने के कारण मुगल प्रशासक कभी भी इस जंगली क्षेत्र में प्रवेश नहीं कर सके थे। 1742 ईस्वी में मराठों ने भी राजमहल क्षेत्र पर आक्रमण किया था। हंडवा, गिद्धौर, लकड़ागढ़, सकरीगली, राजगढ़ [तेलियागढ़], महेशपुर, पाकुड़, सनकारा इत्यादि पहाड़ियों की सरदारी तथा जमींदारी कालक्रम में विलुप्त हो गई। अकबर के समय पहाड़िया जनजाति की अनेक जमींदारी पर खैतौरी सरदारों का अधिकार हो चुका था। तेलियागढ़ नट पहाड़ियों के अधिकार में नहीं था, जिन्होंने मानसिंह का विरोध किया था।[20]

पहाड़िया संग्रामः उपेक्षित इतिहास लेखन

अपने सरदारी तथा जमींदारी पतन के बावजूद पहाड़िया लोगों ने अंग्रेजों का जमकर विरोध किया था। परिणामस्वरूप 1790 ईस्वी से 1810 ईस्वी के बीच अंग्रेजों ने संतालो को उनके क्षेत्र में बसा कर उन्हें अल्पसंख्यक बना दिया, फिर भी पहाड़िया अंग्रेजों से लड़ते रहे।

अंग्रेजों के विरुद्ध पहाड़िया जनजाति के संघर्ष के विषय में बहुत ही कम घटनाएं लिपिबद्ध की गई है। 18 वीं शताब्दी में अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ने वाले सरदार रमना आहडी [धसनिया पहाड़, दुमका], करिया पूजहर [आमगाछी पहाड़, दुमका], चेंगरु सांवरिया [तारगाछी पहाड़, राजमहल], पांचगे डोम्बा पहाड़िया [मतमंगा पहाड़, महाराजपुर], नायब सुरजा पहाड़िया [गढ़ी पहाड़, मिर्जाचौकी] इत्यादि पहाड़िया सेनानियों की उपलब्धियों की जानकारी बहुत कम लोगों को है। इन पहाड़िया सरदारों ने 1765 ईस्वी में मुगल सम्राट शाह आलम द्वारा अंग्रेजों को दीवानी प्रदान किये जाने का विरोध किया था।[21] मुगल बादशाह से दीवानी प्राप्त कर जब अंग्रेज आम लोगों को परेशान करने लगे थे तब पहाड़िया लोगों ने रमना आहडी नामक पहाड़िया सरदार के नेतृत्व में जून 1766 ईस्वी में मालंचा पहाड़ [नाला प्रखंड, जामताड़ा] की तराई में अंग्रेजों तथा मुगलों से संघर्ष शुरू किया गया था।[22] तीरंदाजी में प्रवीण पहाड़िया सेना ने अपने तीरों तथा भालों से मुगलों तथा अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिए थे किंतु दुर्भाग्यवश रमना आहडी घायल होकर पकड़ा गया तत्पश्चात उसकी हत्या कर दी गई।[23] पहाड़िया सेना भाग खड़ी हुई परंतु संघर्ष ने तहलका मचा दिया। सरदार रमना आहडी की हत्या का बदला लेने के लिए करिया पुजहर, चेंगरु सांवरिया तथा पांचगे डोम्बा पहाड़िया सेना लेकर उधवा नाला में शिविर स्थल पर मुगल तथा अंग्रेजों पर अचानक धावा बोल दिया। मुगलों तथा अंग्रेजों को पहाड़िया सेना ने अपने तीर तथा भाला के प्रहार से बुरी तरह जख्मी कर डाला। यद्यपि इस युद्ध में पहाड़िया सरदार करिया पुजहर शहीद हो गए तथा एक अन्य पहाड़िया सरदार पांचगे डोम्बा पहाड़िया बुरी तरह घायल हो गए फिर भी अंग्रेज पहाड़िया सेना का सामना न कर सके।[24] परिणामस्वरूप अंग्रेजों ने अपनी कूटनीति का प्रयोग कर इस क्षेत्र में संतालो को बसाना प्रारंभ कर दिया।[25]

इसके बाद भी अंग्रेजों के खिलाफ पहाड़िया जनजाति ने लगातार विद्रोह किए। पहाड़िया जनजाति द्वारा विद्रोह किए जाने के कारण अंग्रेजों को भू राजस्व की वसूली एवं अपने प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने में कठिनाई उत्पन्न होने लगी। बिना प्रशासनिक व्यवस्था किए और भू राजस्व की वसूली किए ब्रिटिशो द्वारा शासन चलाना एक असंभव कार्य था। 1772 ईस्वी में बंगाल के गवर्नर वारेन हेस्टिंग्स ने मालगुजारी वसूलने के विरोध में भड़के पहाड़िया विद्रोह को कुचलने के लिए 800 सैनिकों को भेजा। 1772 ईस्वी की क्रांति के दौरान क्रांतिकारी चेंगरु सांवरिया, पांचगे डोंबा पहाड़िया तथा करिया पूजहर शहीद हो गए।[26] अंग्रेज शासक बलपूर्वक जीत नहीं सके तो हार कर उनके साथ मित्रता का हाथ बढ़ाया।

पहाड़िया विद्रोह को दबाने के लिए कैप्टन ब्रुक के बाद कैप्टन ब्राउन पहाड़िया क्षेत्र के प्रशासक बनकर आए। उन्होंने पहाड़िया शासन व्यवस्था को लागू करने का फैसला किया। तब अंबर तथा सुल्तानबाद के पहाड़िया लोगों ने इसका विरोध किया। कैप्टन ब्राउन ने पहाड़िया की

पारंपरिक शासन व्यवस्था के सरदार, नायक तथा मांझी का विश्वास हासिल करने के लिए उन्हें प्रशासनिक और न्यायिक शक्ति प्रदान की। कुछ ही दिनों के बाद सनकारा राजा सुमेर सिंह की हत्या कर दी गई।[27] 1781–1782 ईस्वी में महेशपुर राज की रानी सर्वेश्वरी ने अंग्रेजी शासन के विरुद्ध बगावत की।[28] इस बगावत में पहाड़िया सरदारों ने अंग्रेजों के विरुद्ध रानी सर्वेश्वरी की मदद की। पहाड़िया जनजाति ने अंग्रेजों को अपने सीमा क्षेत्र में अतिक्रमण रोकने के लिए एक लंबी अवधि तक संघर्ष जारी रखा किंतु अंग्रेज बल प्रयोग से उन्हें अपने काबू में नहीं कर सके। अंततः अंग्रेजों को उनके साथ शांति की नीति अपनानी पड़ी।[29]

ऑग्सटस क्लीवलैंड, हिल असेंबली तथा दामिन-ई-कोह

1788 ईस्वी में आगस्टस क्लीवलैंड ने कैप्टन ब्राउन से राजमहल के जिलाधीश का पदभार ग्रहण किया। इसके पूर्व क्लीवलैंड 1773 ईस्वी में राजमहल के जिलाधीश के सहायक के रूप में कार्य कर चुका था। वह पहाड़िया जनजाति की जीवन शैली से भली भांति परिचित था तथा उनकी ईमानदारी और सरलता से अधिक प्रभावित हुआ था। पहाड़िया द्वारा अधिग्रहित सम्पूर्ण राजमहल पहाड़ियों के लिए पहाड़ी [हिल] असेंबली के तहत एक सामान्य तथा न्यायसंगत प्रशासन प्रणाली की स्थापना की। इसके बाद सरदार को रू. 10, नायक को रू. 5, तथा मांझी को रू. 2, मासिक वेतन देना प्रारंभ किया।[30] यह प्रणाली काफी सफल रही। परिणामस्वरूप सैंतालिस पहाड़ी मुखिया और उनके मातहतों ने क्लीवलैंड की अधीनता स्वीकार कर ली। यहीं से समाज के भीतर दलाल बिचौलिए पैदा किए जाने लगे तथा पहाड़िया लोगों में सामाजिक फूट पैदा किया जाने लगा।[31]

क्लीवलैंड ने पहाड़िया मुखिया तथा उप–मुखिया को "सनद" तथा पेंशन प्रदान करने की प्रथा प्रारंभ की। उन्हें अपने अधीन गाँवों में होने वाले सभी प्रकार के अपराधों तथा कानून व्यवस्था संबंधी समस्याओं के विषय में अधिकारियों को रिपोर्ट करने, शांति भंग को रोकने के लिए अपने प्रभाव का उपयोग करने तथा कानून व्यवस्था को बनाए रखने के लिए बुलाए जाने पर अधिकारियों की सहायता करने जैसे कार्य सौपे गए थे। 1782 ईस्वी में 1300 पहाड़ियों की एक सैनिक टुकड़ी बहाल की गई जिसे भागलपुर हिल्स रेंजर्स का नाम दिया गया।[32] इसका नेता जाबड़ा पहाड़िया था। अंग्रेजों ने इस सेना की टुकड़ी का इस्तेमाल जमींदारों को काबू में करने के लिए किया। 1782 ईस्वी में क्लीवलैंड के दो प्रस्तावों 1. पहाड़िया तीरंदाज कोर [हिल आर्चर कोर] को नियमित सिपाहियों के समान अनुशासित तथा शस्त्रों से लैस करना तथा 2. पहाड़ी लोगों के प्रकरणों को साधारण न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र से स्वयं क्लीवलैंड की अध्यक्षता वाली मुखियाओं की ट्रिब्यूनल [ट्रिब्यूनल ऑफ चिप्स] को हस्तांतरित करना, को मंजूरी दी गई थी। फलस्वरुप राजमहल पहाड़ी इलाके को सामान्य न्यायालय के अधिकार क्षेत्रों से मुक्त कर दिया गया।

क्लीवलैंड ने अनुभव किया कि जमींदारों, महाजनों एवं अन्य लोगों द्वारा जनजातीय जमीन हड़पना गंभीर मसला है। अतः इसे रोकने के लिए पहाड़ियों द्वारा अधिग्रहित भूमि को सरकारी संपत्ति बना दिया। यह क्लीवलैंड की एक राजनीतिक कूटनीति का हिस्सा था। इस प्रकार एकीकृत तथा विशेष सुविधा प्राप्त संपूर्ण क्षेत्र "दामिन– ई– कोह" कहलाया।[33] यह क्षेत्र जिलाधीश के एकाधिकार के अंतर्गत ला दिया गया। "हिल असेंबली" की बैठकों के आयोजनों के साथ ही क्षेत्र के प्रशासन के लिए भी नियमावली 1976 के तहत अलग नियम बनाये गये।

"दामिन– ई– कोह" का प्रयोग पहाड़िया जनजातियों के बीच शांति तथा अमन–चैन स्थापित करने में काफी सफल सिद्ध हुआ, किंतु इस प्रयोग ने पहाड़िया लोगों को बाहरी लोगों से बिल्कुल ही अलग कर दिया।[34] पहाड़िया लोगों की अपनी भूमि, जंगल, जल के स्वतंत्रता को समाप्त कर दिया गया। क्लीवलैंड ने पहाड़िया लोगों को मैदानी इलाकों के लोगों से संपर्क में लाने के लिए एक योजना बनायी, किंतु इस योजना के कार्यान्वयन के पहले ही क्लीवलैंड की मात्र 29 वर्ष की आयु में 1784 ईस्वी में संताल नेता कहीं–कहीं ब्रिटिश रिकॉर्डों में पहाड़िया नेता के रूप में प्रसिद्ध तिलका माँझी द्वारा हत्या कर दी गई।[35]

पहाड़िया जनजाति पर क्लीवलैंड ने अपने सद्भाव तथा निजी प्रभाव के कारण उनका विश्वास जीता था। क्लीवलैंड इकलौता अंग्रेज अधिकारी था जो उनके क्षेत्र में निहत्थे घूमा करता और उन्हें उपहार बाँटता था।[36] क्लीवलैंड ने पहाड़िया गांव में हाटों की स्थापना की। बाद में अधिकारियों के विचारों में भिन्नता आ जाने के कारण अंततः नियमावली 1796 को नियमावली ''आई–1827'' के द्वारा निरस्त कर दिया गया।[37] आगे 1855–56 ईस्वी के संताल विद्रोह के पूर्व धरनी पहाड़ के निवासी सरदार सुंदरा पहाड़िया ने पहाड़िया लोगों को संगठित किया।[38] यद्यपि संतालों तथा पहाड़िया लोगों के बीच मधुर संबंध नहीं थे फिर भी पहाड़िया लोगों ने 1855–56 ईस्वी के संताल विद्रोह में अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष किया। संताल विद्रोह में सौरिया तथा कुमारभाग पहाड़ियों की तुलना में माल पहाड़िया जनजाति का अपेक्षाकृत अधिक सक्रिय योगदान रहा है।[39]

कांग्रेस का सदस्यता अभियान तथा उसका स्वतंत्रता संग्राम में योगदान

1885 ईस्वी में कांग्रेस की स्थापना के बाद गंवई गोधरा पहाड़िया के नेतृत्व में पहाड़िया जनजाति ने अखिल भारतीय कांग्रेस में योगदान दिया। गोपाल कृष्ण गोखले तथा बाल गंगाधर तिलक के नेतृत्व में राष्ट्रीय आंदोलन में पहाड़िया लोगों ने स्वयं को समर्पित कर दिया। 1919–1929 ईस्वी के बाद पहाड़िया लोगों ने महात्मा गाँधी, पं. जवाहर लाल नेहरू तथा आजाद हिंद फौज के नायक सुभाष चन्द्र बोस के साथ स्वतंत्रता संघर्ष में अहम् भूमिका निभायी।[40] असहयोग आंदोलन में ग्राम ठढ़वास बंगला तालझारी के मैसा पहाड़िया के पूत्र जबरा पहाड़िया ने भाग लिया। राजमहल

के प्रमथ नाथ दे तथा प्रफुल्ल नाथ दे की गिरफ्तारी के बाद जबरा पहाड़िया ने गाँधी टोपी पहनकर तथा हाथ में तिरंगा झण्डा लेकर महात्मा गाँधी और भारत माता की जयघोष की थी। परिणामस्वरूप पुलिस ने जबरा पहाड़िया को गिरफ्तार कर एक माह के सश्रम कारावास की सजा दी। 1928 ईस्वी में द्वारिका प्रसाद मिश्र की अगुवाई में साहिबगंज के कार्यकर्ताओं ने इन जनजातियों तथा हरिजनों के उत्थान हेतु एक संगठन बनाया जिसमें सुन्दर सिंह पहाड़िया, कार्तिक सिंह पहाड़िया, बिक्कू सिंह पहाड़िया, सूर्या सिंह पहाड़िया आदि पहाड़िया लोगों ने भाग लिया। चमरू पहाड़िया, राधा पहाड़िया, सुरजा पहाड़िया, मैसा पहाड़िया, राम पहाड़िया इत्यादि भी द्वारिका प्रसाद मिश्र की मदद किया करते थे।[41] द्वारिका प्रसाद मिश्र करम पहाड़, डले पहाड़, नीरा पहाड़, कोडेपारा इत्यादि क्षेत्रों में जाते तथा पहाड़िया लोगों को संगठित करते, परिणामस्वरूप पहाड़िया लोगों में राजनीतिक जागरण हुआ। नमक सत्याग्रह आंदोलन में पंडरा पहाड़िया तथा सुंदर पहाड़िया के नेतृत्व में पहाड़िया लोगों ने योगदान दिया।[42]

1940 ईस्वी में कांग्रेस ने व्यक्तिगत सत्याग्रह का आह्वान किया। 17 अगस्त 1940 ईस्वी को विनोबा भावे द्वारा महाराष्ट्र के पवनार में व्यक्तिगत सत्याग्रह प्रारंभ करने के साथ भारत के कोने–कोने में व्यक्तिगत सत्याग्रह प्रारंभ हो गया। अविभाजित बिहार के पहले सत्याग्रही श्रीकृष्ण सिंह के साथ पहाड़िया नेता मैसा पहाड़िया [गोड्डा] तथा गाण्डो लाल पहाड़िया [साहिबगंज] ने भी व्यक्तिगत सत्याग्रह किया। श्रीकृष्ण प्रसाद साह [मोहनपुर हाट, देवघर] तथा के0 गोपालन [केरल] के नेतृत्व में पहाड़िया नेता जामा कुमार पहाड़िया, डोमन माल पहाड़िया, सिंघई माल पहाड़िया, बबुआ सिंह पहाड़िया, मैसा सिंह पहाड़िया आदि नेताओं ने सन् 1942 ईस्वी की क्रांति भारत छोड़ो आंदोलन में बहुत बड़ा योगदान दिया।

प्रफुल्ल चन्द्र पटनायक ने अपने साथियों के साथ पहाड़िया लोगों को राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने के लिए संगठित किया। इनके ग्यारह जत्थे बनाये गये तथा इन जत्थों को पाँच टुकड़ियों में रखा गया। इनके निर्देशन में पहाड़िया लोगों ने डमरू, सरौनी, सुमनी, आलुबेड़ा, चान्दन, दिलंगी तथा गम्हारिया इत्यादि स्थानों में शराब की अनेक भट्ठियों तथा बंगलों को जला दिया। इन्होंने पुलिस तथा परगनैतों के साथ सशस्त्र संघर्ष किया। 6 दिसम्बर 1942 ईस्वी को पुलिस तथा परगनैत दल के साथ इस संघर्ष में बबुआ सिंह पहाड़िया तथा मैसा सिंह पहाड़िया घायल होने तक लड़ते रहे। अंततः ये सभी लोग परगनैत पुलिस द्वारा गिरफ्तार कर लिए गये। साथ ही अमड़ापाड़ा के निकट स्थित आलूबेड़ा बंगला को जलाने के अपराध में 15 मार्च 1943 ईस्वी को बहुत से पहाड़िया नेताओं को तीन वर्ष की कैद तथा पचास रूपये के जूर्माने की सजा दी गयी।[43] 1947 ईस्वी के भारतीय राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन में भी पहाड़िया जनजातियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

निष्कर्ष

स्पष्ट है कि भारत के अनेक आदिम जनजातियों में प्रमुख झारखंड राज्य के संताल परगना प्रमंडल के मूल आदि निवासी पहाड़िया जनजाति का आधुनिक इतिहास में 1765 ईस्वी–1947 ईस्वी स्वतंत्रता आंदोलन तक एक गौरवपूर्ण इतिहास रहा है। इन आदिम जनजातियों का अभी तक पृथक और विस्तृत इतिहास नहीं लिखा गया है। प्राचीन युग से पहाड़िया समुदाय के लोग स्वतंत्रता प्रेमी रहे हैं। आदिम जनजातियों में पहाड़िया जनजाति ने ही भारत में सर्वप्रथम अंग्रेजी शासन का विरोध किया। भारत का प्रथम आदिम जनजाति पहाड़िया ही है जिसने जल, जंगल, जमीन एवं अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए राजपूतों, मुस्लिमों, तुर्कों, मुगलों और अंग्रेजों से लगातार संघर्ष करते रहे। अपनी स्वतंत्रता को अक्षुण्ण रखने के लिए इस समुदाय के अनेक लोगों ने अपनी बलि चढ़ा दी। अंग्रेजों के आगमन के समय सर्वप्रथम इन्हीं जनजातियों ने अंग्रेजों का विरोध किया। अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना [1885 ईस्वी] के पूर्व से विदेशी उपनिवेशवाद के खिलाफ स्वतंत्रता संघर्ष तक में इस आदिम जनजाति का योगदान काफी महत्वपूर्ण रहा है। 1885 ईस्वी में कांग्रेस की स्थापना के बाद गोधरा पहाड़िया, नमक सत्याग्रह आंदोलन में पंडरा पहाड़िया [पंगरो] तथा सुंदर पहाड़िया [राजाभीठा], 1942 ईस्वी की क्रांति में जामा कुमार पहाड़िया, डोमन माल पहाड़िया, सिंघई माल पहाड़िया, बबुआ सिंह पहाड़िया, मैसा सिंह पहाड़िया आदि पहाड़िया जनजाति के लोगों ने अपना बहुमूल्य योगदान दिया।

संदर्भ सूची

1. पी. सी. राय चौधरी, ***बिहार डिस्ट्रिक्ट गैजेटियर संताल परगना***, सेक्रेटेरियट प्रेस, पटना, 1965, पृष्ठ संख्या 54
2. भुवनेश्वर अनुज, ***अतीत के दर्पण में झारखंड***, भूवन प्रकाशन, राँची, 2000, पृष्ठ संख्या 161
3. एच. सी. सदरलैंड, ***रिपोर्ट ऑन दी मैनेजमेंट ऑफ दी राजमहल हिल्स***, दुमका डिप्टी कमिश्नर रिकॉर्ड, दुमका, 1819, पृष्ठ संख्या 45
4. सुरेश्वर नाथ एवं दिनेश नारायण वर्मा, ***राजमहल थ्रु द एजेस***, प्रभात प्रिंटर्स, साहिबगंज, 1990, पृष्ठ संख्या 1
5. जे. डब्ल्यू. मैक्रिन्डले, ***एन्शेंट इंडिया मेगास्थनीज एंड आर्यन***, ट्रूबनर एंड कॉरपोरेशन, लंदन, 1877, पृष्ठ संख्या 55
6. उमेश कुमार वर्मा, ***झारखंड का जनजातीय समाज***, सुबोध ग्रंथमाला, रांची, 2009, पृष्ठ संख्या 278
7. कैप्टन शेरविल, ***ज्योग्राफिकल एंड स्टेटस्टिकल रिपोर्ट ऑफ द डिस्ट्रिक्ट ऑफ भागलपुर***, कलकत्ता, 1851, पृष्ठ संख्या 167
8. उमेश कुमार वर्मा, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ संख्या 279
9. एच. एच. रिजले, ***दी ट्राइब्स एंड कास्ट ऑफ़ बंगाल***, बंगाल सेक्रेटेरियट प्रेस, कलकत्ता, 1981, पृष्ठ संख्या 73

10. फ्रांसिस हैमिल्टन बुकानन, ***एन अकाउंट ऑफ डिस्ट्रिक्ट ऑफ भागलपुर***, गवर्नमेंट प्रिंटिंग, पटना, 1939, पृष्ठ संख्या 106 **अन्य संदर्भ** :– एस. प्रसाद, ***वेयर थ्री ट्राइब्स मीट : ए स्टडी इन ट्राइबल इंटरेक्शन अमंग द मालेर, माल पहाड़िया एंड दी संताल***, इंडिया इंटरनेशनल पब्लिकेशन, दिल्ली, 1974, पृष्ठ संख्या 115
11. एडवर्ड टूइट डाल्टन, ***डिस्क्रिप्टिव इथ्नोलॉजी ऑफ बंगाल***, ऑफिस ऑफ द सुपरिटेंडेंट ऑफ गवर्नमेंट प्रिंटिंग, कलकत्ता, 1872, पृष्ठ संख्या 136
12. मोहन प्रसाद अम्बस्ट, ***माल पहाड़िया मैटेरियल कल्चर***, बिहार जनजातीय शोध संस्थान बुलेटिन, राँची, 1963, पृष्ठ संख्या 69–81
13. उमेश कुमार वर्मा, ***संक्षिप्त मोनोग्राफिक सीरीज सौरिया पहाड़िया***, झारखंड जनजातीय कल्याण शोध संस्थान, राँची, 2015, पृष्ठ संख्या 3
14. हरि मोहन, ***इकोनॉमिक ऑर्गेनाइजेशन ऑफ दी सौरिया पहाड़िया***, बुलेटिन ऑफ दी बिहार ट्राईबल रिसर्च इंस्टिट्यूट, राँची, 1959, पृष्ठ संख्या 56
15. एस. एन. राय, ***दी सौरिया पहाड़ियाज–ए–सोशियो–इकोनॉमिक स्टडी***, बिहार ट्राईबल वेलफेयर रिसर्च इंस्टिट्यूट, राँची, 1974, पृष्ठ संख्या 101
16. मैकफर्सन, ***दी फाइनल रिपोर्ट ऑफ़ दी सर्वे एंड सेटलमेंट ऑपरेशन्स इन द डिस्ट्रिक्ट ऑफ संताल परगना***, कलकत्ता, 1910, पृष्ठ संख्या 67
17. सुरेश्वर नाथ एवं दिनेश नारायण वर्मा, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ संख्या 6
18. वही
19. वही
20. मैकफर्सन, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ संख्या 76
21. राकेश कुमार सिंह, ***हुल पहाड़िया***, सामयिक बुक्स, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ संख्या 11
22. एल. एस. एस. ओ. मैली, ***संताल परगना डिस्ट्रिक्ट गजेटियर***, लोगोस प्रेस, नई दिल्ली, 1910, पृष्ठ संख्या 34–60
23. सुधीर पाल एवं रणेंद्र, ***झारखंड इनसाइक्लोपीडिया हुलगुलानों की प्रतिध्वनियाँ***, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ संख्या 97
24. विलियम विल्सन हंटर. ***द एनल्स ऑफ रूरल बंगाल, स्मिथ एल्डर एंड को.,*** लंदन, 1883, पृष्ठ संख्या 213–260
25. उमेश कुमार वर्मा, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ संख्या 280
26. वही
27. वही
28. मैकफर्सन, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ संख्या 121–140
29. सुधीर पाल एवं रणेंद्र, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ संख्या 97
30. एच. सी. सदरलैंड, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ संख्या 41

31. के गुप्ता, ***फर्स्ट रिवॉल्यूशन ऑफ संताल परगना***, राँची एक्सप्रेस, राँची, 1987, पृष्ठ संख्या 7
32. सुरेश्वर नाथ एवं दिनेश नारायण वर्मा, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ संख्या 31
33. वही
34. वही
35. वही, पृष्ठ संख्या 33
36. उमेश कुमार वर्मा, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ संख्या 282
37. वही, पृष्ठ संख्या 283
38. के. के. दत्ता, ***द संताल इंसरेक्शन ऑफ़ 1855–57***, यूनिवर्सिटी प्रेस, कलकत्ता, 1988, पृष्ठ संख्या 163–170
39. उमेश कुमार वर्मा, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ संख्या 283
40. के. के. दत्त, ***बिहार के स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास***, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1999, पृष्ठ संख्या 86, 87
41. उमेश कुमार वर्मा, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ संख्या 284
42. वही
43. बी. वीरोत्तम, ***झारखंड : इतिहास एवं संस्कृति***, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 2017, पृष्ठ संख्या 376